इकाई - 1 : प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा एवं सिद्धान्त

इकाई - 2 : प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

इकाई - 3 : प्राकृतिक चिकित्सा का योग एवं आयुर्वेद से संबंध

इकाई - 4 : विजातीय द्रव्य का सिद्धांत एवं रोग के कारण

इकाई - 5: स्वास्थ्य एवं रोग का अर्थ एवं परिभाषा

इकाई - 6: शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में प्राकृतिक चिकित्सा का योगदान

इकाई - 7 : प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ एवं संबंध

इकाई - 8 : प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के सूत्र एवं उपाय

इकाई - 9 : रोग निदान (आकृति - मल - मूत्र- पसीना एवं जिव्हा)

इकाई - 1 0 : प्राकृतिक चिकित्सा उपचार विधियों का सामान्य परिचय (मालिश इत्यादि)

इकाई - 1 1 : चुम्बक चिकित्सा

इकाई - 1 2 : एक्युप्रेशर चिकित्सा

इकाई – 1 :

प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा एवं सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

1 .0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में

- प्राकृतिक जीवन शैली का अध्ययन करेंगे।
- प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ व परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।
- प्राकृतिक चिकित्सा में मूलभूत सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

1 .1 प्रस्तावना

ज्यों ज्यों मनुष्य प्रकृति से दूर होता गया त्यों त्यों रोगों एवं दुःखों में घिरता गया। प्राकृतिक जीवन शैली को आज के भागदौड़ के युग में समझना एवं उसका अनुसरण करना अद्‌भुत कला, विज्ञान एवं बुद्धिमत्ता का विषय है। प्रस्तुत इकाई में प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धित मूलभूत सिद्धान्त का परिचय प्राप्त कर सकेगें।

1 .2 प्राकृतिक जीवन शैली

प्राकृतिक जीवन शैली से अभिप्राय प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए स्वस्थ जीवन का मापन करना है। प्रकृति के नियमों के अनुसार आहर विहार करना और अपने स्वास्थ का रक्षण करना ही प्राकृतिक जीवन शैली का अंग है। प्राकृतिक जीवन के कुछ

नियम होते है। जिनका पालन करके सदैव अरोग्य को प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन समय में इस प्रकार का प्राकृतिक जीवन बिताने के कारण मनुश्य को रोगी होने अवसर ही नहीं मिलता था और यदि किसी कारण वष प्राकृतिक नियमों का उल्लघंन करने के फलस्वरूप यदि कोई अस्वस्थ हो जाता था तो उपवासादि प्राकृतिक नियमों का व उपायों का पालन कर वह पुनः स्वस्थ हो जाता था क्योंकि मनुष्य एक प्राकृतिक जीव है इसलिए प्रकृति के साथ मामन्जस्य स्थापित करके ही वह स्वस्थ रह सकता है ठीक समय पर उठना, ठीक समय पर सोना, दिन में भोजन का निश्चित समय होना तथा सन्तुलित मात्रा में भोजन ग्रहण करना, परिश्रम व व्यायाम करना पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन कर विजातिय द्रव्यों को शरीर से बारह फैंकने में मदद करना, प्राकृतिक आहार ही ग्रहण करना, साप्ताहिक उपवास करना, आवश्यक आराम करना, प्रार्थना करना, उचित चिंतन करना, बाह्मचर्य का पालन करना, बैमेल के आहार से बचना, शारीरिक थकावअ व मानसिक तनाव से बचना, भूखे न रहना, आलस्य का त्याग करना आदि कुछ प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत आते है जिनका पालन मनुष्य को अवश्य करना चाहिए।

1 .3 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ

प्राकृतिक चिकित्सा जीवन यापन करने की कला का ही दूसरा नाम है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत जो सिद्धान्त और नियम का पालन रोग की अवस्था में किया जाता है ठीक उन्ही सिद्धान्तों व नियमों का पालन स्वस्थ दीर्घायु बिताने के लिए भी किया जाता है। दोनों के लिए समान नियमों और सिद्धान्तों का पालन किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा को तत्व चिकित्सा के नाम से भी जाना जाता है। जिसके अन्तर्गत पंच तत्वों आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व एवं पृथ्वी तत्व के द्वारा सभी रोगों की चिकित्सा की जाती है। इन पंच तत्वों के अतिरिक्त एक छठा तत्व राम नाम भी इसमें शामिल किया जाता है। इन्ही छः तत्वों के द्वारा शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्तरों पर होने वाले रोगों का उपचार किया जाता है।

इससे रोग को ठीक करने के लिए अर्थात् विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए उपवास चिकित्सा जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा तथा आहार चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा को केवल रोग उपचार की पद्धति समझना अज्ञानता होगा। प्राकृतिक चिकित्सा, असल में जीवन यापन की सही पद्धति को कहते है जिन तत्वों का प्रयोग कर रोगी को निरोगी किया जाता है। उन्ही तत्वों के प्रयोग के द्वारा स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए काम में लाया जाता है। दोनों अवस्थाओं में नियम एक ही और बिल्कुल एक ही होते है। एक ही प्रकार के प्राकृतिक नियमों का पालन करके इस चिकित्सा प्रणाली में मनुष्य अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित भी रख सकता है और उन नियमों का न पालन करने के फल स्वस्थ रोगी होने पर वह उन्ही प्राकृतिम नियमों का समझदारी के साथ आश्रय लेकर पुनः स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त कर सकता है। इसमें रहन सहन का स्वाभाविक ढंग और उस ढंग को सीखने की विधि भी है।

क्या, कब, किस तरह, क्या खाना पीना चाहिए यह भी बताया जाता है। इसमें सिखाया जाता है कि कैसेसोया जाता है क्यों पसीना निकलना जरूरी है और वह किस प्रकार निकाला जाता है। जीवन यापन का प्राकृतिक नियम व ढंग किस प्रकार का होना चाहिए ये सीखाया जाता है।

बड़े बड़े विद्वानों ने तथा अन्य चिकित्सा पद्धतियों की अपेक्षा में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को ही सर्वोच्च माना है। क्योंकि मनुष्य एक प्राकृतिक प्राणी है और प्राकृतिक नियम का पालन करने पर वह कभी भी रोगी नहीं हो सकता है। अन्य जीव जन्तु सदैव प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए ही जीवन यापन करते है और प्रकृति की गौद में ही रहते है। इसलिए वह सुन्दर शरीर, सुगठित तथ मोहक शरीर वाले होते है। प्राकृतिक शीतल जल पीते है, खुले आकाश तथा सूर्य के प्रकाश में रहते है, शुद्ध वायु सेवन करते है, भोजन में फल-फूल,पत्ते, घास आदि प्राकृतिक पदार्थों पर ही जीवन निर्वाह करते है। इसलिएवह सदैव स्वस्थ रहते है यदि कभी भी वह अस्वस्थ हो जाते है तो वह कोई औषधि नही लेते न ही किसी अस्पताल की शरण लेते है वरन् प्राकृतिक नियमों का पालन कर स्वयं ही स्वस्थ हो जाते है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणली अति प्राचीन है यह कहना संभव नहीं कि इसकी उत्पति कब हुई परन्तु यह तक से जब से स्वंथ प्रकृति। इसलिए यह चिकित्सा प्रणाली अन्य चिकित्सा प्रणालियों में पुरानी तथा उनको जन्म देने वाली है। प्राकृतिक चिकित्सा की चर्चा हमारे वैद, उपनिषदे गीता व पुराणों में भी देखने को मिलती है।

वैदिक काल के पश्चात् पुराण काल में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति ही प्रचलित थी प्रारम्भिक काल में केवल प्राकृतिक काल में केवल प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा ही रोगी की चिकित्सा की जाती थी क्योंकि उस समय में किसी भी प्रकार की औषधि चिकित्सा नही थी। उस समय में उपवास ही अचूक चिकित्सा समझी जाती थी।

प्रकृति में पाये जाने वाले पंच तत्वों के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है, जो शरीर में इकट्ठा हुए विजातीय द्रव्यों को प्राकृतिक ढंगसे निकालने में मदद एवं जीवन शक्ति को उन्नत करना ही इस पद्धति का उद्देश्य है। प्राकृतिक चिकित्सा कोई चिकित्सा पद्धति नहीं वरन् जीवन जीने की कला है। प्राकृतिक चिकित्सा सरल, सहज, सच्चा अनुरागी बन जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा रोग को जड़ से बाहर निकाल फैंकती है। जिससे शीघ्र ही आराम होने लगता है। प्राकृतिक चिकित्सा में सभी रोगों को एक ही माना जाता है तथा उनके होने का कारण भी एक ही माना जाता है और इसी सिद्धान्त के आधार पर चिकित्सा की जाती है और इसी के अनुसार मनुष्य शरीर का निर्माण पंच तत्वों से हुआ है। जब यह तत्व शरीर में साम्यावस्था में रहते है तो मनुष्य स्वस्थ रहता है परन्तु जब अप्रकृति आहार विहार के कारण पंच तत्वों मे असन्तुलन होने लगता है तो मनुष्य रोगी हो जाता है। इन रोगों का मुख्य कारण शरीर में विजातीय द्रव्यों का इकट्ठा होना माना जाता है। इसे शरीर से बाहर करने के लिए इन्हीं पंच तत्वों की सहायता ली जाती है और पंच तत्वों से फिर से संतुलन स्थापित कर

शरीर को पुनः स्वस्थ किया जाता है। यह पद्धति पुर्णरूप में औषधि विहीन पद्धति है। इसमें किसी भी औषधिक का प्रयोग नही किया जाता।

1 .4 प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषाऐं

1 पंच तत्वों की चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।

2 प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए जीवन यापन करनी ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

3 आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व तथ पृथ्वी तत्व का प्रयोग कर रोग को ठीक रकने की पद्धति को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।

4 प्राकृतिक नियमों व सिद्धान्तों का पालन कर रोग को दूर करना ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

5 आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा राम नाम इन तत्वों की चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा है।

6 प्राकृति की गौद में रहकर जीवन जीना ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

7 शरीर में पंच तत्वों के असन्तुलन को जिस चिकित्सा पद्धति द्वारा पुनः संतुलित किया जाता है उसे प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।

8 गांधी जी द्वारा अपनाई गई चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।

9 पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर रहने वाली चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

1 0 कुदरती उपचार को ही प्राकृतिक चिकित्सा कहा जाता है।

1 1 प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक आहार-विहार,नित्य व्यायाम, शारीरिक व आंतरिक स्वच्छताव सफाई पर निर्भर ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

1 2 प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति के निर्माणकारी सिद्धान्तों के अनुसार शारीरिक, मानसिक, नैतिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक धरातलों पर संतुलन स्थापित करने के साथ मानव निर्माण की व्यवस्था है।

1 3 औषधि रहित चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।

1 4 विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालकर जीवन शक्ति में वृद्धि करने वाली चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।

According to "C.C.R.Y.N."

Naturopathy is a system of non building in harmony with the constructive principles of nature on physical, mental, moral and spiritual planes of living. it has great health promotive, disease preventive and curative as well as restorative potential.

According to the manifesto of British naturopathic association, " Naturopathy is a system of treatment which recognizes the existence of the rital curative force within the bodyष.

Medical definition of naturopathy

A system of treatment of disease that avoid drugr and surgery and emphasizes the use of natural agents (as air, water, and herbs) and physical means (as tissue manipulation and electrotherapy).

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति न होकर स्वस्थ जीवन जीने की कला है तथा जीवन की समग्र विज्ञान की कुंजी है। विषैली दवाओं के स्थान पर पहाड़ों की शुद्ध वायु, झरनों से गिरता पानी, स्वच्छ वातावरण में व्यायाम शुद्ध और सात्विक आहार एवं उपवास का समन्वय तथा प्रकृति रूप से सूर्य की किरणों में उपजे विभिन्न प्रकार के फल व सब्जियां तथा विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न का व्यवहारिक जीवन में समावेश ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

यह पद्धति सर्वप्रथम सभ्य समाज में औषधिविहीन होने के कारण प्रभावित करती हुई जिसे जर्मन के औषधि विक्रेता हान, कूने, जुलाहा, दस्तकार, पादरी फादर नीप, डॉ. लेहमान। शिक्षक एडोल्फ जस्ट व्यायाम पद्धति केजनक टर्नवेटर जून प्रिसनीज के उत्साही शिष्य अनुगामी बन गए जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न शाखा विषेष पर अपनी दक्षता बनाई। किसी ने आहार पर किसी ने जलो पचार पर किसी ने वायु अथवा सूर्य के प्रकाश पर किसी ने मिट्टी व चुम्बक पर किसी ने मानसिक उपचार अथवा सुधारात्मक व्यायाम पर तथा वान पिकली ने आंख की पुतली के निदान पर प्रयोग किए।

अमेरिका में भी न्यूयार्क के डॉ. ट्राल, डैनविली वैटल क्रीक के डॉ. केलाग तथा अन्य कई अग्रणी एवं उत्साही चिकित्यक भी इससे प्रभावित हुए बिना नही रहे।

1 .5 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भी अन्य पद्धतियों की भांती हो अन्तर्गत किसी रोग की चिकित्सा के लिए अपने सिद्धान्तों पर आधारित रहती है। इस पद्धति के भी अपने मूल

सिद्धान्त है जिसको आधार मानकर किसी भी रोग की चिकित्सा संभव होती है। यह सिध्दान्त प्राकृतिक पद्धति में बहुत ही महत्वपूर्ण माने गए है। उपचारक को प्राकृतिक चिकित्सा करने से पूर्व इनका ज्ञान होना आवश्यक है यह सिद्धान्त इस माने गए है जो निम्नलिखित है -

1 प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।

2 सभी रोग एक है, उनका कारण एक है और निवारण एक है।

3 तीव्र रोग शत्रु नहीं वरन मित्र है।

4 रोग के निदान की आवश्यकता नहीं होती।

5 इस चिकित्सा पद्धति में औषधि नहीं प्रयोग होती।

6 इसमें चिकित्सा रोग की नही बल्कि रोगी के शरीर की होती है।

7 इसमें दबे रोग उभरते है।

8 जीर्ण रोगों के उपचार में समय अधिक लगता है।

9 रोग का कारण कीटाणु नही होते।

1 0 शरीर, मन और आत्मा की चिकित्सा है।

1 .5.1 प्रकृति स्वयं चिकित्सक है -

मनुष्य शरीर के भीतर स्वाभाविक कार्य सदैव चलते रहते है जैसे पाचन, पोषण, निष्कासन तथा रक्षात्मक क्रियाएं आदि, शरीर की वृद्धि के लिए तथा शरीर द्वारा विभिन्न तंत्रों के कार्यों के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

जिसकी पूर्ति आहार तथा ईश्वर द्वारा निर्मित रसोई से प्राप्त पदार्थों जैसे फल, सब्जियां तथा प्राकृति रूप में उपलब्ध खाद्य पदार्थ से होती है। प्राकृतिक आहार ग्रहण करने से जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है। जो रोगों से लड़ने तथा स्वस्थ रहने में मदद करता है, इस जीवनी शक्ति में वृद्धि उपवास के द्वारा तथा प्राकृतिक आहार विहार के द्वारा किया जा सकता है। क्योंकि जब हम अप्राकृतिक आहर ग्रहण करते है तो शरीर के पाचन तंत्र को उसके पाचन में अधिक ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है तथा उस आहार से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों की मात्रा भी शरीर को कम प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों की मात्रा भी शरीर को कम प्राप्त होती है। पाचन तंत्र को अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है जिससे जीवन शक्ति का भी ह्रास होता है ऐसा लम्बे समय तक बार बार करने पर मनुष्य को रोगी बनाता है इन आदतों के कारण शरीर में विजातीय द्रव्य इक्टठे होने लगते है जिससे वह शरीर में रोग को नियंत्रण देते है। इसके विपरित जब प्राकृतिक आहार, तथा

फल और सब्जियों का सेवन किया जाता है तो उसका पाचन शीघ्रता से हो जाता है तथा उससे अधिकतम मात्रा में शरीर को पोषक तत्व भी प्राप्त होते है जिससे जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है।

इसलिए प्राकृतिक पदार्थों और उनके द्वारा शरीर में निहीत जीवनी शक्ति के द्वारा रोग निवारण किया जाना अत्यन्त सरल और आप्रकृतिक आहार विहार और रहन सहन के कारण रोग उत्पन्न हो जाते है तो उन्हीं प्राकृतिक नियमों का पालन कर जीवनी शक्ति को पुनः विकसित कर शरीर में इक्ट्ठा हुआ मल (विजातीय द्रव्य) बाहर करके शरीर को पुनः स्वस्थ करना शरीर को प्राकृति स्वभाव कहलाता है। यह शरीर द्वारा स्वयं को रोग मुक्त करने का तरीका है। प्राकृतिक चिकित्सा हमें ज्ञान कराती है।

इसे कुछ उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। जैसे किसी मनुष्य के प्राकृतिक आहार विहार के कारण उसकी जीवनी शक्ति अधिक प्रबल बनी होने के कारण जब किसी कारण वष भोजन के साथ कुछ विषैले तत्व शरीर में जाने के कारण उसे तुरंत उल्टी और दस्त होना ही शरीर द्वारा स्वयं चिकित्सा करना है शरीर का रक्षात्मक तंत्र उस समय क्रियाशील होकर तुरन्त शरीर में आए विष के पाचन न होने देने में उल्टी दस्त होने पर वह तुरन्त ठीक हो जाता है।

अन्य उदाहरण जैसे वायु के साथ श्वास लेते समय कुछ भी अनैच्छिक तत्व जैसे धून के कण आदि नासिका में प्रवेश करते है तुरन्त छीक आना तथा पानी पीते समय पानी हवा की नली मे ंचला जाता है तो तुरन्त जोर की खांसी होने लगती है शरीर में रोगाणु या विषाणु उत्पन्न होने पर शरीर द्वारा तेज शरीर में वृद्धि के लिए प्रकृति का प्रयास ही है। अतः यह सदैव स्मरण रखना चाहिए की रोगी को रोग से मुक्ति अपने आपसे ही मिलती है अर्थात् रोगी के रोग का निवारण उसकी शरीर स्वयं ही करता है। रोग मुक्ति की सम्भावना चाहे कितनी ही कम क्यों न हो प्रकृति उसकी मदद के लिये कोई कमी नहीं रखती और रोगी के आखरी दम तक प्रयत्नशील रहती है।

1 .5.2 सभी रोग एक है, उसका कारण एक है और उनका निवारण एक है।

प्राकृतिक चिकित्सा का वह दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके अनुसार सभी रोग एक ही माने जाते है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोग को उसके नाम से न जान कर केवल शरीर में संचित मल जिसे विजातीय द्रव्य कहते है। सभी रोगों का कारण यह विजतीय द्रव्यही माना जाता है।

गलत ढग से आहार विहार करने के कारण जब शरीर में मल इक्ट्ठा होने लगते है तो रोग का रूप ले लेते है और शरीर अपनी जीवन शक्ति की मदद से शरीर के विभिनन भागों से उसे निकालने की प्रक्रिया करता है बिना किसी दवा के सभी रोग केवल जीवनी शक्ति के द्वारा ही ठीक किए जा सकते है। परन्तु जब गलत आहार विहार अर्थात् आप्रकृतिक जीवन शैली को ही लम्बे समय तक अपनाया जाता है तो जीवनी शक्ति का ह्रास होने लगता है और यह कमजोर हो जाती है जिसके कारण शरीर को आवश्यकता

होने पर वह उसकी मदद नहीं कर पाती जिससे शरीर में इक्ट्ठे होने वाले मल का जमाव होने लगता है शरीर विजातीय द्रव्य से लद जाने के कारण रोग का रूप ले लेता है। शरीर के जिस भाग में विजातीय दव्य इक्ट्ठा होते है उस भाग का कार्य रूक जाता है तथा वहा विकार उत्पन्न होने लगते है। उस अवयवों के पहचान के रूप में अलग - अलग नाम दे दिये जाते है। परन्तु सभी रोगों के कारण मात्र शरीर में संचित विजातीय द्रव्य होता है। इसलिए शरीर के अलग अलग अंगों में आये विकार देखने में भले ही भिन्न भिन्न हो परन्तु उन्हें उत्पन्न करने वाले विजातीय द्रव्य ही है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में सभी रोगों को एक ही माना जाता है तथा इन रोगी के होने का एक ही कारण है वह है विजातीय द्रव्य। इस प्रकार रोग के निवारण का उपाय भी एक ही है वह है विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने के द्वारा अर्थात् उपवास या युक्ताहार से जीवनी शक्ति को बढाना तथा जनोपचार, मिट्टी की पट्टी, एनिमा, मालिश आदि से शरीर के मल मार्गों को पूर्णतः खोलकर उनको क्रियाशील कर देना ताकि वे शरीर के मल का बहिष्कार करने में सफल रहा।

इस प्रकार सभी रोग एक है उनका कारण एक है तथा उनका निवारण भी एक ही है।

1 .5.3 तीव्र रोग शत्रु नहीं है वरन मित्र है -

प्राकृतिक चिकित्सा मे तीव्र रोगों को शत्रु के रूप में न देखकर मित्र के रूप मे देखा जाता है इसका कारण शरीर में विकार जमा होने लगे है तो उन विकारों अर्थात मल को शरीर से बाहर निकालने के लिए शरीर की रक्षात्मक प्रणाली प्रयास करती है जिसे हम जीवनी शक्ति के नाम से जानते है।

जब जीवनी शक्ति मल को बाहर फैंकने की चेश्टा करती है तो उसे ही रोग की संज्ञा दी जाती है शरीर के जिस भाग में मल संचित होता उसी भाग में विकार या रोगि के लक्षण दिखाई देते है जैसे पेट के खराब होने पर दस्त के रूप में विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल दिया जाता है या पाचन तंत्र का ठीक काम न करने पर उल्टी होना ही प्रकृति द्वारा मल को निकालने का प्रयत्न करना है।

इस तरह कि क्रिया शरीर के हित के लिये ही होती है। अतः दस्त की स्थिति में एनिमा देकर उससे होने वाले कष्ट से बचा जा सकता है इसी प्रकार जब श्वास प्रणाली में विजातीय द्रव्य संचित हो जाते है तो प्रकृति नाम से उसे बलगम के रूप में बाहर निकाल देती है जिसे जुकाम का नाम दे दिया जाता है देखा जाए तो जुकाम शरीर के हित में प्रकृति की चेश्टा है जिससे हम शरीर की मदद करनी चाहिए जल नेति या भाप लेने से हमे इसे जल्दी ही शरीर से बाहर कर सकते है। शरीर में रोग की स्वयं उपचार करने की प्राकृतिक विद्या है रोग नाम हमने अपनी सुविधा के लिए दिया है वैसे शरीर में जमा हुआ विकार निकालने की प्रक्रिया ही रोग है, इसलिए रोग शत्रु नही मित्र है।

1 .5.4 रोग निदान की आवश्यकता नही होती है

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग होने का कारण विजातीय द्रव्य ही होता है। इसलिए केवल विजातीय द्रव्य को बाहर निकालकर शरीर शुद्धिकरण करने मात्र से ही रोग ठीक होने लगते है यही कारण है कि रोग के उपचार के लिए रोग निदान की आवश्यकता नहीं होती केवल लक्षणों के आधार पर उपचार हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा मे अन्य पद्धतियों की भांति रोग निदान आवश्यक शर्त नहीं होती क्योंकि उपचार तो शरीर का ही होता है ओर रोग का कारण शरीर में जमा मल ही निदान के लिये एक प्राकृतिक चिकित्सक को केवल यह देखना होता है कि वह दुर्द्रव्य शरीर के किस भाग में संचित है सामने, पीछे या समस्त शरीर में आदि उसे देखकर वह शरीर की जीवनी शक्ति की मदद प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा कर सकता है।

रोगी के शरीर के जिस विषेष भाग पर विजातीय द्रव्य का भार अधिक होता है जिसे सूक्ष्म दृष्टि से देखने से न केवल एक प्राकृतिक चिकित्सक अपितु कोई भी देख सकता है और देखकर उचित उपचार सोच सकता है। इस तरह हम यह कह सकते है कि प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न विधि जिसमे भटकने और बहकने का भय ही नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा शरीर के भीतर संचित मल जो बहुत समय से शरीर में इक्टूठा रह कर रोग को शरीर में फैलाता रहता है, को बाहर करने का एक सरल, सहज और सस्ता उपाय है। प्राकृतिक उपचार के द्वारा शरीर का विजातीय द्रव्य बाहर निकाल कर जीवनी शक्ति को विकसित किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शरीर में संचित मल ही सभी रोगों का कारण है अतः इस कारण अर्थात् विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालना ही रोग का निवारण है इसलिए सभी रोगों की केवल एक ही चिकित्सा होती है वह मल को बाहर करना इसलिए किसी भी रोग के होने पर उसके निदान की विषेष आवश्यकता इस उपचार पद्धति में नहीं पड़ती । इस चिकित्सा निदान होने के पश्चात भी रोग का उपचार समान ही होता है। क्योंकि उपचार तो शरीर रोग का होता है और रोग का कारण शरीर में मल का संचय होना होता है। विकार मिलते ही रोगी को विकार मिलना प्रारम्भ हो जाता है, प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी का मन की सन्तुष्टि हेतु निदान कर लिया जाता है परन्तु आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

1 .5.5 इस चिकित्सा पद्धति में औषधि नहीं प्रयोग होती है

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति अत्यन्त सरल और सहज है। इस पद्धति में किसी प्रकार की भी औषधि का प्रयोग नहीं किया जाता। प्राकृतिक चिकित्सा में केवल 5 तत्वों के द्वारा ही सभी रोगों का उपचार किया जाता है। मनुष्य के शरीर का निर्माण भी पंच तत्वों मिट्टी, पानी, धूप, हवा और आकाश से मिलकर होता है तथा तत्वों में असन्तुलन होने पर ही शरीर में विकार उत्पन्न होने लगते है। पंच तत्वों के असन्तुलन को इन तत्वों के द्वारा ही सन्तुलित किया जाता है। इस पद्धति में मिट्टी चिकित्सा उपवास चिकित्सा जब चिकित्सा, वायु चिकित्सा तथा आहार चिकित्सा द्वारा ही शरीर को पुनः स्वस्थ किया जा सकता है क्योंकि इसी के द्वारा पंच तत्वों को शरीर में सन्तुलित किया जा सकता है। यही एक प्राकृतिक उपायहै।

इस चिकित्सा में फल, साग, सब्जि, अन्नाजों आदि आहार प्रयोग किए जाते है क्योंकि इनमें भी भरपूर पांच तत्व होते है संसार के सभी प्राणियों जीव जन्तुओं का निर्माण इन्हीं पंच तत्वों से हुआ है अतः इनका नाष होने पर भी यह इन्हीं तत्वों से मिल जाते है। रोगी की चिकित्सा करने से पूर्व अधिकता है और किस तत्व की कमी इसका ज्ञान रोग के लक्षणाों के आधार पर किया जा सकता है। उसी के आधार पर चिकित्सा की जानी चाहिए। प्रायः रोगी इस पद्धति की शरण तब लेता है जब वह हर तरफ से हार चुका होता है तथा बहुत अधिक दवाओं का सेवन कर चुका होता है दवाइयां भी रासायनिक असाध्य होने के कारण विजातीय द्रव्य को बढाने वाली होती गीली लपेट आदि दिया जाता है। यह शोधन की क्रिया कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा में आने वाले रोगों का मित्र ही कहा जाता है। क्योंकि यह रोग शरीर की जीवनी शक्ति द्वारा किया जाने वाला प्रयास होता है जो मल को प्राकृतिक ढंग से शरीर से बाहर निकालता है। प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास हो सबसे बड़ी औषधि का कार्य करती है। रोगी को बिना दवा निरोग रखने हेतु आकाश तत्व सबसे महत्वपूर्ण है जो उपवास से प्राप्त होता है। इसकी आवश्यकता स्वस्थता, सुन्दरता, आरोग्य व दीर्घायु प्राप्त होती है, आकाश तत्व के सेवन का मार्ग निराहार रहना अग्नि उपवास करना होता है।

1 .5.6 इसमें चिकित्सा रोग की नही बल्कि रोगी के शरीर की होती है

प्राकृतिक चिकित्सा मे ंसभी रोगो का हेतु है विजातीय द्रव्य। जब शरीर में मल का संचय होने लगता है तो वह रोग के लक्षण के रूप में उभरने लगता है। जिस भी शरीर के भाग में मल संचय होता है वही विकार उत्पन्न होने लगते है उदाहरण के तौर पर फैंफड़ों में कफ के जमने के कारण से खांसी होना,खांसी होना एक लक्षण है परन्तु कफ फेफड़ों में जमा हुआ मल है। विजातीयय द्रव्य ही है। जब धीरे धीरे यह बढने लगता है तो यह विकार हो भी बढ़ाने लगात है। मामूली खांसी भी गम्भीर समस्या या रोग का रूप लेने लगती है, प्राकृतिक चिकित्सा में जब रोगी के रोग का इलाज न करके खांसी का न करके उसके सम्पूर्ण शरीर का शोधन कर शरीर का शुद्धिकरण द्वारा ही रोग को दूर किया जाता है इसलिए किसी विषेष अंग का इलाज ना करके पूरे शरीर का इलाज करना होता है, रक्त में जमा होने वाली अशुद्धियों को ठीक करना तथा फैंफड़ों से कफ बाहर करना खांसी का इलाज है जिसे कोई दवा ठीक नहीं कर सकती केवल दबा सकती है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा जमे कफ को सरलता से निकालकर खासी से निजात मिल सकती है। चिकित्सा की अन्य पद्धतियों में रोगी की चिकित्सा पर जोर दिया जाता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोगी के समूचे शरीर की चिकित्सा करके उसे नया बनाया जाता है। जिससे रोग के लक्षण धीरे धीरे समाप्त होकर रोगी शरीर को स्वस्थ किया जात है। रोग की प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा में रोग नही वरन् रोग का लक्षण है। जबकि सत्य तो यह है कि रोग तो शरीर के भीतर इक्ट्ठा हुआ विजातीय द्रव्य या विष होता है। इसलिए चिकित्सा रोग के लक्षणों की न होकर वास्तविक रोग की ही होनी युक्ति संगत कहलाती है। जो कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में ही किया जाता है।

1 .5.7 इसमें दबे रोग उभरते है

प्राकृतिक चिकित्सा में जैसा हम जानते है कि रोग का मूल कारण मल का शरीर में जमा हो जाता है तथा शरीर के द्वारा उसे बाहर करने की प्रक्रिया विभिनन रोगी के नाम से आज जानी जाती है। शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा जहां भी मल का संचयन होता है वहीं से शरीर की जीवनी शक्ति उसे बाहर निकालने लगती है जैसे त्वचा में विजातीय द्रव्य इक्ट्ठे होने लगते है तो त्वचा उसे जीवनी शक्ति के द्वारा बाहर निकालने का प्रयास करती है जो कि त्वचा के उपर फोडे के रूप में निकर कर पीप बन कर निकाल दिए जाते है। परन्तु इन जोडो को देखकर इन विकारों को निकलने से रोकना ही शमन कहलाती है जो कि वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों में किया जा रहा है। दवाओं द्वारा रोग के लक्षणों को दबा कर विकार को शरीर मे ंही इक्ट्ठा किया जाता है। जिससे विकार शरीर में रूकने पर अन्य दूसरे रूप में भी निकलने का संकेत करता है परन्तु अज्ञानता वश उसे भी रोग समझकर शरीर के भीतर ही दवा द्वारा पुनः दबा दिया जाता है। इस प्रकार लम्बे समय तक शरीर में विकारों को दबाते दबाते वह भंयकर परिणामों का रूप ले लेता है तथा जीर्ण रोगों का रूप धारण कर लेता है एक साथ कई रोगो के लक्षण सामने आने लगते है जहां अन्य पद्धतियों ने उभरे रोग दबा दिए जाते है वहीं प्राकृतिक उपचार द्वारा दबे हुए सभी रोग एकसाथ एक एक करके उभरने लगते है तथा उभर कर सदा के लिए चले जाते है।

‘उभाड’ का अर्थ रोग का तीव्र रूप तथा भ्मंकपदह बपेपे के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार जब चिकित्सा काल के दौरान जीर्ण रोगो का उपचार किया जाता है तो एक समुचित समय पर दबे रोग जीवनी शक्ति के प्रभाव से उभर कर जड़ से चले जाने के लिए प्रस्तुत हो जाते है तथा कुछ समय तब अपना प्रभाव दिखा कर सदा के लिए चले जाते है। उभाड का काल 2 से लेकर 7 दिनों तक का होता है। इसमें यह बात भी देखी जाती है कि रोगी के शरीर में रोगो को जिस क्रम में दबाया गया होता है उभाड काल में ठीक उसके विपरित में एक एक रोग उभरते है।

प्राकृतिक उपचार काल में रोग का तेज कुछ समय तक बना रहता है और यह बढने भी लगता है जो कि उभाड के लक्षण कहलाते है। उभाड रोग संबंधी प्राकृतिक नियम का अनुसंधान करने वाले हिपोक्रेट्रस थे। इस सिद्धानत पर इन्होंने कई बड़े रोगों का उपचार कर सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार यह कह सकते है कि प्राकृतिक चिकित्सा काल में रोग उभाड होना शुभ संकेत है तथा अति आवश्यक भी जिसके उत्पन्न होने पर घबराना और डरना उचित नहीं है। इस काल में जल्दबाजी के स्थान पर धैर्यता से ही काल लेना चाहिए। प्रकृति के द्वारा ही धीरे धीरे इस कार्य को होने देना तथा उसकी इसमें मदद करना ही रोगी के हित में होता है। जो रोगी उभाड काल में अत्यन्त दुःखी होते है या जिन्हें उभाड बहुत ुख देते है वह उन्हीं के साथ होता है जो चिकित्सा के पहले बहुत सी विषाक्त औशधियों का लम्बे समय से सेवन कर रहे हो। परन्तु इससे भी रोगी को घबराना नही चाहिए बल्कि

प्राकृतिक चिकित्सक को रोगी के मन को शांत बनाए रखने के लिए उससे बात करके समझाते रहना चाहिए। जो प्राकृतिक जीवन शैली में ही जीवन व्यतीत करते है तथा अधिकतर तो उभाड होता ही नही या बहुत हल्का होत है और वह जल्दी ही स्वस्थ भी हो जाते है।

1 .5.8 जीर्ण रोगो के उपचार में समय अधिक लगता है

सामान्यतः यह बात सुनने में आती है कि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोग बहुत समय में ठीक होते है उनका इलाज लम्बे समय तक होता है। जबकि चिकित्सा की अन्य पद्धतियों में आराम जल्दी हो जाता है। रोग पर जल्दी ही नियंत्रण पा कर रोग के लक्षणों को तुरन्त समाप्त कर दिया जाता है। परन्तु डॉक्टर लिण्डल्होर ने इस बात का विरोध किया। उन्होंने कहा कि प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा रोगी कम समय मे ही ठीक हो जाते है। उन्होंने यहां तक कहा की अन्य चिकित्सा पद्धतियों जो वर्तमान में प्रचलित है उनके सब से जल्दी राग को दूर करने वाली पद्धति है प्राकृतिक चिकित्सा।

परन्तु इस पद्धति की शरण रोगी तब लेता है जब वह हर तरफ से निराश हो चुका होता है रोग अपनी जड़े बहुत गहराई तक फैला चुका होता है। ऐसे रोगी ही प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आते है। यदि रोगी रोग की शुरूआज में ही इस पद्धति का सहारा ले कर स्वस्थ होना चाहता है तो वह कम समय में ही ठीक हो सकता है। तीव्र रोगों को स्थिति में प्राकृतिक उपचार शरीर की जीवनी शक्ति को प्रबल बनाने में मदद करते है जिससे रोगी बहुत कम समय में स्वस्थ हो जाता है। जबकि ऐसा नही होता वास्तव मे सब तरफ से निराश हुए रोगी प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ग्रहण करते है उस समय तक न केवल रोग का असर उनके शरीर में होता है वरन् दवाओं का भी जहर होता है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सक को केवल वास्तविक रोग ही उपचार नही करना पड़ता बल्कि अन्य दवाओं के विषों को भी बाहर निकालकर शरीर को पूर्ण रूप से शुद्ध भी करना होत है। यह सब काफी लम्बे समय से चल रहा होता है। शरीर में विकारों और दवाओं का प्रभाव लम्बे समय तक होने के कारण वह भयानक रूप ले लेता है। जिससे छूटकारा पाना इतना सरल नही होता - महीना, दो महीना से लेकर सालों भी लग सकते है। इससे रोग के लक्षणों की समाप्त होना ही सब कुछ नहीं है बल्कि पूर्ण रूप से सम्पूर्ण शरीर को तन्दुरूस्त, मजबूत और शक्ति शाली बनाना ही मुख्य उद्देश्य है। इस सब ने काफी लम्बा समय लग जाता है।

उपचार काल कितना लम्बा होना वह रोगी की स्थिति पर ही निर्भर करता है। क्योंकि रोग का विकास और उसका विनाश दोनों ही धीरे - धीरे होते है। अतः धैर्यता और पूर्ण विश्वास रख कर ही चिकित्सा पद्धति की शरण में रहना चाहिए। क्योंकि रोग मुक्ति पूर्ण आरोग्य का केवल एक ही प्राकृतिक तरीका है।

1 .5.9 रोग का कारण कीटाणु नहीं होते।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोग का कारण केवल उक ही माना जाता है वह है विजातीय द्रव्य। रोग, कीटाणु, जीवाणु या विषाणुओं से होते है यह सिद्धानत ऐलोपैथी चिकित्सा से मान्य है। कि किटाणु रोग उत्पन्न करते है परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि कीटाणु उसी शरीर में पैदा होते है जिसके शरीर में कीटाणु पनपते के लिए वातावरण उपलब्ध होगा अर्थात् कीटाणु सदैव गन्दगी मे ंही पनपते है। इसलिए शरीर में मल इक्ट्ठा होगा वहां कीटाणु पनपते है। परन्तु जिनके शरीर शुद्ध और मल विहीन होते है तथा जिनका रक्त शुद्ध होता है उस शरीर में कीटाणुओं के पनपने हेतु आहार का आभाव बना रहता है। मल से लदे शरीर मे ंसुरक्षात्मक शक्ति का ह्रास होता रहता है और सुरक्षात्मक व्यवस्था कमजोर होने पर ही किसी बाह्य जबत का कीटाणु शरीर पर अपना हमला कर सकने में सफल होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति भी यही कहती है कि शरीर के भीतर एक ऐसी व्यवस्था है जो शरीर की बाहर और भीतर के कीटाणुओं और जीवाणुओं से शरीर की सुरक्षा करती है। शरीर में श्वेत रक्त कण **(WBC)** एक ऐसी सेना है जो किसी भी रोग के कीटाणु को शरीर में प्रवेश करते है। नश्ट कर देती है। परन्तु यह भी तब तक ही कार्य करती है। जब तक की यह सबल हो, श्वेत रक्ताणुओं की फौज की सबलता रक्त में पाये जाने वाले शुद्ध सभी रासायनिक तत्व विद्यमान होना आवश्यक होता है, जो संतुलित आहार विहार अर्थात् प्राकृतिक जीवन शैली से ही शरीर की शक्ति बढ़ाने वाले तत्व बनते बढते और कायम रहते है इसलिए प्राकृतिक जीवन होने से जीवनी शक्ति प्रबल रहती है और वही रोगी के कीटाणुओं से सुरक्षा प्रदान करती है इसीलिए रोगी के कारण कीटाणु पनपते नही है।

अतः हम यह कह सकते है कि यदि हम नियमित और सही आहार करने के अभ्यासी हो तो कीटाणु - परमाणु जो सारे संसार में फैले हुये है हमारे शरीर में प्रविश्ट होकर वहां रह ही नही सकते, बल्कि वे हमारे शरीर के अनगिनित स्वस्थ कोपो के रूप में बदल जायेगे जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है। किन्तु यदि हमारा खान पान अनियमित एवं अप्राकृतिक है तो वे ही सर्वव्यापी परमाणु हमारे शरीर में असंख्य कीटाणुओं का रूप धारण करके हमें अवश्य रोगी बना देगे।

1 .5.1 0 शरीर, मन और आत्मा की चिकित्सा है।

शरीर, मन और आत्मा तीनों के स्वास्थ्य - सामंजस्य ही पूर्ण स्वास्थ्य है। इन तीनों की स्वास्थ्यौन्नति पर ही प्राकृतिक उपचार में ध्यान दिया जाता है यही इस चिकित्सा प्रणाली की विशेषता है। शरीर में रोग रहित रहना ही पूर्ण स्वास्थ्य नहीं है बल्कि मन और आत्मा से भी स्वास्थ्य का संबंध है। प्राकृतिक जीवन प्राकृतिक रहन सहन तथा प्राकृतिक खान पान हमारे जीवन में सात्विकता लाकर हमें ऊपर उठाते है। मन का संयम करके हम आध्यात्म की ओर ले जायेगे। ईश्वर की स्तुति और सदाचार का प्रचार हर तरह की बीमारी को रोकने का अच्छे से अच्छा और सस्ते से सस्ता इलाज है। ईश्वर की स्तुति कुदरत का सुनहरा कानून है जो इसपर अमल करता है वह बीमारी से बचा रहता है। जो अमल नहीं करता वह बीमारियों से घिरा रहता है। प्राकृतिक चिकित्सक के पंच तत्वों के अतिरिक्त एक छठा तत्व भी इस चिकित्सा पद्धति में लिया गया है जो है राम नाम।

प्राकृतिक चिकित्सा रोगी के शरीर की शुद्धि करती है तथा राम नाम के द्वारा मन को भी शुद्ध करती है।

कुदरती उपचार के दो पहलू है – एक ईश्वर की शक्ति यानि राम नाम से रोग मिटाना और दूसरा ऐसे उपाय करना कि रोग पैदा ही न हो सके। प्राकृतिक उपचार, शरीर सफाई युक्ताहार, योग्य व्यायाम से बीमारियों को दूर करती है। उससे चितशुद्धि भी होती है। मन का संयम हमें आध्यात्मक की ओर ले जाता है। रोगी शरीर निर्बल आत्मा और कुलपित मन तीनो ंकी चिकित्सा के लिये ईश्वर प्रार्थना अथवा राम नाम जप जो प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख अंग है, रामबाण चिकित्या है। प्राकृतिक चिकित्सा मे ंयह विशेषता होनी चाहिये वह रोगी का मन और आत्मा दोनों बदलने का इलाज साथ साथ देते रहे, सुबह, शाम प्रार्थना और मन की शुद्धता पवित्रता के लिए दैवी गुणों को अपने भीतर धरण करने की क्षमता निर्माण करना रोगी को अवश्य बताया जाय, शरीर शुद्ध तो मन भी शुद्ध शरीर स्वस्थ तो मन भी स्वस्थ कहा भी गया है। ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन होता है, कोई भी व्यक्ति अगर मानसिक रूप से स्वस्थ है तो वह कभी कोई भूल या निम्न स्तर का कार्य नही करेगा इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा कराने वाले रोगी को सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक रोगी से निरोधी और निरोगी से देवात्मा भी बना देता है। अतः प्राकृतिक चिकित्सा शरीर, मन और आत्मा तीनों की चिकित्सा करती है।

1 .6बोध प्रश्न

1 प्राकृतिक चिकित्सा परिचय के उधेश्यों एवं प्रस्तावना पर प्रकाश डालो।

2 प्राकृतिक जीवन शैली का मानव जीवन पर क्या नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, प्रकाश डालो।

3 प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा एवं अर्थों पर प्रकाश डालो।

4 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट करो।

1 .7 संदर्भ ग्रंथ

1 प्राकृतिक चिकित्साडॉ. राकेश जिदल

2 वृहद प्राकृतिक चिकित्साडॉ. ओपी. सक्सेना

3 कुदरती जीवन गांधी जी

इकाई - 2 :

प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

इकाई की संरचना

2 .1 प्रस्तावना

2 .2 उद्देश्य

2 .3 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

2 .4 प्राकृतिक चिकित्सा का भारत वर्ष में इतिहास

2 .5 प्राकृतिक चिकित्सा का विदेशों मे विकास

2 .6 सारांश

2 .7 बोधात्मक प्रश्न (अभ्यासार्थ)

2 .8 सन्दर्भ ग्रंथ

2 .1 प्रस्तावना :-

पहले के समय में चिकित्सा क्षेत्र का जब इतना विकास नहीं हुआ था तब रोगों को कभी देवताओं का अभिशाप माना जाता था तो कभी अपने कुकर्मों का फल मान लिया जाता था तो कभी अपने नजर टोटका और भूत प्रेत-आत्मा आदि से जोडकर देख लिया जाता था और उसी के अनुरूप उपचार दिया जाता था। बीमारियों के इस प्रकार भ्रम का उपचार भी उसी के अनुरूप कभी देवताओं को प्रसन्न करके कभी भूत पिचाश की झाड फूक करके यहां तक की शरीर को गर्म लोहे की छडों आदि से जलाकर अथवा पशु बलि चढा कर उपचार दिए जाते थे।

उस समय शरीर में अवांछित विजातीय द्रव्य के आने को शरीर में उपरोक्त प्रकार के तत्वों का आना स्वीकार कर लिया जाता था। उस समय बिमारी के आने पर उसे दबाव देकर ज्यादा भोजन करने को बाध्य किया जाता था। और धारणा थी कि इस तरह के प्रकोप में खाना नहीं खाने से शरीर बहुत ही निर्बल हो जाएगा। इसी कारण उपचार में इसी प्रकार की लापरवाही प्राण घातक बन जाती थी। इसका वर्णन आज वेदों मे भी आया है। ऐसी लापरवाहीयों पर खडा स्वास्थ्य या शरीर कच्ची-नींव की तरह कभी भी गिरने की हालत में रहता है तभी कुछ पशु पक्षियों जैसे प्राणियों से सीखने को मिला कि स्वास्थ्य खराब होने की स्थिति में खाना छोड कर शरीर के विभिन्न अंगों को विश्राम देकर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। पशु पक्षी ठीक इसी प्रकार अपना खाना छोड

देता है। इन सब तथ्यों को समझने के पश्चात ज्ञात हुआ कि यह शरीर पंच-तत्व से बना है और पंच तत्व के असंतुलन से ही स्वास्थ्य का खराब होना समझ मे आया। प्रकृति में यही पंच तत्व मूल स्वरूप में विद्यमान है। जब भी हम प्राकृतिक वातावरण से दूरी बना लेते थे अर्थात पंच तत्वों से विमुख होने पर ही स्वास्थ्य बिगड जाता था जिस प्रकार मकान की दीवार खराब होने पर उसकी मरम्मत करने के लिए रेत, सीमेन्ट, ईंट, पानी इत्यादि की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार शरीर के उपचार के लिए भी पंच तत्वों की आवश्यकता होती है, किसी को भी थकान करने पर आराम करने की सलाह कर जाने पर पानी या मूत्र से भीगे कपडे को बाधना तथा जहरीले कीडे या सांप द्वारा काटने पर मिट्टी का लेप करना, चर्म रोग होने पर पीली मिट्टी का लेप करना इत्यादि सभी प्रकार के उपाय भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के विकास की पहली अवस्था के रूप में प्रादुर्भाव माना जाता है यह काल 50 0 0 वर्ष पूर्व वैदिक ग्रंथों मे बताया गया है। उसके पश्चात भारत और विदेशों मे विभिन्न गम्भीर रोगों की उन अवस्था में किसी व्यक्ति विषेष के द्वारा सामाजिक वातावरण को छोडकर वनों मे चले जाना तथा विभिन्न पद्धतियों के चिकित्सकों द्वारा इसके प्रयोगों द्वारा वैज्ञानिकता सिद्ध करना आदि के साथ-2 विकसित होता गया। जिन मुख्य भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा इस पद्धति में विकसित किया गया। ऐसे प्राकृतिक चिकित्सकों का आप जीवन परिचय हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

2 .2 उद्देश्य :-

1 .प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का अध्ययन करना।

2 .प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख संस्थापकों को परिचय।

3 .विदेशी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रणेताओं का जीवन परिचय का अध्ययन करना।

2 .3 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास :-

प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास उतना ही पुराना है। जितना स्वयं प्रकृति का यह पद्धति पृथ्वी पर प्रथम जीव के स्वरूप से ही प्रारम्भ हो गयी थी। यह चिकित्सा विज्ञान सभी आज की चिकित्सा प्राणालियों से पुराना है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि यह दूसरी चिकित्सा पद्धतियों कि जननी भी है। इसका वर्णन पौराणिक ग्रन्थों एवं वेदों मे मिलता है अर्थात वेद काल के बाद पौराण काल में भी यह पद्धति प्रचलित थी। उस काल में दुग्ध काल, फल कल्प, उपवास इत्यादि के द्वारा ही स्वस्थ हो पाते थे। ऐसे लोग जो भोग विलासी होते थे वे उपवास इत्यादि में विश्वास नहीं करते थे। उन्होने कुछ पेड पौधे पत्तें इत्यादि के रूप में औषधि का प्रयोग रामायण काल से प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार जीव के पदार्पण को ही प्रकृति एक भाग मानश जाता है। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास डा. ईसाफ जेनिग्स (**Dr. Isaac Jennings**) में जो अमेरिका में 1 7 8 8 से प्रारम्भ कर दिया था। जोहन बेस्पले (श्रवीर्दे मेइल) ने भी ठण्डे पानी के स्नान एवं पानी पीने की विधियों से उपचार देना प्रारम्भ किया था।

महाबग्ग नामक बोध ग्रन्थ में वर्णन आता है कि एक दिन भगवान बुद्ध भिक्षु को सांप ने काट लिया तो उस समय जहर के नाश के लिए भगवान बुद्ध ने चिकनी मिट्टी, गोबर, मूत्र आदि को प्रयोग करवाया था और दूसरे भिक्षु के बीमार पडने पर भाप स्नान व उष्ण गर्म व ठण्डे जल के स्नान द्वारा निरोग किये जाने का वर्णन 2 50 0 वर्ष पुरानी उपरोक्त घटना से सिद्ध होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के साथ-2 योग एवं स्नान आसाने का प्रयोग शारीरिक एवं आध्यात्मिक सुधारों के लिये 50 0 0 हजारों वर्षों से प्रचलन में आया है पतंजलि योग सूत्र इसका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है इसका प्रचलन केवल भारत में ही नहीं अपितु विदेशों मे भी प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों के विषय में यहां वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा के इतने (पुराने इतिहास के साथ) इसका विकास प्रायः लुप्त जैसा हो गया था क्यों। आधुनिक चिकित्सा प्राणालियों के आगमन स्वरूप इस प्रणाली को भूलना स्वाभाविक भी था इस प्राकृतिक चिकित्सा को दोबारा प्रतिष्ठित करने की मांग को उठाने वाले मुख्य चिकित्सकों में बडे नाम वाले ऐलोपैथिक डा. मुख्य रूप से विदेशी अर्थात पाश्चातय देशों का योगदान वर्णनीय है। ये वो प्रभावशाली व्यक्ति थे जो औषधि विज्ञान का प्रयोग करते-2 थक चूके थे और स्वयं रोगी होने के बाद निरोग होने मे असहाय होते जा रहे थे। उन्होने स्वयं पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग करते हुए स्वयं को स्वस्थ किया और अपने शेष जीवन में इसी चिकित्सा पद्धति द्वारा अनेकों असाध्य रोगियों को उपचार करते हुए इस चिकित्सा पद्धति को दुबारा स्थापित करने कीशुरूआत की। इन्होने जीवन यापन तथा रोग उपचार को अधिक तर्क संगत विधियों द्वारा किये जाने का शुभारम्भ किया।

2 .4 प्राकृतिक चिकित्सा का भारत वर्ष में इतिहास :-

भारत वर्ष में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रादुर्भाव के विषय मे श्री डी. वेंकट चेलापति शर्मा जी ने वर्ष 1 8 9 4 में डा. लूई कूने के प्रसिद्ध पुस्तक ”जैम दमू `बपमदबम व िीमंसपदह“ का तेलगू भाषा में अनुवाद करके इसका प्रारम्भ किया। इसके पश्चात 1 9 0 4 में बिजनौर निवासी श्री कृष्ण स्वरूप ने इसका अनुवाद हिन्दी और उर्दु दोनों भाषाओं मे किया। पुस्तकों के आगमन के साथ-2 लोगों की रूचि और उसके अध्ययन में भी वृद्धि होनी प्रारम्भ हुई और शीघ्र ही यह चिकित्सा पद्धति लोगों मे प्रचलित होनी प्रारम्भ हुई। महात्मा गांधी जी एडोल्फ जूस्ट की पुस्तक ”त्मजनतद जव दंजनतम“ पढकर बहुत प्रभावित हुए। उनके जीवन में यह पद्धति गहराई तक चली गई और उन्होने तुरन्त प्रभाव से अपने स्वयं केशरीर तथा परिवार के लोगों और आश्रम मे रहने वाले लोगों पर उपचार प्रयोग प्रारम्भ किए। अन्ततः भारत जैसे गरीब देशों में स्वास्थ्य के लिए यह पद्धति सर्वोत्तम पद्धति है। इसका प्रचार उन्होने गांव-2 में करने के साथ ही पूना के पास उरलिकांचन में एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की और इस चिकित्सालय के चिकित्सक भी बने। उरलिकांचन मे पहला प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित होने के कारण ही दक्षिण भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रादुर्भाव सबसे पहले हुआ है।

डा. कृष्णम राजू ने विजयवाडा से थोडी दूरी पर ही एक विषाल चिकित्सालय की स्थापना की इसके साथ साथ देश में डा. जानकीशरण वर्मा, डा.शरण प्रसाद, डा. महावीर प्रसाद पोद्दार, डा. गंगा प्रसाद गौड, डा. विट्ठल दास मोदी, डा. हीरालाल, महात्मा जगदीशवरानन्द, डा. कुलरन्जन मुखर्जी, डा. वी. वेंकट राव, डा. एस. जे. सिंह, इत्यादि के प्रयासों से कई सरकारी संस्थाएं तथा दिल्ली में केन्द्रिय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिशद इत्यादि की स्थापना हेतु मुख्य योगदान दिया जिसके फलस्वरूप आज मान्यता प्राप्त चिकित्सालय पद्धति के रूप में स्वीकार की गई। इनमे से कुछ का जीवन परिचय इस प्रकार है।

1 . डा. कुलरंजन मुखर्जी :- प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में डा. कुलरंजन मुखर्जी का बहुत बडा योग दान रहा। बचपन से ही इन्हें प्रकृति एवं प्राकृतिक चिकित्सा से विषेष प्रेम था। तथा किशोरावस्था में इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग रोग उपचार के लिए शुरू किया। सन् 1 9 3 0 में डा. कुलरंजन ने हाजरा रोड, कोलकाता मे नेचर केयर अस्पताल मे कार्य किया। इससे भी पूर्व उन्होनें बांग्लादेश ढाका के मदारीपूर मे नेचर केयर अस्पताल के कार्य किया तथा सफल परीक्षण प्राप्त किए। अपने जीवन काल में उन्होने हजारों असाध्य रोगियों के रोगों ठीक किया इसी कारण उनकी तुलना ऐलोपैथी के सीनियर डा. विधान चन्द्रा के साथ की जाती थी। गांधी जी को भी इनके द्वारा दी गई उपचार पद्धति पर विश्वास था तथा वह भी इनके पास रोगियों को भेजा करते थे। इन्होने एक पुस्तक भी लिखी प्रोटेक्टिव फुडस इन हेल्थ एण्ड डिसीज। इसके अतिरिक्त इन्होने अग्रेंजी और हिन्दी भाषा में कई महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी ये पुस्तकें आज भी सराहनीय एवं सहायक है। डा. मुखर्जी ने केवल रोगियों की चिकित्सा करते थे अपितु वह अपनी आय का 50 प्रतिशत भाग प्राकृतिक चिकित्सा मे लगते थे। यह बहुत ही इमानदार तथा सरल व्यक्तित्व के व्यक्ति थे।

सन् 1 9 56 में डा. मुखर्जी ने अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषाद की स्थापना की इस प्रकार इनके द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में अद्भूत चमत्कार किए।

2 . श्री विट्ठलदास मोदी :- इनका जन्म 2 5 अप्रैल सन् 1 9 1 2 ई. में जनपद गोरखपुर मे हुआ था। इन्होने मैट्रिक तक शिक्षा गोरखपुर शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से कि। वह अध्यापक बनना चाहते थे। एक बार यह भंयकर रूप से बीमार पड गए तथा सभी तरह की दवा लम्बे समय तक लेने पर आराम नहीं हुआ तो इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा श्री बालेश्वर प्रसाद सिंह के मार्ग दर्शन में न केवल रोगमुक्त हुए बल्कि उनका स्वास्थ्य पहले से भी उत्तम हो गया इसी से ही उनकी आस्था और निष्ठा प्राकृतिक चिकित्सा में लग गई।

आगे चलकर सन् 1 9 4 0 ई. मे इन्होने आरोग्य मंदिर प्राकतिक चिकित्सालय की स्थापना की इन्होने एडोल्फ जस्ट द्वारा लिखी पुस्तक ”त्मजनतदम जव दंजनतम“ का हिन्दी अनुवाद करके भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में एक बडा कार्य किया इन्होने

गांधी जी की रचनात्मक प्रवृतियों पर केन्द्रियों पत्रिका जीवन-साहित्य का संपादन भी किया।

इन्होने भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र मे ज्ञान व अनुभव का प्रयोग कर खूब सम्मान तथा प्रतिष्ठा हासिन की तथा किसी अनुभव के कारण विदेशों में भी इस पद्धति के अध्ययन के लिए यह अनेकों देशों मे गए वहां यात्रा की दौरे किए। वह अमेरिका भी गए तथा वहां के प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र देखकर तथा अनुभव प्राप्त कर उन्होने एक पुस्तक यूरोप-यात्रा नामक पुस्तक लिखी।

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए एक शिक्षा केन्द्र की स्थापना 1 9 62 में गोरखपुर में स्कूल ऑफ नेचूरल थेराप्यूटिक्स की स्थापना की जिसके द्वारा उन्होने कई हजारों बालक बालिकाओं को प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा दी । तथा आज वे शिष्य देश के विभिन्न भागों मे प्राकृतिक चिकित्सा के काम में लगे है। इन्होनेशारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए रोगो की सरल चिकित्सा स्वास्थ्य के लिए फल तरकारिया बच्चों का स्वास्थ्य एवं उनके रोग दुग्ध-कल्प उपवास से लाभ उपवास चिकित्सा आदि अनेकों पुस्तकों को अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं अनुवाद भी किया। मोदी जी ने प्राकृतिक चिकित्सा में मानस के निर्मलीकरण के लिए भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित विपश्यना ध्यान-साधना का समावेश किया इस प्रकार अपने जीवन के 60 वर्षों प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किए।

3 . डा. जानकीशरण वर्मा :- यह एक सफल चिकित्सक थे। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होने हिन्दी भाषा मे बहुत सारी पुस्तकें लिखी। इन्होने अचूक चिकित्सा और अचूक चिकित्सा के प्रयोग एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक की रचना की इनकी पुस्तक पढकर ही प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमी मार्ग दर्शन प्राप्त करते है। अपनी इन पुस्तकों के कारण ही उनका नाम प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

4 . डा. के लक्ष्मण शर्मा :- इन्होनें तमिलनाडू मे जन्म लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त करके सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के लिए समर्पित कर दिया। इन्होने अति प्रसिद्ध पुस्तक प्रेक्टिकल नेचर केयर की रचना कि। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में खूब प्रगति की।

5. डा. बालेश्वर प्रसाद सिंह :- प्राकृतिक चिकित्सा योगदान बहुमूल्य है। इन्होने भारत के कोने-2 में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार प्रसार किया। इसी उधेश्य की पूर्ति के लिए इन्होने बहुत सारे शिविरों का आयोजन कर हजारों लोगों को भी उपचार उपलब्ध करा कर उन्हें रोग मुक्त किया। इनके द्वारा अनेक पत्रिकाओं का सम्पादन कुशलता-पूर्वक किया। जीवन सखा एक श्रेष्ठ पत्रिका थी। इन्होने गांधी जी से प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा प्राप्त की तथा अपना पूरा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को सर्म्पित किया। इन्होने अनेकों युवकों को प्रशिक्षण देकर सुयोग्य प्राकृतिक चिकित्सक बनाया।

6. महात्मा गांधी :- महात्मा गांधी बहुत ही महान प्राकृतिक चिकित्सक थे। इन्होने देश में प्राकृतिक चिकित्सा के अतिरिक्त उपवास और सत्याग्रह के नियमों का भी अनुपालन किया। इन्होने सर्वप्रथम भारत मे प्राकृतिक आश्रम का निर्माण किया। इन्होने आरोग्य की कुजी का सम्पादन किया। जिसका प्रचार प्रसार देश और विदेश में हुआ तथा लाखों लोगों ने इससे लाभ उठाया।

गांधी जी ने एडोल्फ जुस्ट द्वारा रचित पुस्तक **"Return to nature"** नाम प्रसिद्ध पुस्तक का अध्ययन करके प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा प्राप्त की और इस क्षेत्र में बहुत सफलता प्राप्त की। इन्होने भारत के साथ-2 विदेशों मे भी इस पद्धति का प्रचार किया। इनकी लिखी पुस्तकों मे **"Dut & dute reform"** आहार शास्त्र अपने समय की लाभकारी और उपयोगी पुस्तक है।

7 . डा. वेगिराज कृष्णम राजू :- इनका जन्म 1 9 1 0 सन् में हुआ। इन्होने आन्ध्रप्रदेश में विषाल प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की तथा एक आदर्श प्राकृतिक चिकित्सा शिक्षण संस्था का संचालन किया इन्होने कई पुस्तकें भी लिखी जो प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

8 . डा. महावीर प्रसाद पोददार :- इस प्राकृतिक चिकित्सक ने महात्मा गांधी जी से प्रेरणा प्राप्त कर इस पद्धति को अपनाया इन्होने अपनी सम्पूर्ण आयु प्राकृतिक चिकित्सालय में रहकर हजारों निराश रोगियों को जीवन दान दिया और इन्होने हिन्दी में अनेक किताबों भी लिखी।

9 . सन्त विनोबा भावे :- सन्त विनोबा भावे महात्मा गांधी जी के आध्यात्मिक आचार्य थे तथा इन्होने भी राम नाम तत्व की प्राकृतिक चिकित्सा से महत्वपूर्ण बताते हुए राम नाम एक चिन्तन पुस्तक मे प्राकृतिक जीवन के मूलभूत आदर्शों का बडे सुन्दर विवेचन किया। इन्होने कई सम्मेलनों मे प्राकृतिक चिकित्सकों का विषेष मार्गदर्शन किया।

1 0 . श्री मोरार जी भाई देसाई :- अंग्रेजीशासन के समय एक उच्च पद पर कार्यरत होते हुए भी इन्होने इसका त्याग कर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और भारत के प्रधानमंत्री का पद भार को सम्हालते हुए प्राकृतिक चिकित्सा को नया मोड दिया। इन्होने कई पुस्तकों के द्वारा अपने अनुभवों को जन-2 तक पहुचाया फरवरी 1 9 9 5 से आप 1 0 0 वर्ष होकर जीवन शरद शतम का एक जीवान्त उदाहरण प्रस्तुत करेगें।

1 1 . डा.शरण प्रसाद :- आपने अनेक वर्षों तक भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा विद्यापीठ कलकत्ता मे प्राचार्य एवं मुख्य चिकित्सक के रूप मे कार्य किया तथा इन्होने कई वर्षों तक गांधी जी द्वारा स्थापित निसर्गों उपचार केन्द्र उरूलीकंचन में मुख्य चिकित्सक के पद पर कार्य किया इन्होने अपने अनुभवों के आधार पर कई श्रेष्ठ तथा प्रमाणिक ग्रन्थों का लेखन किया जिनका प्रकाशन सर्व सेवा संघ में किया। डा. शरण प्रसाद एक महान चिकित्सक के उदाहरण है।

1 2 . डा. एस. जे. सिंह :- यह श्रेष्ठ प्राकृतिक चिकित्सकों में से एक है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रशिक्षण विदेश से प्राप्त किया तथा अपने जीवन का बडा काल प्राकृतिक चिकित्सा को सर्म्पित किया। इन्होने लेलिंग का अंग्रेजी भाषा में उर्दु तथा हिन्दी लिपि में सविस्तार, अनुवाद किया जो उस समय के महत्वपूर्ण योग दानों मे से एक था यह बहुत ही लोकप्रिय प्राकृतिक चिकित्सक थे।

1 3 . डा. बी. वेंकटराव वा डा. श्रीमति विजय लक्ष्मी :- ये दोनो ही डा. कृष्णम राजू के शिष्य थे तथा उनसे प्रशिक्षण ग्रहण कर इन्होने हैदराबाद में एक विषाल प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की इसी के साथ नेचर केयर कॉलेज की स्थापना कर उसे उसमानिया युनिवर्सिटी से मान्यता भी दिलाई जहां की डण्ठण्ठ्ैण् योग्यता के बराबर उपाधि छात्रों को दी जाती थी।

1 4 . डा. एस. स्वामी-नाथन :- ये एक महान चिकित्सक तथा डा. स्व. के लक्ष्मण शर्मा के शिष्य भी थे। यह उच्च शिक्षा ग्रहण कर केन्द्रीय सरकार मे उच्च अधिकार के पद पर कार्यरत होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में निस्वार्थ भाव से बढ चढ कर सेवा का काम कर रहे है। यह लाइफ नेचुरल अंग्रेजी मासिक पत्रिका के सम्पादक के साथ-2 जीवन सखा मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया।

1 5. डा. हीरा लाल :- भारत प्राकृतिक चिकित्सकों मे डा. हीरा लाल जी का विषेष स्थान है। इन्होने डा. विट्ठल दास और डा. महावीर प्रसाद पोटदार के साथ प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य आरोग्य मन्दिर में प्रारम्भ किया। इसके साथ-2 ही इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार के लिए गांव गांव जाकर अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई साथ ही प्रकाशन के कार्य में भी यह क्रियाशील रहें। चिकित्सा के प्रचार प्रसार में इन्होने अपना जो सहयोग दिया। उसके परिणाम स्वरूप जन जन तक इस चिकित्सा को पहुंचाना सम्भव हो पाया। इन्होने महामंत्री के रूप में अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा परिषद एवं योग परिषद के कार्य भार को संभाला। इनके द्वारा कई पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी व अंग्रेजी में किया गया।

1 6 डा. जे. एम. जस्सावला :- यह भी लम्बे समय से प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र से जुडे हुए है तथा इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभवों के आधार पर प्राकृतिक चिकित्सकों को अनेकों उच्च कोटि की प्रमाणिक पुस्तकें भी दी है।

1 7 डा. गौरीशंकर :- डा. एम. जस्सावला की तरह इन्होने भी अपने जीवन के लगभग 4 4 वर्ष प्राकृतिक चिकित्सा संगठनों एवं अन्य रचनात्मक कार्यो मे सक्रिय रूप से कार्य करते हुए शिक्षण प्राप्त कर उत्तरप्रदेश में प्रमुख चिकित्सक के रूप में कार्य किया। इन्होने 1 9 8 0 सन् में महर्षि दयानन्द प्राकृतिक योग प्रतिष्ठान की स्थापना की है। इन्होने तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी।

1 8 डा. जगदीश चन्द्र जौहर :- इन्होने सन् 1 9 4 7 में महात्मा गांधी जी के सम्पर्क में आने पर इस पद्धति की ओर अग्रसर होकर कई महत्वपूर्ण कार्य किए तथा आयुर्वेद

का प्रशिक्षण प्राप्त कर सेवा में लग गए साथ ही पट्टी कल्याणा प्राकृतिक चिकित्सालय के संस्थापक पं. ओम प्रकाश त्रिखा की के सम्पर्क में आने के पूर्ण रूप से केवल प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में लग गए। इन्होने बाद में गांधी जी द्वारा लिखी गई पुस्तक आरोग्य की कुजी की उर्दु में अनुवाद भी किया।

1 9 . डा. युगल किशोर चौधरी :- इन्होने अपना पूरा जीवन केवल प्राकृतिक चिकित्सा को सर्म्पित किया तथा इसका प्रचार प्रसार करते हुए तीस से अधिक पुस्तक लिखकर प्राकृतिक चिकित्सा साहित्य को समृद्ध किया।

2 .5 प्राकृतिक चिकित्सा का विदेशों मे विकास :-

भारत में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का जन्म हुआ। तथा इसकी उपयोगिता की महत्ता

भी भारत में अति प्राचीन समय से चली आ रही है। जिन-2 स्वास्थ्य सम्बन्धी प्राकृतिक क्रियाओं का हम प्रयोग कर रहे है वे सभी उपचार की पद्धतियां पूर्वावस्था में प्राचीन भारत में विद्यमान थी। भारत में ही रोग निवारण के लिए इस पद्धति का प्रयोग नहीं किया वरन् अन्य कई देशों में भी इस पद्धति का प्रयोग आज किया जा रहा है प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भारत की ही देन है परन्तु कुछ कारणों तथा अन्य विकासों के प्रभावानुसार यह पद्धति भारत में लुप्त हो गई इसके बाद इसके पुनः निर्माण का श्रेय विदेशों (पाश्चातय देशों) को ही है। ईसा से कई सौ वर्श पूर्व ही हिपोक्रेटीज ने प्राकृतिक चिकित्सा का पुनः पुनरूथान किया इसी कारण इन्हें चिकित्सा का जनक कहते है। इनके प्रयासों के परिणाम स्वरूप 1 8 वीं शताब्दी के मध्य से प्राकृतिक चिकित्सा का प्रारम्भ तथा विकास शुरू होने लगा तथा हम इस चिकित्सा को पुनः जानने लगे। इस पद्धति के पुनरूथान में जिन महान और प्रभावशाली व्यक्तियों का योगदान है वह पहले से ही रोगों को ही उपचार के लिए औषधियों का प्रयोग करते थे परन्तु औषधियों के प्रयोग के बाद भी रोगों पर सफलता न पासकने तथा उसके प्रतिकूल प्रभावों को जानने के बाद और स्वयं पर भी औषधि चिकित्सा की प्रणाली के कटुफल चखने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ग्रहण कर स्वस्थ जीवन जीने लगे। इन्होने इस पद्धति के चमत्कारों से प्रभावित होने के कारण इस पद्धति के प्रचार प्रसार और विकास में लग कर प्राकृतिक चिकित्सा को नया जन्म दिया इस प्रकार कई विदेशी प्राकृतिक चिकित्सको को इसके पुनः पुनरूथानों का श्रेय जाता है। जिन्होने अपने कठिन प्रयासों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को नया रूप प्रदान कर पुनः जीवित किया ऐसे कुछ महान चिकित्सकों का विवेचन नीचे किया जा रहा है।

1 . जेम्स क्यूरी और सर ज्ञान फलायर :- डा. फलायर इंग्लैड के लिचफील्ड नगर के निवासी थे। लिचफील्ड के एक सोते के पानी में कुछ किसानों को नहाकर स्वज्ञस्थ्य लाभ करते देख उन्हे जल के स्वास्थ्य वर्द्धक प्रभाव के सम्बन्ध में अधिकाधिक जांच पडताल करने की प्रबल ईच्छा हुइ। जिसके कारण उनका रूझान इस पद्धति की ओर हुआ।

डा. जेम्स क्यूरी लिवर पुल के रहने वाले थे सन् 1 7 1 7 ई. को लगभग इन्होने एक जल चिकित्सा सम्बन्धित पुस्तक लिखकर उसका प्रकाश कराया।

2 . लुई-कूने :- डा. लूई कूने एक प्रसिद्ध चिकित्सक के रूप में जाने जाते है। इनका जन्म 1 8 4 4 मे जर्मनी में हुआ। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को विषेशकर जल चिकित्सा को उन्नति के शिखर तक पहुंचाने के लिए जीवन का अधिकांश समय दिया। इसके साथ ही उन्होने दो महत्वपूर्ण पुस्तकें **"The new science of Healing"** तथा **"The science of facial Expression"** लिखी।

इन्होने रोग के कारण और उपचार पर जोर देते हुए चिकित्सा प्रारम्भ की और अन्ततः लिपजिंग (स्पपचग्रपह) नगर में अपना एक चिकित्सालय भी स्थापित किया। जल चिकित्सा में प्रयोग होने वाले उपकरणों की डिजाइनिंग करके हिप बाथ आदि की शुरूआत में महत्वपूर्ण योगदान दिया जो आज भी प्राकृतिक चिकित्सा में उनके नाम से प्रसिद्ध है जैसे मेहन स्नान के लूई कूने नाम से ही जाना जाता है। उन्होने विजातीय द्रव्य के पनपते की और उसके विभिन्न स्थानों पर जमा होने पर विस्तृत रूप रेखा तैयार की।

आपका जन्म एक जुलाहे परिवार में हुआ था। लेकिन इन्हे कई दर्दनाक परिस्थितियों का सामना करना पडा। जब आकास्मक माता-पिता के निधन व अपने शरीर के असाध्य फोडों के कारण औषधि विज्ञान के चिकित्सकों के द्वारा हतोत्साहित होना पडा इसी कारण उन्हे अपने लिए किसी सुदृढ चिकित्सा प्रणाली की आवश्यकता हुई और प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ले स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सफल भी हो गए।

3 . विनसेंज प्रिस्निज :- इनका जन्म सन् 1 7 9 9 में आस्ट्रेलिया में हुआ। इनको जल चिकित्सा का जनक कहा जाता है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा मे आने से पूर्व एक घायल देखा जो बार-2 अपने उस घाव को लेकर पानी के तलाब में लेंटता था। ऐसा कुछ दिनों करने पर उसका घाव पूरी तरह ठीक हो गया था इसे देखकर उन्होने कई प्रयोग करे परन्तु इन प्रयोगों के करने के कारण उनको न्यायालय मे भी उपस्थित होना पडा परन्तु अन्ततः न्यायालय द्वारा इस पद्धति को हितकारी मानते हुए न्यायालय द्वारा उनके हित मे ही फैसला सुनाया गया। इसके पश्चात उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का खुलकर उपचार अपने घर पर ही देना शुरू किया। तथा प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में उनका विरोध होना पर भी बिना डरे उन्होने अपने पूरे विश्वास और लगन से इसके अनेकों चमत्कार किए तथा पूरी दुनिया द्वारा भी माने गए।

4 . डा. इसाक जेनिंग (क्तण ैंब श्रमददपदहे) :- औषधि विज्ञान के डॉक्टर के रूप में पहुचाने जाने वाले डा. जेनिंग अमेरिका में 1 7 8 8 में पैदा हुए और उन्होने प्रकृति एवं सफाई को अधिक महत्व देते हुए एक बुखार के रोगी को उपवास, विश्राम और अत्यधिक पानी के सेवन के साथ शान्त वातावरण में रहने की सलाह दी इस प्रकार वह अन्य दुसरे रोगों मे एक टाइफाइड के रोगी को जिस पर दवाओं का कोई असर नहीं हो रहा था का प्राकृतिक उपचार किया। जिससे रोगी की स्थिति में सुधार होने लगा। सन् 1

8 2 2 में उन्होने पूरी तरह से दवाओं का प्रयोग बन्द कर दिया और प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे। इसका प्रयोग करने से रोगियों की मृत्युदर में गिरावट आने पर चमत्कारी प्रभाव सामने आने लगे। तथा स्वस्थ होने में भी परिणाम शीघ्र प्राप्त होने लगे। इससे उन्होने निष्कर्ष निकाला की रोग बाहरी वातावरण की नहीं वरन जीवनी शक्ति के ह्रास की देन है। उनकी उपचार पद्धति को अर्थोपैथी के नाम से जाना जाता है। इन्होने तीन किताबें लिखी **"The medicial reform" "Philosophy of human life"** तथा **"The tree of human life as human degeneracy"** हैं।

5. फादर सेबस्टियन नीप :- फादर नीप ने जल चिकित्सा पर अनेको प्रयोग व आविष्कार किये। इन्होने जल चिकित्सा का प्रयोग कर बडी सफलता प्राप्त की। इन्होने एक स्वास्थ गृह का संचालन 4 5 वर्षों तक कुशलता पूर्वक किया तथा उसके द्वारा अनेकों लोगों को प्रशिक्षित किया। इनके नाम से जर्मनी में एक नील स्टोर्स है जहां जडी बूटीयों, तेल, साबुन तथा स्नान सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएं तथा स्वास्थ्यप्रद प्राकृतिक भोजनों का प्रदर्शन किया जाता है। इन्होने सन् 1 8 57 ई. में जल चिकित्सा पर **"My water cose"** नामक पुस्तक का हिन्दी रूपान्तरण जल चिकित्सा के नाम से आरोग्य मंदिर गोरखपुर प्रचार प्रसार व प्रशिक्षण के लिए समर्पित कर दिया। इन्होने प्रकृति निकेतन विद्यापीठ डायमण्ड हार्बर जि. 2 4 परगना पश्चिम बंगाल में प्राकृतिक चिकित्सा के चार वर्षीय कालेज के प्रधानाध्यापक के पद के साथ मुख्य चिकित्सक का पद भी 9 0 वर्ष की आयु तक पूरी क्षमता के साथ सम्भाला।

इन्होने मासिक पत्रिका प्रकृति वाणी का सम्पादन भी किया तथा इनके द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी मे लगभग 4 0 से उपर पुस्तकें लिखी गई।

5. आर्नल्ड खिली :- ये एक व्यापारी होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा से प्रभावित होकर व्यापार छोड कर इस चिकित्सा क्षेत्र में आ गए। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा में एक अध्ययन वायु चिकित्सा एवं धूप चिकित्सा को जोड दिया। बाद में इन्होने सन् 1 8 4 8 ई. में आस्ट्रिया में धूप और वायु का एक सेनेटोरियम स्थापित किया। जो संसार का प्रथम प्राकृतिक चिकित्सा भवन बना।

7 . एडोल्फ जुस्ट :- एडोल्फ जुस्ट जर्मनी के रहने वाले थे इनके द्वारा मिट्टी चिकित्सा का विकास तथा प्रयोग और इसकी उपयोगिता की महत्ता को माना जाने लगा। इन्होने मिट्टी के अनेकों प्रयोग कर रोगों की चिकित्सा की। इनके द्वारा ही मालिश की क्रिया का जन्म भी हुआ। इन्होने महत्वपूर्ण पुस्तक **"Return to nature"** भी लिखी जो आज संसार भर में सुप्रसिद्धी प्राप्त कर रही है।

8 . आर्नल्ड एहरेट :- डा. आर्नल्ड भी प्रसिद्ध चिकित्सकों मे से हैं। ये जर्मनी के रहने वाले थे परन्तु इनका कार्यक्षेत्र अमेरिका था। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा की फलाहार और

उपवास की पद्धति पर अधिक जोर दिया तथा बडे बडे रोगों को केवल आहार तथा उपवास द्वारा ही मार भगाया। इन्होने कई पुस्तकें लिखी जिनमें से दो पुस्तके अधिक प्रसिद्ध है- **"Rational falting"** और **"Nuculess seit healing system"**.

9 . हेनरी लिण्डल्हार :- हेनरी लिण्डल्हार का जन्म 1 मार्च 1 9 53 को हुआ। इन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में लगा दिया। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा से होने वाले लाभों तथा प्रभावों को वैज्ञानिक आधार द्वारा प्रस्तुत किया। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त तीव्ररोग अपने चिकित्सक स्वयं होते है का समर्थन दिया जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के विरूद्ध जाकर रोगों उपचार में दूसरी पद्धतियों की औषधियों के सेवन पर जोर दिया। सन् 1 9 0 4 में 51 वर्ष की अवस्था मे एम. डी. की उपाधि प्राप्त की। इन्होने कई पुस्तकें लिखी जिनमें मौलिक पुस्तकें, फिलोसफी ऑफ नेचर केयर प्रैक्टिस आफ केयर कुक बुक इनके अपने निजी अनुभवों द्वारा सम्पादित की हुई है।

1 0 . बेनिडिकट लुस्ट :- बेनिडिकट लुस्ट फादरनीप के प्रिय शिष्यों में से एक थे। इनका जन्म 3 फरवरी 1 8 7 2 ई. को हुआ था। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार प्रसार अमेरिका मे जाकर किया। अमेरिका मे ही इन्होने नीप-वाटर क्योर नामक एक मासिक पत्र निकाला तथा बाद में एक पत्र नेचर्स-पथ भी स्थापित किया इनके द्वारा न्यूयार्क मे एक स्कूल तथा कालेज की स्थापना की। जो अब सुप्रसिद्ध यंग बार्न्स अस्पताल मे परिणत हो गया है। यही नहीं इसके अतिरिक्त भी इन्होने कई अन्य अस्पतालों स्कूलों तथा संस्थाओं की भी स्थापना की। इनका देहान्त 1 9 50 ई. अपने द्वारा स्थापित अस्पताल मे ही हुआ।

1 1 . जे. एच. टिल्डेन :- इनका जन्म अमेरिका मे हुआ। इन्होने उपचार में कारणों को दूर करने पर जोर दिया जिनके द्वारा रोग उत्पन्न होते है। तथा रोगी को प्राकृतिक जीवन जीने की शिक्षा पर भी इन्होने बल दिया इन्होने प्रसिद्ध पुस्तक **"Impatired health"** भी लिखी।

1 2 हेनरिच लेमैन :- यह जर्मनी में रहने वाले तथा एक एलोपैथी को मानने वाले थे। परन्तु बाद में इन्होने ड्रेस डेन मे एक स्वास्थ्य ग्रह भी बनाया जिसके द्वारा इन्होने मानव स्वास्थ के लिए पोपक तत्वों की आवश्यकता पर अनुसंधान किए तथा यह सिद्ध किया कि स्वस्थ रहने के लिए आहार ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1 3 राबट हावड :- राबर हाबड भी एक अच्छे प्राकृतिक चिकित्सक थे। इन्होने अपने जीवन काल का बडा भाग प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किया। राबट हावड ने भी अपने अनुभवों द्वारा प्राकृतिक आहार के सम्बन्ध में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर उसे उपचार में प्रयोग कर सफलता प्राप्त कि।

1 4 बरनर मैकफेडन :- बरनर मैकफेडन बहुत ही प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इन्होने पुरा जीवन प्राकृतिक जीवन व व्यायाम पद्धतियों का अनुभव कर उसे प्रयोग करके रोगों को दूर करने पर जोर दिया। व्यायाम पद्धतियों का स्वयं अनुभव करके "**Father of physical culture**" की उपाधि को प्राप्त किया। इन्होने "**Physical culture**" पत्रिका का संपादन भी किया तथा "**Book of health, Fasting for health**" तथा "**Macfaddens eneyolopedia forphysical culture**" आदि दर्जनो पुस्तकों भी लिखी। उपवास पर इन्होने अपनी पकड बनाई तथा उपचार मे इसका प्रयोग किया।

1 5 डैन्सविली :- न्यूयोर्क अर्न्तगत जगत प्रसिद्ध स्वास्थ्य संस्था जैक्शन सेनीटोरियम आजकल आपकी ही संरक्षता में संचालित हो रही है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में बडे-2 कार्य किए इन्होने भी अपना जीवन चिकित्सा को दे दिया।

1 6 सर विलियम अर्बुथ नाट लेन :- यह एक एलोपैथी के चिकित्स थे फिर भी इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रभावों से खूब प्रभावित हुए तथा इस पर विश्वास करके इन्होने इसका खूब प्रचार प्रसार किया। इन्होने एक सुप्रसिद्ध पुस्तक ळववक भ्मंसजी भी लिखी।

1 7 जे. एच. केलांग :- इन्हें पूरा संसार प्राकृतिक चिकित्सक के नाम से जानता है। इनका जन्म 2 6 फरवरी सन् 1 8 52 ई. को अमेरिका में हुआ इन्होने एक विषय प्रकार का बैटिल क्रीक सेनीटोरियम बनाया जिसमें सभी चिकित्सा प्रणालियों जैसे जल चिकित्सा, आहार चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, स्वीडिश मूवमेन्ट तथा विद्युत-चिकित्सा आदि द्वारा उपचार होता है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में कई प्रकार के आविष्कार भी किए जिनमें विद्युत ज्योतिस्नान (म्समबजतपब सपहीजे इंजी) महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इन्होने "दि न्यु डायटेरिक्स", "रैशनल हाइड्रोथिरैपी" तथा "होम हैंड बुक आफ हाइजीन एण्ड मेडिसिन" आदि पुस्तकें भी लिखी।

1 8 . सर विलियम :- यह भी हेनरिच लेमैन तथा सर विलियम की तरह ही एक प्रसिद्ध ऐलोपैथी के चिकित्सक होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा में अगाध विश्वास रखते थे। इन्होने "**The principles practice of medicine**" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी।

ब्ले सेलमन एम. डी., विन्टर निट्रल, आटो कार्क, एडगर, जे. सैकसन ल्टन, इलियर, पंज, ओसवाल्ड, हरबर्ट स्पेन्सर, टर्न वेटर जान, बोन पीजली, हैन्स माल्टेन, एडविन बैबिट एन. डी., मिल्टन पावल आदि अनेकों ही और भी चिकित्सक है। जिन्होने अपना जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किया तथा इसके द्वारा रोगों का उपचार करके अनेकों रोगों पर विजय प्राप्त कि साथ ही साथ संसार के समस्त अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए तथा इनके द्वारा अनेकों पुस्तकों गई जो आज प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए अनमोल धरोहर है।

2 .6 सारांश :- हमने उपरोक्त इकाई में यह जानकारी प्राप्त की है कि प्राकृतिक चिकित्सा तो प्रकृति के साथ ही आरम्भ हुई। परन्तु चिकित्सानूभुति भारतवर्ष में समय समय पर विभिन्न प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा अपनाई गई तथा नए-नए रोगों में एक विश्वास से भरे प्रयोग जुडते चले गए देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और भारत वर्ष के स्वर्गीय मोरानूजी देसाई जैसी विभूतियों ने भी इसके महत्व को स्वीकार किया ऐसे ही वैज्ञानिक प्रयोग विदेशों मे भी रहे और उन्हे अनुभव हुआ कि पंचतत्व चिकित्सा का आधार बहुत ही परिणाम दायी है। डा. लूइकूने जैसे प्रसिद्ध चिकित्सकों ने भी इसके विभिन्न रूपों को भी प्रतिपादित किया और इस क्षेत्र में विभिन्न मील के पत्थरों को स्थापित किया इन जैसे महान चिकित्सकों कि प्रेरणा पा कर भारतवर्ष में कृष्णम राजु, विट्ठलदास मोदी, डा. महावीर दास पोटदार, डा. हीरालाल, जैसे लोगों ने इसके चिकित्सालय स्थापित किए इन्हीं सब चिकित्सकों का जीवन परिचय हमने इस इकाई मे पढ़ा।

2 .7 बौधात्मक प्रश्न (अभ्यासार्थ)

प्रश्न-1 :प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन करते हुए विदेशी प्राकृतिक चिकित्सकों के जीवन पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न-2 :भारत में प्रथम चरण के प्राकृतिक चिकित्सकों एवं देंश के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाए जाने का विवेचन कीजिए।

प्रश्न-3 :विट्ठल दास मोदी, कुलरंजन दास मुखर्जी और महावीर प्रसाद पोद्धार के प्राकृतिक चिकित्सा में योगदान का वर्णन करे।

संदर्भ ग्रन्थ :-

प्राकृतिक आर्युविज्ञान - राकेश जिन्दल

वृद्ध प्राकृतिक चिकित्सा - डा. ओ. पी. सक्सेना

इकाई - 3 :

प्राकृतिक चिकित्सा का योग एवं आयुर्वेद से संबंध

3 .1 परिचय

3 .2 उद्देश्य

3 .3 प्राकृतिक चिकित्सा

3 .4 आहार-विज्ञान-योग व प्राकृतिक चिकित्सा

3 .5योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म

3 .6आत्मानुशासन-तीनों प(तियों में

3 .7 स्वस्थ एवं सुखी जीवन-तीनों प(तियों में

3 .8 संदर्भ ग्रंथ सूची

3 .9 महत्वपूर्ण प्रश्न

3 .1 परिचय -

प्राकृतिक एवं आयुर्वेद चिकित्सा लाभ पृथ्वी पर मानव के विकास से भी पूर्व जीव जगत में मिलता रहा है। जो जीव प्रकृति के जितना सन्निकट होता है वह उतना ही प्राकृतिक चिकित्सा लाभ प्राप्त करता है। सूर्य की धूप के अनुसार पौधे का फुल-पत्ति, जड़, तना अपनी स्थिति में परिवर्तन करता है। पशुओं और पक्षियों को जब जितनी मिट्टी, धूप, हवा, पानी अथवा आकाश की आवश्यकता होती है वह ग्रहण करने का प्रयास करता है। ये जीव अपना मिट्टी स्नान, टब स्नान, सूर्य स्नान, घर्षण स्नान, व्यायाम एवं अन्य नैसर्गिक क्रियाएं अपनी आवश्यकता के अनुसार करते रहते है।

जिस प्रकार प्रकृति के निकट रहने वाले जीव प्राकृतिक चिकित्सा लाभ करते रहते है। उसी प्रकार ये जीव पौधों, एवं प्रकृति में स्थित द्रव्यों का आयुर्वेदिक प्रयोग ये जीव करते रहते है। बिल्ली कुत्ता भी एक पेट खराब की स्थिति में एक प्रकार की घास खाकर कुछ देर पश्चात मुंह के द्वारा उसे वापस बाहर निकाल देता है। बहुत से जीव प्रकृति में स्थित रसायनों का आयुर्वेदिक प्रयोग नैसर्गिक रूप से जानते है। एवं निरोगी रहते है। क्योंकि आयुर्वेदिक शास्त्रीय ज्ञान के अनुसार प्रकृति में स्थित प्रत्येक द्रव्य ;वस्तुद्ध कोई न कोई औषधीय गुण सम्पन्न होती है।

3 .2 उद्देश्य -

इस इकाई का मूल उद्देश्य यह है कि पाठ्यक्रम प्राकृतिक चिकित्सा विद्यार्थी मूल भूत रूप से आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर, समानता एवं समन्वय से भली भांती परीचित हो सकें। इस इकाई में प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक सिद्धान्त, आहार विज्ञान षट्कर्म एवं पंचकर्म के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। समय, आत्मानुशासन, इन्द्रिय नियंत्रण योग आयुर्वेदिक चिकित्सा में जितना अधिक आवश्यक है प्राकृतिक चिकित्सा में उससे भी अधिक जरूरी है। एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को भी चाहिए कि उसे प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान हो और प्राकृतिक चिकित्सा को भी चाहिए उसे आयुर्वेद का भी ज्ञान हो क्योंकि दोनो चिकित्सा पद्यतियों की मात्रा रेल की पटरियों की भांति है जो किसी भी स्टेशन, अथवा जंक्शन पर मिलती रहती है। दोनों का उद्देश्य एक है कि समाज सुखी, स्वस्थ एवं आनन्दित जीवन जी सके एवं भोजन की मात्रा पर रहे।

प्राकृतिक चिकित्सा का विकास प्रकृति के साथ हुआ है। जैसे प्रकृति अनादि है वैसे ही यह चिकित्सा भी अनाधि है। इसी प्रकार आयुर्वेद भी अनादि हैं। प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद तथा योग अपौरूषेय है यानि मनुष्युकृत नहीं है। जिस प्रकार चारों वेद को अपोरूषेय कहते है उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग अपोरूषेय है। ये तीनों पद्धतियां आदि और अनन्त है जिसका सटीक सविस्तार वर्णन वेदों में उपलब्ध है। महायोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण की गीता, पतंजलि, कृषि के योग दर्शन, चरक संहिता आदि आयुर्वेदिक ग्रंथों में उपलब्ध है जिसका वर्णन आगे किया गया है।

अस्तित्व के दो रूप है। जड और चेतना जड़ से चेतन के विकास वनस्पति सजीव के दो वर्ग वनस्पति तथा प्राणी मुख्य है। चेतन सजीवों वनस्पति तथा प्राणी के उद्भव के साथ उनमें स्वास्थ्य रक्षक एवं रोग निवारक शक्ति जीवनी शक्ति ;वायटलिटीद्ध का विकास हुआ जो अब तक समस्त सजीवों की रोगों से रक्षा करते हुए आरोग्य प्रदान करती रही है। जीने की चाहत जो जिविषा तथा जीवनी शक्ति एक दूसरे के लिए प्रेरक का कार्य कर हर मुसीबतों एवं रोगों पर जो लिखा यानि जीतने की इच्छा हेतु ये सतत् प्रयत्नशील रहती है।

जीवन के विकास सम्बन्धित अनेक धारणायें है। अलग-अलग मिथकों एवं सम्प्रदाओं की पृथक मान्यताएं है। उन सम्बन्धों में हम यह चर्चा नहीं करेंगे। हम यहां वैज्ञानिक मान्यता की चर्चा करेंगे कि कैंसे स्वस्थ रखने वाली जीवनी शक्ति एवं जिविषा का विकास हुआ।

अरबों वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड में एवं अपूर्व एवं अद्वितीय घटना घटी। सूर्य का एक टुकडा अलग हो गया, यही कालान्तर में पृथ्वी कहलाई। पृथ्वी की गोला थी। धीरे-धीरे उसका बाह्य हिस्सा ठण्डा होने लगा, तापमान कम होने से पृथ्वी के चारों ओर के आसमान में हाइड्रोजन ऑक्सीजन आदि गैसें मिलकर एक निश्चित अनुकूल तापमान एवं दबाव में रासायनिक प्रतिक्रिया से भाप एवं बादल बन गये। करोडों बरसों तक मुसलाधार बारिश होती रही। सारी पृथ्वी जलमग्न हो गयी। जिधर देखो उधर जल ही जल था। पृथ्वी के ठण्डे विशाल गहरे पृष्ठ पर प्रचुरता से जल इकट्ठा हो गये, यही बाद में महासागर कहलाये। आकाश धुलकर निर्मल निरभ्र स्वच्छ हो गया। अभी भी पृथ्वी के आन्तरिक

भाग धधकते पिघले द्रव की स्थिति में है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सक्रिय ज्वाला मुखी से निकलते लावा है। धीरे-धीरे वायुमंडल का निर्माण हुआ। वातावरण में मौजूद अनेक रासायनिक परिवर्तन हुए जिनसे शर्करा, एल्कोहल, एल्डिहाइड आदि अनेक रासायनिक तत्वों का निर्माण हुआ। ये सभी बरसात के जल में घुलकर सागर में पहुंचे। सागर के ज्वार भाटे की लहरों से इनका घोल बन गया जो जीवन के आदिम (**primiral**) सूप कहलाये। इनमें परमाणुओं की संख्या पर्याप्त होने से उनमें स्थायित्व पैदा हुआ। अपने को बचाये रखने की तीव्र लालसा का निर्माण हुआ। तीव्र जिजीविषा की प्रबलता के चलते आदि कालीन सागर में मौजूद रसायन शर्करायें, वसायें, एमिनो एसिड ;प्रोटीनद्ध तथा कोशिक जनक फॉस्फोलिपिडस आदि सर्वोत्कृष्ट संरचनाओं ने आत्म सुरक्षा के लिए एक झिल्ली निर्माण कर लिया।

प्रकृति का यह अद्वितीय महान प्रारम्भिक जैव सृजन जीवन का जिजीविषा तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने आप में अद्भूत मिसाल तथा कमाल था। झिल्लियों में बन्द होकर यह अनोखा जैव सृजन आदिकालिन समुद्र से पृथक अस्तित्व बना लिया। वे समुद्र में रह कर भी सागर से भिन्न थे। बाद में अनेक हिम युग आये, मौसम बदला, सागरों की संरचना बदली, वातावरण बदले लेकिन इन सबका कोई विशेष प्रभाव झिल्लियों में बन्द इन पुराने सागरों पर नहीं हुआ। झिल्ली में बन्द इन जैव रसायनों से जीवन का प्रारम्भिक विकास हुआ। इस प्रकार एककोशीय जीव का सृजन हुआ। एककोशीय जीव के जीने के लिए आवश्यक था पोषक तत्वों की आपूर्ति। इसके लिए भूख की अनुभूति हुईं। भूख से मुक्ति के लिए आहार की खोज प्रारम्भ हुई, उनमें संघर्ष एवं तनाव पैदा हुआ। जो कोशिका ऊर्जा का उपयोग करने में सक्षम हो गई, उनकी संख्या बढ़ने लगी। कमजोर एवं काटिल कोशिकाऐं नष्ट होने के के लिए अभिशप्त थी। सशक्त एवं प्रभत्व का प्रथम बार यु(प्रारम्भ हो गया। एक जाति की कोशिका दुसरी जाति को खाने लगी। अशक्त एवं आलसी कोशिकाएं समाप्त होने लगी। जो जवाबी हमला करने मे सामर्थ्यवान थी, वे बच गयी। इस प्रकार शक्तिशाली कोशिकाओं की संख्या बढती रही। डार्विन के नेचुरल सेलेक्शन के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी क्षेत्र में जो फिट था वही हिट हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम जीवनीशक्ति का प्राणियों में प्रादुर्भाव हुआ। आज भी हमारे शरीर परिवार एवं समाज में यही गुण धर्म विद्यमान है। गुणात्मक दृष्टि से शक्तिशाली कोशिकाओं का साम्राज्य होता है। जब भी किसी प्रकार के शत्रु रोगाणुओं का प्रहार हमारे शरीर पर होता है, शरीर की स्वस्थ खरबों कोशिकाऐं रासायनिक विषों की वर्षा कर तथा अन्य अनेक तरीकों से उनके संहार में लग जाती है, शरीर के ये नन्हें-नन्हें जीव जो सात माइक्रोन ;मि.मी. का हजारवां भागद्ध से भी छोटे होते है अपनी आत्म रक्षा में निरन्तर प्रयत्नशील रहतें है।

गुणात्मक दृष्टि से शरीर का जीव द्रव भी आदिम महासागर की तरह ही किंचित क्षारीय है, वैसा ही युद्ध आज भी चल रहा हैं जैसा आदिम महासागर में चलता रहा है। जब हमारे अन्दर सुस्त, कटिल तथा रूग्ण कोशिकाएं होती है तभी हम शत्रु रोगाणुओं के शिकार बनते है। कुछ घातक रोगों जैसे कम्वाइण्ड इम्यूनोडिफिसिएन्सी, एक्वायर इम्यूनडेफिशिएंसी सिंड्रोम प्रभावशाली होकर हमें नष्ट करने के लिए तुल जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद तथा योग शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाने के लिए रोग प्रतिरक्षात्मक प्रणाली जीवनी शक्ति को शौर्यशाली, शक्तिमान, एवं साहसी बनाने पर बल देती है ताकि प्रत्येक कोशिका रोगाणुओं से लडने में सक्षम हो सके। इसके लिए सम्यक आहार, सम्यक विचार, सम्यक विहार, सम्यक व्यवहार, सम्यक श्रम ;आसन, प्राणायाम, ध्यानद्ध, सम्यक खान-पान, सम्यक जीवन शैली तथा प्रकृति का उन्मुक्त किन्तु सम्यक सेवन पर बल देती है।

3 .3 - प्राकृतिक चिकित्सा के सार्वभौतिक मूलभूत सिद्धान्त के अनुसार हैं -

(i) सभी रोग एक है। (**unity of diseases**)

(ii) सभी रोग का कारण एक है। (**unity of causation of diseases**)

(iii) सभी रोग का निदान एक है। (**unity of diagnosis of diseases**)

(iv) सभी रोग की चिकित्सा एक है। (**unity of treatment of diseases**)

भारतीय गंगा यमुनी संस्कृति एवं परम्परा और दर्शन का प्रमुख सत्र रहा हैं। अनेकता में एकता और एकता में अनेकता का भाव/परिलसित होता है। भारतीय योग दर्शन “एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मम” यानि ब्रह्ममा एक ही है दुसरा नहीं। सत्य एक ही है, उसे जान लेने के बाद दुसरा जानने की जरूरत नहीं होती है। जिस प्रकार चांद या सूर्य का प्रतिबिम्ब थाल या किसी पात्र में रखे जल, ताल तलैया, झील या समुद्रादि के जल में अलग-अलग दिखाइ देता है, जिस प्रकार सोने से सैकडों आकार प्रकार, रूपरंग के आभूषण तैयार हो जाते है, लोहे या किसी धातु से नाना के प्रकार के उपकरण बनाये जाते है परन्तु, मूल तत्व एक ही है कि शरीर में संचित विषैले विजातीय पदार्थ जिन्हें आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में टॉन्सिन्स, टॉक्सिक मैटर, फॉरेण मैटर, मॉरबिड मैटर, पांयजनस मैटर कहा जाता हैं, यही अनेक रोगों के रूप में तथा विभिन्न नामों से जाना जाता है।

सभी रोग एक है, सभी रोग का कारण एक है इसे एक रोग वृक्ष के उदाहरण से समझा जा सकता हैं।

(अ) जमीन (**The soil**)- गलत आहार, असम्यक विहार (**wrong living**), नकारात्मक अनुचित विचार तथा दोषपूर्ण व्यवहार यानि कुदरत के कानून का निरंतर उल्लंघन (**violation of nature ׳s law ׳s-wrong feeding] wrong living and wrong thinking**)

(आ) जडें (**The roots½** - (1) अज्ञानता (**ignorance**) (2) आत्मनियंत्रण मनोबल एवं आत्म जागरण की कमी (**lock of self control and self**

awarness) (3) मोह माया मत्सर आसक्ति, अहंकेन्द्रित प्रतिधुवस्थ (**self indulgence and self central mind**) (4) जीवन के प्रति अपेक्षा का अभाव (**Indifference**) 'प्रज्ञापराध' यानि अज्ञान व मनोबल की कमी से आहार विहार चिन्तन की भूले व संयम नियम पालन में शिथिलता।

(इ) तना (**The trunk**) -(1) जीवन का शक्ति ह्रस (**lowered vitality**) (2) रक्त तथा लिम्फ स्त्रोतों की अशुद्धि (**abnormal composition of blood and lgmph**) (3) शारीरिक संस्थान में विजातीय विषैले पदार्थों-मल का इकत्रित होना (**accumulation of morbid matter toxins and toxic-poision in the sysytem**)।

(ई) शाखाएं (**The branch**) - जब रोगाणु कीटाणु विषाणु फंगस जन्य बीमारियां, ज्वर, जुकाम, दर्द, मोटापा, डिफ्थिरिया, कब्ज, पेट तथा आंत के रोगादि तीव्र तथा अनुतीव्र, अर्धजार्ण (**acute and subacute**) रोग।

(उ) फूल (**Flowers**) - दमा, पुरानी खांसी, टी. बी., एस. एल. इ., ब्लड प्रेशर, आटोइम्यून डिजीज, गठिया, संधिवात इत्यादि जीर्ण रोग।

(ऊ) फल (**Fruits**) - कैंसरादि, डिजेनरेटिव डिजीज, पार्किन्सन, एल्जीमर्स इत्यादि डिजेनरेटिव एवं नक्रोसिस रोग।

यदि रोग वृक्ष को जड़ मूल से उखाड़ फेंकना है, नष्ट करना है तो जमीन की रोग के अनुकूल वातावरण या अनुचित आहार, गलत विध्वंसक विचार असम्यक जीवन शैली तथा अराजक व्यवहार को सही एवं ठीक करना होगा। इसके वृक्ष के जड़ों को नष्ट करने के लिए स्वास्थ्य चेतना को जगाना होगा। अज्ञानता को दूर करनी होगी, आरोग्य ज्ञान के दीपक की रोशनी से जनजीवन को रौशन करना होगा। आयुर्वेद ;चरक संहिता, शारीर स्थानद्ध में भी रोग का कारण -

धीधृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत् कुरूतेऽशुभम।

प्रज्ञापराधंतं विद्यात् सर्व दोष प्रकोपणम्।।

बताया गया है अर्थात धी ;बुद्धि, धृति ;धैर्यद्ध, और स्मृति ;कर्तव्य विस्मरणद्ध के भ्रष्ट हो जाने पर व्यक्ति गलत काम करता हैं जिसे प्रज्ञापराध कहते हैं। इससे सभी दोष प्रकुपित होकर रोग पैदा करते है। उचित आहार विहार विचार शैली को अपनाकर जीवनी शक्ति को सम्वद्धन करना होगा। रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाना होगा। तभी रोग का तना, रोग वृक्ष धाराशय होगा। तीव्र, अनुतीव्र, अ(जीर्ण, जीर्ण आदि डिजेनरेटिव रोगों से मुक्त हुआ जा सकेगा।

प्रकृति के पंच महाभूत पृथ्वी जल, आकाश, वायु तथा अग्नि से मानव शरीर का सृजन हुआ है, इन्हीं के सम्यक प्रयोग से गलत आहार विहार एवं विचार से उत्पन्न शरीर में संचित दुषित विषैले विजातीय द्रव को निष्कासित करने से शरीर में दबी कुचली "जीवन शक्ति" जाग्रत होने लगती है। जिससे शरीर स्वतः स्वास्थ्य-पथ को प्रशस्त करता है। "वहु दोषस्य लिंगानितस्मै संशोधन हितं-चिरक"।

नाम अनेक एक ही है यानि सभी रोग एक है, सभी रोग का कारण एक है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कई रोग है। उदाहरण स्वरूप किसी व्यक्ति को जुकाम होता है। इसे तीव्र रोग कहा जाता है क्योंकि इसमें शरीर स्वतः स्वस्थ होने के लिए लगभग 2 0 0 कि. मी. प्रतिघंटे की रफ्तार से शरीर में प्राकृतिक चिकित्सा के विष निष्कासक उपचार, आहार जीवन शैली को अपनाकर सदा के लिए स्वस्थ के लिए स्वस्थ हुआ जा सकता है। लेकिन जब इसे दवाओं से ठीक करने का प्रयास करते है, वह रोग दब जाता है कालान्तर में वही जुकाम खांसी में, खांसी जीर्ण खांसी, जीर्ण खांसी दमा, एम्फिजिमा, ब्रोंकियोलाइटिस व्रोंक्यिकुटेससिन या कैंसर आदि घातक मारक बीमारियों में परिणत हो जाता है। यहां तक कि जुकाम को दबाने से सोरायसिस, गठिया आदि रोग में रूपान्तरित होते हुए हमने देखा है। विविध भांति-भांति के औषधियों द्वारा जुकाम, दस्त, वमन, दर्द आदि तीव्र रोग दबकर अनुतीव्र, अद्धजीर्ण, जीर्ण, अपजनन, व्ययजनन, (**degenration**) पुटीय, कैन्सरस व्ययजनन (**degenration with cyst or tumour formation**) आदि रोगों में बदल जाते है। केवल उनके रूप और प्रकार में विभिन्नता होते हुए भी वस्तुतः वे एक ही होते है। - बहु दोषाणां पुनदोषिव सेचनमेव कार्यम तद्वत् दोषाव सेचनम-चरक अर्थात दोषाधिक्य में शोधन उपाय ही करना जरूरी है।

आयुर्वेद की दृष्टि से भी सभी रोग का कारण शरीर में संचित कुपित मल ही होता है और यह मल विकार विजातीय पदार्थ (**foreign matter**) गलत आहार, अहितकर विचार एवं अनियोजित जीवन शैली ;विहारद्ध से प्रकुपित होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के इस सिद्धान्त को आयुर्वेद के सभी महानग्रंथ पुष्ट करते है जैसा चरक में आया है -

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहित सेवनम।।

सभी रोगों का कारण व निदान एक ही है और वह मल है जिसका मूल कारण अहित कर जीवन शैली का सेवन है। वाग्मत के अनुसार "दोष एवहि सर्वेषां रोगाणां मेकं कारणम्"अर्थात सभी रोगों का एक मात्र कारण विजातीय पदार्थ यानि प्रकुपित ही है।

प्राकृतिक चिकित्सक के अनुसार गलत भोजन ;चिन्तन व मन तथा अराजक जीवन शैली से उत्पन्न विजातीयद्ध टॉक्सिक पदार्थ एवं टॉक्सिन शरीर के कमजोर अंग को दुष्प्रभावित कर उस अंग से निकलने का प्रयास करते है जैसे एक ही परिवार में असमान प्रदुषित

रोगकारक वातावरण, समान भोजन, समान जीवन शैली होने के बावजूद भी अलग पदार्थो को अलग प्रकार से पृथक-पृथक अंगो से विकार का निष्कासन होकर अलग-अलग रोगों से ग्रस्त होना पड़ता है। जिस अंग की जीवनी शक्ति **(vitality)** कमजोर होती है, वही अंग दुष्प्रभावित होकर रोग ग्रस्त होता है।

संचित विकार जब पेट से निकलता है। वो पेट के विभिन्न अंगों को दुष्प्रभावित करता है, जिस अंग को दुष्प्रभावित करके निकलने का प्रयास करता है उस अंग के नाम पर रोगों का नाम करण कर दिया जाता है। जैसे आमाशय से निकलने पर आमाशय शूल **(gastralgia neuralgia of the stomach)** जठरशोध **(gastritis)]** शोषी जठरशोध **(atrophic gastritis)**, अतिवृद्धी जठरशोध **(hyper trophic gastritis)**, जठर हर्निया **(gastrocele)]** आमाशय के अन्दर फोडा या उदर व्रणता **(gastrelcosis)**, आमाशय विफार, जठर विस्फार या पेट फैलना **(gastrectasis)**, अग्निमंदता, अजीर्ण **(gastricism or dyspepsia)**, श्लेषमल जठरशोध **(phlegmonous gastritis)**, जठर अतिश्लेष्म स्त्राव (**gastroblenorrhoea)**, जठरवेदना **(gastrodynia)**, जब यही विकार पेट तथा छाती आंत को दुष्प्रभावित करता है तो जठर ग्रहणी शोध (**gastroduodenitis**) जठरान्त शोध **(gastroenteritis)**, जब यही विकार पेट, छोटी आंत एवं बड़ी आंत को दुष्प्रभावित करता है जठरांत्र वृहदां व शोध **(gastroenterocolitis)**, जठर एवं वृहदा सम्बन्धी रोग **(gastro colic disease)**, जठरांत्र रोग **(gastro enterobathy)**, जठर यकृत शोध **(gastrohepatitis)**, पेट तथा आंत सम्बन्धी रोग **(gastro intestional disorder**द्ध, पेट तथा प्लीहा सम्बन्धी रोग **(gastro lianaldisorder)**, जठराग्न्याशयिक रोग (**gastro pancreatic**), जठर तथा डायफ्राम सम्बन्धी रोग **(gastrophrenic disease)**, अग्नि उदर श्लेष्म स्त्राव (**gastrorrhoea**), आमाशय भ्रंश **(gastroptosis)** जठर वृहदांक्ष भ्रंश श्लेष्म स्त्राव **(gastrocoloptosis)**, उदर वण ;गैस्ट्रिक अल्सरद्ध, ग्रहणी व्रण (**duodenal ulcer)** वृहदांक्ष भ्रंश **(coloptosis)** आदि रोग होते है। यहां एक मात्र पेट का उदाहरण दिया गया है, यही अन्य अंगो के साथ भी लागू भी होता है। गैस्ट्रिक तथा गैस्टर का सम्बन्ध पेट तथा उदर से है। ये विविध नाम पेट या उदर तथा आंतों के विभिन्न स्थितियों को दर्शाते है, लेकिन इन रोगों का मूल कारण एक ही है विजातीय पदार्थ का उस विशिष्ट अंग में संचित होना है। जिस अंग में विजातीय पदार्थ जमा रहते है तथा वे जिस रूप एवं अनुपात में उस अंश को दुष्प्रभावित करते है उसी समानुपात में रोग का नाम करण कर दिया जाता है। रोग का विशिष्ट नामकरण उस अंग की अवस्था को दर्शाता है। यह .... आयुर्वेद में भी दर्शाया गया है। सुश्रुत`के अनुसार -

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।

यत्र संगः खवैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते।।

प्राकृतिक चिकित्सा का खमीर उठी विषावत विजातीय पदार्थ को ही आयुर्वेद में कुपित दोष कहा गया है। यह कुपित दोष रक्त परिभ्रमण करते हुए जिस में रूक कर जमा हो जाता है उस अंग या स्त्रोत व्याधि की उत्पति होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक रोग का एवं प्रमुख कारण पेट है। सर्वाधिक गन्दगी पेट में ही संचित होती है और वहीं से ओर शरीर में रक्तप्रवाह तथा लिम्फ संचार द्वारा प्रवाहित होती है। पेट स्वस्थ है तो आप स्वस्थ पेट के कारण ही त्वचा का लावण्य, चेहरे की चमक, आंखों की दमक मांसपेशियां सुदृढ सशक्त एवं विकसित चमरो की चुपडी साफ-सुथरी, अंगविन्यास गौरवशाली सर्वोत्तम, सिर सीधा, सीना सामने उठा हुआ, पेट अन्दर की ओर, कन्धा सपाट, चिकने, चमकीले सबल बाल, स्वाभाव में जीवन के प्रतिअहोभाव, विधायक रचनात्मक चिन्तन, कल्याणकारी मंगलकारी श्रेष्ठ भाव, गहरीनींद, शौच नियमित, भूख उत्तम, स्वस्थ चमकीले मोती की तरह दांत, शारीरिक, मानसिक भावनात्मक, आध्यात्मिकख प्रतिरोधक शक्ति प्रबल, चेहरे पर सतत् खिलती होने से सभी शारीरिक संस्थान एक लयताल में सुव्यवस्थित ढंग से सतत कर्मरव रहते हैं। सभी स्त्रोतों की पोषण एवं जिस विष निष्कासन क्षमता सशक्त होती है।

आयुर्वेद तथा योग विज्ञान में भी पाचन संस्थान को ही खास करके जठराग्नि को हर प्रकार के रोग का मूल कारण माना गया हैं। वाग्म के अनुसार-

रोगाः सर्वेऽपि मंदेऽग्नौ सुतरामुदराणि च।

अजीर्णन्मलिनैश्चान्नैः जायन्ते मल संचयात।।

हर प्रकार के रोगों का कारण उदर है मल संचय और मंदाग्नि सभी प्रकार के रोग पैदा करते हैं। अजीर्ण पेट में मंदाग्नि पैदा करता है। और विजातीय पदार्थ तथामल संचय होने से अजीर्ण पैदा होता है। एक अन्य सूत्र से अनुसार

अग्नि दोषान्मनुष्याणां रोग संधा पृथग्विधाः।

मल वृद्धया प्रवर्तन्ते विशेषेणोदराणि तु।।

उदर यानि जठराग्नि के दोष एवं विकार से मनुष्यों में रोगों का भंडार बढ़ जाता है, मल यानि विजातीय द्रव्य के बढने से सभी प्रकार के रोग खास करके अनेक प्रकार के उदर रोग होते है।

मंदाग्नि या अपच में आहार का अच्छी तरह पाचन नहीं होने से अपक्व रस शेष रह जाता है, यही आम दोष या विजातीय पदार्थ कहलाता है। क्योकि यह अपक्व रस शरीर

के अष्ट धातु से यथा रस, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, भेद, पुरूषों में वीर्य महिलाओं में रज तथा ओज का हिस्सा नहीं बना बल्कि विजातीय द्रव्य बन कर अनेक रोगों को पैदा करता है-

आहारस्य रसः गेसो यो न पक्वोग्निलाधवात्।

समूलं सर्व रोगाणाम् आम इत्याभिधीयत।।

प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद तथा योग में रोगों की एकता **(unity of disease or one ness of diseases)** तथा रोगों चिकित्सा की एकता **(unity of treatment or unity of cure or oneness of their cure)** - रोगाद्वैता चिकित्साद्वैता भारतीय योग दर्शन के द्वेवाद्वेत वेदान्त सि(ान्त आधारित है। मनीषियोंनेसटीक ने वर्णन किया है

'त' एवापरि संख्यंया भिद्यमाना भवन्ति हिः।

निदान वेदना वर्ण स्थान संस्थान नामभिः।।

भावार्थ हजारों प्रकार के अनगिनत रोगों के नाम इसलिए है कि इससे यह समझने में सहूलियत होती है कि पीडा सृजन, दर्द शरीर में किस अंग में किस प्रकार की है। रोग के निदान से संस्थान, भेद से सृजन व वेदना का प्रकार जटिल या सरल सहज है, वर्ण से रोगों के नाम पृथक-पृथक पड़ जाते है, किन्तु रोग एक ही विजातीय द्रव्य का संचयन उस खास अंग या संस्थान में होना है।

प्राकृतिक योग एवं आयुर्वेद की दृष्टि से आहार विहार विचार **(feeding living and thinking)** में तीन प्रकार से मानव प्रकृति विकृति पैदा करती है। जिससे शरीर में विजातीय द्रव्य विकृत 'दोष' के रूप में शरीर के कमजोर अंगो में संचित होकर नाना प्रकार के रोगों को पैदा करती है। उपरोक्त उदर रोग का उदाहरण में हमने देखा है, इसी प्रकार अन्य अंगो एवं संस्थानों में जमा विकार एवं विकृत दोष उन अंगो से संबन्धित सैकडों रोग पैदा करते है।

तीन प्रकार से होने वाली विकृतियों को चरक सूत्र में इस प्रकार वर्णन किया गया है-

काल बुद्धि इन्द्रियर्थानां योगो मिथ्या न चातिच।

द्वय श्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः।।

भावार्थ मिथ्या आहार विहार को तीन प्रकार से योग किया जाता है। पहला अतियोग यानि मर्यादा एवं हक से अतिभोजन करना, स्वाद के चक्कर में अखाद्य एवं अयोग्य आहार लेना। आहार यानि ग्रहण करना सिर्फ हम मुंह से ही आहार नहीं लेते है बल्कि पांचो ज्ञानेइन्द्रियों जैसे नेत्र से विविध दृश्यों को देखते हुए 'रूप' के रूप में जिह्वा के

द्वारा रस के रूप में, नासिका के द्वारा गंध के रूप में, कान के द्वारा शब्द के रूप में तथा चमडी के द्वारा स्पर्श के रूप में आहार ग्रहण करते है।

इन पांच स्वरूपों का आहार दो प्रकार के होते है एक उसे जन्मे यानि रोग पैदा करने वाला तथा दुसरा उनुत्तेजक यानि आरोग्य आरोग्य प्रदान करने वाला होता है। जैसे जिह्वा के लिए तने भुने, मिर्च मसाले एवं कृत्रिम रसायानों से बने आहार बर्गर, पिज्जा हॉट डॉग, नूडल्स, ब्रेड, बिस्कुट, चाट, पकौडे, पुरी, कचौडे आदि उत्तेजक ताजे फल हरी सब्जियां, अंकुरित अनाज, छाछ, दही, दुध, महारोटी, भात, इत्यादि अनुत्तेजक है। आंखों के लिए फिल्म या दूरदर्शन पर मार-धाड़, व्यभिचार आदि हिंसक दृश्यों को देखना उत्तेजक, जंगल पहाड़, नदी, झरना, सूर्योदय एवं सूर्यास्त आदि दृश्यों को देखना अनुत्तेजक एवं आरोग्यप्रद-आहार है। नासिका के द्वारा विविध उत्तेजक मादक इत्रा तथा जलती मिर्ची का धुआं की उत्तेजक एवं यज्ञ धूम्र, एवं विविध एरोमाथैरेपी की शामक स्वास्थ्यप्रद गंध अनुत्तेजक एवं आरोग्य प्रदान करने वाला होता है। कान के लिए डांट-डपट गाली-गलौज, गुस्से से भरी आवाज अनुत्तेजक आहार हैं प्रेमपगा आशिष, प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के मान सम्मान गुणा गुण ज्ञान से भरे प्रशक्ति वाचन **(appreciation)**, कृतज्ञता ज्ञापन **(gratitude)** आभार प्रदर्शन वचन अनुत्तेजक आरोग्यप्रद आहार है। जब हम किसी को “कितने अच्छे है या सुन्दर है या स्वस्थ है तो उसके अन्दर के छिपी हुई अच्छाई, सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य को उद्घाटित करते है, बुरे शब्द कहकर के उसके छिपे हुए रोगकारी शैतान को प्रगत करते है। इसी प्रकार त्वचा के द्वारा भी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा कामुकता आदि दुष्प्रवृतियों से भरे व्यक्ति का स्पर्श उत्तेजक आहार होता है उसी प्रकार रोते हुए बच्चे का प्रेममयी मां का स्पर्श पाकर शान्त एवं स्वस्थ हो जाता है। बडे-बुढे, साधु-सन्तों एवं गुरूजनों का आशिष से भरा स्पर्श स्वास्थ्य एवं सुखमय आहार का काम करते है।

समय पर प्रातःकाल बहम मुहुर्त में नहीं उठना, देर से उठना, सोये रहना, कोइ भी काम जैसे भोजन, अध्ययन, व्यवसाय आर्थिक उपार्जन हेतु समय प्रबन्धन नही करना गलत विहार (**wrong living**) होता है। उचित समय पर खान-पान, व्यायाम, अध्ययन, व्यावसायिक एवं आर्थिक उपार्जनार्थ सेवा कार्य स्वास्थ्य एवं सुखदायक होता है।

काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, मोह, माया, मत्सर, निराशा, क्षोभ, डर, कुंठा, हिंसा, प्रतिहिंसा, भय, लोभ, लालच, झूठ, छल, कपट, अन्याय का भाव इत्यादि गलत विचार होते है जो तनाव एवं रोग उत्पन्न करते है जबकि प्रेम, दया, त्याग, करूणा, शील, सौजन्यता, सहयोग, सोहार्द्र, प्रसन्नता सृजनात्मक एवं स्वास्थ्य प्रद विचार है।

उपर्युक्त आहार विहार एवं विचार आदि विषय है अतः इनका ‘अतियोग’ एवं आवश्यकता से अधिक सेवन, “अयोग” यानि बिल्कुल सेवन नहीं करना जैसे किसी भी इन्द्रिय या शारीरिक संस्थान का उपयोग नहीं करने से वे अयोग्य एवं निषक्रिय होने लगती है तथा इन्द्रियों द्वारा विषयों गलत एवं अनुचित तरीके से सेवन “मिथ्या योग”

जैसे जिह्वा अनुत्तेजक स्वास्थ्य प्रद स्वाद एवं मधुर वाणी के लिए है इसका उपयोग तीव्र चाट मसाले खाने एवं गाली ग्लोज बकने के लिए करे तो यह मिथ्या योग कहलाता है।

आयुर्वेद के महाग्रंथ चरक में स्पष्ट कहा गया है कि

तत्तद्वृ(कराहार विहारा तिनिसेवणात्।

दोष-धातु-मलानां हि वृ(सक्ता भिषग्वरैः।।

भावार्थ जो श्रेष्ठ एवं बु(निष्ठ जानकार चिकित्सक है वे आहार विहार एवं विचार में हुइ गलतियों के दुष्परिणाम स्वरूप उत्पन्न विजातीय द्रव्य से दोष, धातु और मल में आइ विकृति एवं वृ(रोग का मुख्य कारण मानते है और उसे संतुलित एवं सम्यक करने स्वास्थ्य प्रदान करते है।

पतन्जल योग दर्शन के प्रथम समाधि पाद के तीसवे सूत्र के अनुसार -

व्याधिस्त्यानसंययप्रमादालस्यविरतिभ्रांतिदर्शना।

लब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।।

भावार्थ व्याधि, अकर्मण्यता जी चुराना (स्त्यान) संकाय, प्रमाद, आलस्य, अविरति यानि चित्त का भोगों में संलग्न रहना अविरक्तता तथा विपरित ज्ञान भ्रान्ति दर्शन है। समाधिभूमि का लाभ न होना अभिलब्ध भूमिकत्व है तथा प्राप्त भूमि में चित्त का न लगना अनवस्थि तत्व है। समाधि लाभ हो जाने पर चितस्थित हो जाता है। चित्त को विक्षिप्त करने वाले यानि अस्वस्थ एवं रूग्ण करने वाले ये नौ अन्तराय यानि विहन बाधा है।

वास्तव में ये नौ विहन शारीरिक एवं मानसिक रोग पैदा करते है। श्वास प्रश्वास के विक्षेप होने से विकलता दुःख, एवं रोग होते है। दुःख दौर्मनस्याख में जयत्व श्वास प्रश्वासा विक्षेप सहभुवः (पा यो. 1 /3 1) तत्प्रतिषेधार्थमेक तत्वाभ्यास (पा यो. 1 /3 2) यानि उन विक्षपों को हटाने के लिए एक तत्व सतत प्राण तत्व यानि श्वास प्रश्वास का साक्षी भाव से दर्शन का अभ्यास करें। ऐसा करने से सभी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग दूर होते है। साथ ही "मैत्री करूणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःखपुण्यापुण्य- विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम" (पा यो. 1 /3 3) इस अभ्यास से समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव, दुखियों के प्रति दयाभाव, दुष्टों के प्रति उपेक्षा का भाव, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता एवं हर्ष पैदा होता है। इस भाव से चित्त प्रसन्न स्वच्छ स्वस्थ स्थिर होता हैं। व्यक्ति सदा स्वस्थ रहता है।

चिकित्सा सि(ान्त एवं दर्शन की दृष्टि से प्राकृतिक चिकित्सा के योग तथा आयुर्वेद से गहरा सम्बन्ध है। जैसे सारा जगत त्रिगुणात्मक ब्रह्मा विष्णु महेश, आकाश, पाताल, पृथ्वी, रज, तम, सत्व यज्ञ-तप-दान, वात पितकाफ, गंगा, यमुना सरस्वती आदि की तरह

प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद एवं योग की त्रिवेणी-त्रिआयामी चिकित्सा तन मन एवं चित्त को रोग एवं विकारों से मुक्त करके आत्मस्थ समग्र रूप से परिपूर्ण-स्वस्थ करती है।

महायोग भगवान श्री कृष्ण ने श्री मद्भगवत गीता के अध्याय 6 के 1 7 वें श्लोक में आरोग्य रोग योग एवं दुःख को बहुत ही वैज्ञानिक एवं भूत ढंग से परिभाषित किया है जो प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य सि(न्त एवं दर्शन है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वानावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

जिसका आहार, विचार, विहार, कर्म, निद्रा सम्यक है ऐसे व्यक्ति या योगी को कोइ रोग एवं दुःख नहीं हो सकता हैं। यही प्राकृतिक योग चिकित्सा एवं आयुर्वेद का मूल आधार है, सम्यक आहार विहार विचार निद्रा एवं व्यवहार है। स्वास्थ्य का आधार है।

किसी भी कार्य को पूरे मनोयोग से यानि समग्रता **(integratad mindfaulness)** के साथ करने पर चाहे वह आहार विचार एवं विहार ही क्यों न हो स्वास्थ्य एवं सुख की प्राप्ति होती है। भगवान श्री कृष्ण ने

कहा भी है "योगः कर्मसुकौशलम" यानि कर्मो की कुशलता **(mindfull work, mind full behaviour)** ही योग है और यही हमें रोगों से मुक्त आरोग्य प्रदान करता है। "समोभूखा समत्वं योग उच्यते" समता में स्थित रहते हुए किसी भी कर्म को करना ही यानि 'समत्व हो' योग है। समता में स्थित रहने वाला व्यक्ति सदा स्वस्थ एवं सानन्द रहेगा। प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग के अर्न्तगत पंच तत्वों का त्रिदोषों तथा तन मन एवं चेतना आत्माद्ध के मध्य समत्व या संतुलन, रिदम तथा लय ताल ही स्वास्थ्य है।

3 .4 प्राकृतिक चिकित्सा में किसी प्रकार की औषधि का प्रयोग नहीं होता है, क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में जीवन के समग्र रूपान्तरण का विज्ञान **(science of integrated transformation of life)** है, क्योंकि दवा से न तो किसी का रोग ठीक होता है न जीवन बदलता है। न तो बीमारी ठीक होती और न आदत सुधरना है। गांधी जी ने ठीक ही कहा है - "रोग क्यों होते है हमारे गलतफहमी से होते है। मै बहुत खाऊं और बदहजमी हो जाये, फिर मैं डाक्टर के पास जाऊं, अजीर्ण हो जाये, फिर मैं डॉक्टर के पास जाऊं और वह मुझे गोली दे, गोली खाकर मै चंगा हो जाऊं और दुबारा फिर खाऊं और फिर से डॉक्टर की गोली लूं। इसमें जो कुछ हुआ वह इस तरह हुआ। मगर मैं गोली न लेना तो अजीर्ण की सजा भुगतना और फिर से बेहद नहीं खाता। लेकिन डॉक्टर बीच में आया और उसने हद से ज्यादा खाने मे मेरी मदद की। उससे मेरे शरीर को तो आराम हुआ लेकिन मेरा मन कमजोर बना" इस तरह दवा लेते-लेते अपने मन पर जरा भी नियंत्रण नहीं रख सकूंगा......."

यदि दवा या औषधि की ही बात करें तो प्राकृतिक चिकित्सा में आहार ही औषधि है या औषधि ही आहार ही है हालांकि विश्व के सारी चिकित्सा प(तियों के आविष्कारक एवं उन्नायकों ने आहार को ही औषधि बनाया है। आधुनिक चिकित्सा प(ति एलोपैथिक के पितामह हिप्पोक्रेट्स ने भी लगभग 2 0 0 0 साल पूर्व की भाषा में **"let thy food be thy medicine and let thy medicine be thy food"** यानि आहार ही औषधि तथा यदि कोई औषधि है तो वह आहार ही है कहा है।

आधुनिक चिकित्सा के वर्तमान के महान चिकित्सक ऐनेक्सिस कैरेल **(alexis carrel**द्ध ने ठीक ही कहा है कि आज का चिकित्सक भविष्य में आहार विशेषज्ञ होगा तथा आज का आहार विशेषज्ञ भविष्य का डाक्टर होगा तभी सफल होगा- **"unless the doctors of to day become the dieticians of tomorrow, the dietieians of to day will become the doctors of tomorrow"**

1 0 0 से भी ज्यादा वर्ष पूर्व विश्व का महत्तम आविष्कार न्यूजर्सी अमेरिका निवासी थॉमस अल्वा एडिसन **(thomas a. edison)** जो विज्ञान के क्षेत्र में बल्ब से लेकर हजारों आविष्कारों का जनक है की भविष्यवाणी **"The doctor of the future will give no medicine, but will interest his patient in the care of the human frame, in diet and in the cause and prevention of disease"** अर्थात भविष्य का चिकित्सक किसी भी रोगी को कोई दवा नही देगा बल्कि उसे आहार एवं रोग के कारण एवं उसके रोकथाम में रूचि लेकर उसे पूर्ण स्वस्थ होगा। आरोग्य के तल पर रोगी के जीवन स्तर **(quality of lite**द्ध को सुधार करेगा। जीवन में गुणात्मक परिवर्तन करेगा विचारणीय है।

आधुनिक चिकित्सा में भांति-भांति के रोगो के लिए अनेक प्रकार की दवाइयों का प्रयोग होता हैं वह सारे गुण विविध प्रकार के आहारों में उपलब्ध है। मूत्रल (डायपुरेटिक) दर्दनाशक (एनजेसिका), ज्वरहर (एण्टीपायरेटिक), कीटाणुनाशक, एण्टीडायरिया, एलर्जीरोधी, अतिवोत्सारक ;एम्मेने गॉगद्ध, अपरेचक (परेगेटिव), पित्रोत्सारक (कोरे गॉग), मृदुरेचक (लक्सेटिव), प्रतिबिम्ब (एण्टीडोट), पीड़ाहर (एनोडाइन) वमन कारक (एमेटिक), निद्राकारक ;ट्रैंक्वालाइजरद्ध आदि आदि सभी गुण वाले अनेक प्रकार के आहार है। आयुर्वेद का ये महामंत्र मनन करन योग्य है-

न चाहारसमं किन्चिद् भेषज्यमुपलभ्यते।

शक्य तेप्यन्नमात्रेण नरः कर्तु निरामयः।।

भावार्थ आहार के सदृश कोइ दवा नही है। औषधि के रूप में सिर्फ आहार के सुधार एवं प्रयोग से रोगी को रोग मुक्त एवं ताजीवन आरोग्यवान निरामय रखा जा सकता है।

विनापि भेषजैव्याधि पथ्या देव निवर्तते।

न तु पस्य विहीनस्य भेषजानां शतैर्रापि।।

बिना दवा के सिर्फ आहार यानि पथ्य मात्र से रोगी स्वस्थ हो जाता है। आहार यानि पथ्य ठीक नहीं होने पर सैकडों प्रकार के दवाओं का प्रयोग करने पर रोग ठीक नहीं होता है।

“यद्दापश्यं किमौषध्याः यदि पश्यं किमौषधैः” यदि पथ्य आहार सही है रोग उन्मूलन के अनुकूल है तो औषधि की कोइ आवश्यकता तो नहीं होती है। यदि कुपथ्य एक अपथ्य है तो दवा से कुछ होने वाला है।

भेषजोपपन्नोपि निराहारो न शक्यते।

तस्माद भिषऽिमराहारो महाभैषज्यमुच्यते।।

सिर्फ औषधि का प्रयोग करने और आहार पथ्य का महत्व नहीं देने से कुछ नहीं होता है। रोग कदापि ठीक नहीं होगा, इसीलिए भिषकों ने भी आहार को महान भैषज (औषधि) कहा है।

पथ्येसति गदार्त्तस्य किमौसध निषेवणम्।

पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणम्।।

यदि आहार पथ्य सही है तो दवा की जरूरत ही क्या है क्योंकि रोग होगा ही नहीं यदि पथ्य सही नही है तो भी दवा की आवश्यकता क्या है, क्योंकि रोग ठीक होगा ही नहीं। “भोजन ही दवा है” से सम्बन्धित अनेक सूत्र एवं मंत्र आयुर्वेद में बिखरे पड़े है

पथ्ये सेविनमारोग्यं गुणेन भजतेर्जरम्।

अपथ्य सेविनं क्षिप्र रोगः समभिमर्दति।।

जो सही आहार ;पथ्यद्ध का सेवन करते है वे सदा निरोगी रहते है, कभी बीमार नहीं होते है, अपथ्य एवं कुपथ्य सेवी जल्दी - जल्दी बार-बार रोग मुक्त रहते है, कमी आरोग्यवान नहीं होते है।

योग विज्ञान में भी आहार पर सर्वाधिक बल दिया है। महायोगी भगवान श्री कृष्ण ने मद्गवद गीता में अध्याय 1 7 से 7 से लेकर 1 0 कुल चार श्लोंको में आहार का सटीक वैज्ञानिक व्याख्या की है।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवन्ति प्रियः।

यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं दुणु।।

साधना के यज्ञ तप दान की तरह तीन प्रकार के आहार होते हैं। इनके गुण कर्म तथा प्रभाव तीन प्रकार का होता है।

आयुः सत्वबलारोग्य सुखप्रीतिविविर्धनाः।

रस्या दिनग्धा स्थिरा ह्या आहारः सात्विकप्रिया।।

आयु, सत्व अच्छे दिव्य रचनात्मक गुण, आरोग्य, सुख, प्रेम, प्रसन्नता बढाने वाले, स्थिर रहने वाले, ह्दय को शक्ति देने वाले, रसयुक्त तथा स्निग्ध आहार सात्विक है तथा सात्विक मनुष्य को प्रिय होते है।

कट्वम्ल लवणात्युष्णतीक्ष्ण रूक्षविदाहिनः।

आहारा राजसस्येष्टा दुःख कामयप्रदाः।।

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाह कारक आहार राजसिक आहार है तथा राजस प्रवृति के मनुष्य को प्रिय होते है। इस प्रकार के आहार रोग, शोक व दुःखों के देने वाले होते है।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषित च यत्।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं नामसप्रियम।।

जो भोजन सडा हुआ, रस रहित, दुर्गन्धित, बासी और झूठा है तथा सर्वाधिक अपवित्र ;मांसादिद्ध भी है, वह वामस मनुष्य को प्रिय होता है। गीता में कहा गया है सात्विक मनुष्यों की परमात्मा में श्र(ा व निष्ठा होती है। राजसप्रवृति वालों की यक्षों तथा राक्षसों नया तामस प्रवृति वालों की प्रेत तथा भूतगणों में निष्ठा होती है। वे उन्हीं का पूजन करते है। सात्विक मनुष्य किसी भी कर्म के परिणाम पर विचार कर उस कर्म में प्रवृत्त होता है। राजसी मनुष्य राग एवं स्वाद के चलते पहले भोजन को देखता एवं खाता है प्रायः उसके परिणाम पर विचार करवाही नहीं है तामस मनुष्य मूढता के कारण भोजन और उसके परिणाम पर विचार करता ही नही। सात्विक पहले विचार करता है राजस गलत काम करके पछतावा एवं विचार करता है तथा तामस के पास विचार करने की शक्ति सामर्थ्य एक ज्ञान नहीं है।

आहार पर भारतीय वाऽमय में अद्भूत अनुसंधान कार्य हुए है। भारतीय मनीषा प्रारम्भ से ही आहार के प्रति ज्यादा सतर्क सावधान एवं अनुसंधान उन्मुख रही है। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, ब्राह्मण आदि प्राचीन ग्रंथों मे अनुसंर्धय अनेक सूत्र मंत्र

एवं सूचनाएं उपलब्ध है। छान्दोग्यपनिषद का यह मंत्र गहन आत्मअनुसंधान का प्रविफलन है जो आज विज्ञान की कसौटी पर खडा उतरता है।

आहार शु(ौ सत्व शुद्धि सत्व शुद्रौ ध्रुवा स्मृति।

स्मृति लब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

आहार की पवित्रता से हमारे तन मन चित्र स्मृति संस्कार सर्वग्रंथियां पवित्र एवं पावन होती है। यह एक वैज्ञानिक सच्चाइ हैं कि कैफिन, एल्कोहल, ड्रग्स, निकोबिन, कॉफी, चाय, सोडा, धुम्रपान, शराब आदि दिमाग के प्रीफन्टल कॉर्टेक्स में सक्रियता को कम कर देता है जिससे एकाग्रता, सजगता **(attention, awareness)** निर्णय लेने की क्षमता **(ludgment)**, रचनात्मक शक्ति **(creative ness)**, तथा परिकल्पना की शक्ति **(hypothesis dream and blaning)**, दुष्प्रभावित होती है। इस प्रकार के उत्तेजक राजसी एवं नामसिक आहार से उत्तेजक प्रेरक झगडालू नियंत्रक **(impulse control)**, सृजनात्मक प्रेरणा **(follow through)**, अस्त व्यस्त हो जाता है तथा स्पष्ट लक्ष्य की कमी **(lacic of clear goal)**, दीर्घसूत्री या किसी काम का टालते जाना **(procrastination)**, आदि स्थितियां पैदा होती है। आहार की शु(ता नष्ट होती ही मन चित्त एवं स्मृति स्मरणशक्ति, मेधा, घृति एवं धारणा शक्ति सभी कुछ नष्ट एवं भ्रष्ट होने लगता है। अस्त-व्यस्त हो जाता है। इन आहारों का सभी सीधा प्रभाव दिमागी रसायनों, न्यरोट्रान्समीटर्स तथा अनेक रस-रसायनों पर होता है, जो हमारे विचार को प्रभावित करते है। जिसे कभी भी निन्दान नही करे। उसे फेंके नही है झूठा न छोडें क्योंकि उसी से समस्त प्राणियों की रक्षा होती है।

अन्नं वै प्राणाः अन्नं न निन्दात।

अन्न द्वै प्रणाः प्रजायन्ते-'तै' उप.।।

अन्नं ब्रहमोति व्यजनता अन्नद्वयेव स्वात्विमूनि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जानानि जीवन्ति अर्थात अन्न ही ब्रहम है, अन्न से ही प्राणि उत्पन्न होते है और अन्न से ही जीवित रहते है।

अन्नं वै ब्रहम रसौ वैसः अर्थात अन्न यानि आहार ही जीवन का सृजन करता है, वही समस्त रसों का आधार है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में भी कहा है "अन्नाद् भवन्ति भूतानि" अर्थात समस्त प्राणियों का उद्भव अन्न से ही हुआ है। आहार जीवन की प्रथम आवश्यकता है। "अन्नं मृत्युरमृतं जीवातमाहुः अर्थात अयोग, अतियोग मिथ्या योग आहार का गलत मल इत्यादि दोष पूर्ण मिथ्या मेल, मृत्यु का साक्षात देवता यमराज का नया सही सर्वोत्तम, आहार अमृत का काम करता है। इस प्रकार से असंख्य मंत्र मोतियों की तरह भारतीय वाड्गमय में बिखरे पड़े है। वैज्ञानिक तथ्यों पर प्रमाणिक खरे निरामय जीवन माला का गूठें ताकि अरण्य वासी ऋग्वेद के ऋषि का वक्तव्य जीवेम शरद् शतम, पश्येय

शरदः शतम्, ऋणुयाम शरदः शतम, प्रब्रवाम शरदः शतम दीना स्याम शरदः शतम् भू पश्च शरद् शवात् अथवा वेद का ऋषि और आगे कहता है कि 1 0 0 साल के पूर्व मृत्यु नहीं होती है वे अकाल काल कवलित नहीं होते है। उनमें ऋग्वेद के अनुसार 1 0 0 साल तक जीवन जीने 1 0 0 साल तक दृष्टि श्रवण, वाक्, ध्राण, स्पर्श क्षमता बरकरार रहती है। ऐसे लोग देवताओं के आशिष से दया धर्म दान करते हुए 1 0 0 से भी अधिक सानन्द सहर्ष विचार एवं व्यवहार राजसी तथा तामसिक होने से वे सदा ह्दय रोग, मधुमेह, दमा, बी. पी. गठिया आदि रोगों से ग्रस्त रहते हुए 1 0 0 साल के पूर्व ही अकाल काल के ग्रास बन जाते है। चूंकि ये भूत प्रेत राक्षसादि को पूजते है साथ ही अकाल मौत से मरे है इसलिए ये भूत प्रेतराक्ष के योनि में ही जाते है।

अभर्ववेद सिर्फ 1 0 0 सालतक जीने सुनने देर बने आदि की ही बात नही करता हैं बल्कि अर्थवेद का आदेश है कि 1 0 0 साल तक जीने के साथ बु(तथा दिमाग को विकसित 1 0 0 साल तक विवेक ज्ञान विज्ञान ध्यान एवं अध्यात्म की उच्चांई को भी स्पर्श करते रहें 1 0 0 साल तक हर दृष्टि से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति से स्वंय को पुष्ट करते रहें 1 0 0 साल तक दिव्य अहंकार से बचकर स्वंय को नाना प्रकार के दिव्य अलंकार से अलंकृत करते रहे। आत्म गौरव, आत्म सम्मान से विभूषित होते रहें। स्वंय के मन का प्रक्षालन चित का परिमार्जन एवं तन का परिशोधन करते हुए 1 0 0 से भी अधिक वर्षों तक जीयें। परमार्थ के दिव्य आलोक से स्वंय तथा दुसरों को आलोकित करें। जीवेम शरदः शतम, बुध्येम शरदः शतम, रोहेम शरदः शतम, पुषेन शरदः शतम, भवेम शरदः शतम, भूषेम शरदः शतम, भूयसि शरदः शतात, इसके लिए शु(सात्विक आहार विहार विचार एवं व्यवहार अनिवार्य शर्त है तभी जीवन की सार्थकता एवं अर्थवता प्रमाणित होती है तथा जीवन शतायु होता है।

3 .5 - प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद में मल तथा विजातीय पदार्थ को निकाल कर बाहर करने के लिए पंच तत्व चिकित्सा षट्कर्म एवं पंचकर्म को विधान है। पंचकर्म का मूल उद्देश्य शरीर के संचित विकृत दोषों को निकाल बाहर करना है। चरक में आयुर्वेद में चिकित्सा एवं योग का सुन्दर समन्वय किया गया है।

चतुष्प्रकाश संशुद्धि, पिपासा, मारूतातयौ।

पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम।।

प्राकृतिक चिकित्सा में वमन विरेचन, एनिमा (वस्ति), मालिश (स्नेहन) भाप स्वान, जल, वायु, अग्नि (सूर्य), उपवास (आकाश), व्यायाम, योगासन, प्राणायामादि का प्रयोग होता है।

आयुर्वेद के पंचकर्म के अन्तर्गत (क) पूर्व कर्म से (1) पाचन के अन्तर्गत क्वाथ, रस, पेय, चूर्ण आदि निरापद वनौषधि फल सब्जी जो दीपन भूख को ठीक करने वाला एवं पाचन हो का प्रयोग होता हैं (2) स्नेहन के अन्तर्गत तेल मालिश (3) स्वेदन के अन्तर्गत भाव सावनादि स्नान है। (ख) प्रधान कर्म के अन्तर्गत (1) वमन-कुंजन आदि

यौगिक षढ़कर्म द्वारा वमन कराते है। (2) विरेचन के अर्न्तगत प्राकृतिक यौगिक चिकित्सा के अर्न्तगत शंख प्रत्तालन कराते है जिसके ऊपर से पानी पिलाकर अधोमार्ग से सारी गन्दगी को विरेचन करते है। (3) वस्ति-पूर्व जमाने में आयुर्वेद में वस्ति के अन्तर्गत जानवरों के मूत्राशय **(uninary bladder)** द्वारा गुर्दा द्वार से पानी क्वाथ या स्नेह पेट में पहुंचाया जाता था योग मे वस्ति के लिए मोशीजन बांस की पतली नली गुदा द्वार से नौली क्रिया द्वारा झील, तालाब के अन्दर पेट का सकार्य एवं विस्थापित करके जल को पेट में ले जाकर पेट की सफाइ करते थे। इन दोनो क्रियाओं के अपेक्षा वर्तमान का एनिमा उपकरण ज्यादा हाइजनिक एवं वैज्ञानिक है। **(4)** नस्य नेति या शिरो विरेचन के अर्न्तगत प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग में जलनेति, रबर नेति, सूत्र नेति, स्नेह नेति आदि का प्रयोग करके नासिका एवं सिर सम्बन्धी रोग को ठीक किया जाता है। **(5)** रक्तशोधन एवं रक्त माक्षण के अर्न्तगत प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद डिटॉक्सी फाइंग आहार व पंच तत्व चिकित्सा के द्वारा रक्त का शोधन किया जाता है। आयुर्वेद में श्रृंग एवं जलौकावचारण का प्रयोग होता रहा है। वर्तमान निडल द्वारा भी जमे खून को निकाला जाता हैं। (ग)पश्चात के अन्तर्गत - (1) संसर्जन कर्म यानि शरीर का प्राकृतिक योग चिकित्सा मिट्टी पानी धूप, हवा, आकाश (लंघन उपवास), ध्यान, आसन, प्राणायाम, षट्कर्मोदि द्वारा शरीर का संशोधन करने के पश्चात संसर्जन क्रम में रस, सूप, उबली सब्जी शीघ्र सुपाच्य आहार देते है। ताकि उपर्युक्त चिकित्सा से पेट शैथिल्यावस्था में होता है अचानक ठोस आहार देना अहित होता है। तत्पश्चात दलिया, खिचडी आदि देते हुए शनै-शनै ठोस आहार पर लायें (2) रसायन आदि क्रम में प्राकृतिक फलों अनार, चीकू, सेव आदि मौसम के अनुसार दें (3) शमन प्रयोग - सबसे अन्त में तीसरा पश्चात कर्म शमन तथा संवर्पण अर्थात रोगी को रोग मुक्ति की संतुष्टि एवं तृप्ति प्राप्त हों। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों का दमन नहीं शमन होता हैं। सही में प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा शरीर के सप्त धातु रस-रक्त मांस मद अस्थि, संधि, मज्जा मेद वीर्य, वात पित, कफ, मल, मूत्र सभी साम्यावस्था में लाकर रोगी को तृप्ति प्रदान करते है। तन एवं मन को शक्ति वृहत्य उत्पन्न कर वृहण बनाते है। बल प्राकृतिक योग पंच करके सम्यक शु(सात्विक प्रयोग से शनै-शनै रोगी बलशाली एवं शक्ति शाली हो जाता है।

वाग्मट ने भी अष्टांग ह्दय में अपतर्पण या लंघन को शोधन और वमन में विभक्त किया है। शमन के दीपन पाचन, सुध, तृषा (जल) व्यायाम, आनप सेवन (सूर्य) और वायु सेवन सात प्रकार है। वमन, विरेक, निरूह, शिरोविरेचन और अस्त्र विस्त्रुति पांच शोधन के प्रकार है।

शोधनं शमन ं चेति द्विधा तत्रापि लंघनम्।

पंचधा शोधनं च तत्-निरूहो वमनं काय शिरोरे कास्त्रविस्तुतिः।।

यमनं तच्व सप्तधा-पाचनं दीपनं क्षुतद् व्यायामतपमारूतः।।

चरकने दोष संचय में पंचकर्म के लिए वसंत-फाल्गुन श्रेष्ठ बताया है। वैशाख में मना किया है................) तुक्रमेण फाल्गुन चैत्रो वसंतो भवति। न वैशाखः

शाड्गचर और भाव प्रकाश ने भी चरक की तरह (1) वमन (2)विरेचन (3)निरूद्ध आस्थापन (4) अनुवासन (5) शिरो विरेच यानस्य बताया है।

भा. प्र. के अनुसार - प्रथमं वमन पश्चात विरेकश्चानुवासनम्।

एतानि पंच कर्माणि निरूहो नावनं तथा।।

शाड्गधर के अनुसार - वमनं रेचनं नस्य निरूहश्चातु वासनम।।

एतानि पंचकर्माणि कयितानि मुनीखरैः।।

पंचकर्म के अन्तर्गत जिससे विभिन्न अंगो का शोधन हो उन कर्मो जैसे गेड्रष, निष्ठीव, कर्णधावण, आश्चोतन, नेत्रतर्पण, नेत्रांजन आदि भी जोडे गये है। हालांकि निष्जीवन एवं नेत्राजन शोधन कर्म नहीं है। परन्तु मूत्र के आहार मूत्र शोधन करती है इन्हें पंचकर्म मे समावेश कर सकते है। आयुर्वेद के पंचकर्म कर्म की प्राधन्यता है, औषधि का नहीं है।

सही आयुर्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा की तरह पंचकर्म ;चतवबमेद्ध विजातीय पदार्थो को निकाल बाहर करने की निराप्रद प्रक्रिया है। **(panch karm are detoxyheng process nature friendly trest ment)** दोषों का संचय उसका प्रकोप प्रसार स्थान संश्रय होता है। जिससे रोगो की पूर्व रूपोत्पति होती है इसके लिए पूर्व कर्म रोगोत्पति के बाद प्रधान कर्म तथा रोगोत्पति के बाद रोग का पुनरूत्व यानि लौटकर **(recurrence)** नहीं आये इसके लिए पश्चात कर्म का विधान है। इसके लिए सर्वोत्तम द्वतु मार्च-अप्रेल वसंत फाल्गुन के नवरात्रा के समय तथा सितम्बर-अक्टूबर अश्विन नवरात्रा के समय सर्वोत्तम होता है। यही कारण है कि हमारे पुरखों ने नवरात्रि में स्वास्थ्य शक्ति शोर्य साहस एवं सौन्दर्य की देवी मां दुर्गा की स्थापना एवं 9 दिन रोगमुक्ति एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु लंघनादि की अनुष्ठान किया जाता है।

वास्तव में आयुर्वेद प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग का एक ही लक्ष्य एवं ध्येय है रोगी को बिना किसी दवा के निरापद तरीके से समस्त दोषों को निकाल बाहर करके सही चिकित्सा की जाये निरामय बनाया जाये। अभय प्रदान किया जाये। क्योंकि औषधियों द्वारा दवायें एवं शान्त किये गये विकार एवं रोग मे कभी भी उमड सकते हैं लौट सकते है लेकिन जो रोग दोष संशोधन द्वारा निकाल दिए जाते है वे पुनः लौट कर नहीं आते है।

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनैः।

जितुः संशोधनैर्यषु न तेषां पुनरूत्वः च. स. 1 6-2 0

औषधियों द्वारा रोग को ठीक करने को चिकित्सा कहना उचित नही है, क्योंकि सभी रोगों की चिकित्सा पंच कर्म के प्रयोग करने से होता है।

भगवन पंच कर्माणि समस्तानि पृथक तथा।

निर्दिष्टन्याम याना हि सर्वेषामेव भेषजम्।।

दोषजोऽस्त्यामयैः कश्चित यस्य तानि भिषग्वर। च. चि. 2 7 -5-6,7

नस्यु शक्तानि शमने साध्यस्य क्रिमया सतः।

वास्तव में पंच कर्मादि शोधन द्वारा चिकित्सा करना ही सत्य चिकित्सा है। आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य ही "दोष संशोधन" वाली चिकित्सा की रही है जैसे कि बताया गया है याहयु दीर्ण शमयति नान्यं व्याधि करोति च।

सा क्रिया न तु या व्याधि हरित्यन्यमुदीरमेत।।

दोष संशोधन चिकित्सा से सभी रोग नष्ट हो जाते है। उनका दमन नहीं बल्कि शमन हो जाता है इसलिए नये रोग पैदा नहीं होते है। औषधियों के दुष्प्रभाव से होने वाले रोग का डर भी नहीं रहता है। संशोधन चिकित्सा से रोग एवं दोष जड-मूल से नष्ट हो जाता है।

संशोधन चिकित्सा से और कितने लाभ होते है इसका बडा ही वैज्ञानिक वर्णन च. स. 1 6,1 7 ,1 8 ,1 9 , में किय ा गया हैं।

एवं विशुद्धं कोष्ठस्य कायाग्निरभिव(ते ।

व्याधयोश्चोपशाम्यते प्रकृतिश्चानुवर्तते।।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि वर्णश्चास्य प्रसीदति।

बलं पुष्टि रपत्यंच वृषता चास्य जायते।।

जयं कुच्छरेण लभते चिरंजीव व्यनामयः।

(1) कायाग्नि जठराग्नि तीक्ष्ण होती हैं।

(2) कोष्ठ स्त्रोत पवित्र विशुद्ध हो जाता है

(3) व्याधियां प्रशमित होती है।

(4) प्रकृति व स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता है

(5) समस्त इन्द्रियां प्रसन्न होती है।

(6) मन और बुद्धि के कार्यो का विकास व प्रकर्ष होता है।

(7) त्वचा का रंग खिल जाता है। वर्ण प्रसादन होता है।

(8) बल बढता है

(9) शरीर पुष्ट होता है

(1 0) अपत्य या संतानोत्पति की शक्ति बढ जाती है

(1 1) वीर्य की वृद्धि होती है। शुक्राणु एवं अंडाणु शक्ति शाली होते है।

(1 2) वृद्धावस्था पर रोक लग जाता है, देर से आती है।

(1 3) रोग रहित दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है।

शल्य कर्म का प्राचीनतम ग्रंथ सुश्रुत में भी शल्य कर्म अस्त्र चिकित्सा को नही बल्कि दोष संशोधन ;पंचकर्मद्ध द्वारा चिकित्सा को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया जाता है। स्पष्ट उल्लेख है कि चिकित्सा का मतलब ही दोष संशोधन है। न तो औषधि प्रयोग और न शल्य शस्त्र कर्म है-

द्विविधास्तु व्याधयः शस्त्र साध्या स्नेहादिभिर्यो साध्यश्च।

तत्र शस्त्र साध्येषु स्नेहादिभिर्यो न प्रतिषिध्यतं,

स्नेहादिभिर्यो साध्येषु शस्त्र कर्म न क्रियते- सु. सू. 2 4

3 .6 - रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना। वातावरण कीटाणु तथा अन्य कारकों को रोग या दुःख का कारण बताना अपने उत्तरदायित्व से बचाना है। स्वंय को नकारना है। रोग होने पर भाग्य एवं विधाता को दोष देना स्वंय के द्वारा किये गलत कार्यो से अपना बचाव करना है। गलत आहार विहार विचार करते समय कहां सोचते है कि मैं ही ऐसा क्यों कर रहा हुं। जब बीमारी या कोइ दुर्घटना होती है तो उस समय हम ऐसे सोचते है कि हे प्रभु! यह मेरे साथ ही ऐसा क्यों हो रहा है यदि हम करने में सावधान होते है आज जो स्थिति है वैसा नहीं होता है, योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी कहा है-

उद्धरेदात्मनालानं नात्मानमवसादयेत।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव विपुरात्मनः। गीता 61 5

अपने द्वारा अपना उधार करें। अपन पतन न करें। क्योंकि आप स्वंय ही आप ही अपना मित्र है और स्वंय आप ही अपने दुश्मन है। आप स्वंय अपने चिकित्सक एवं उपधारक है। आपके अन्दर चिकित्सक विद्यमान है। तत्व ज्ञान भी विद्यमान है। आप स्वंय अपने चिकित्सक है वैद्य है आपके अन्दर उपचार की सारी शक्तियां, नाना प्रकार की औषधियां सन्निहित है। योग का मूल मंत्र यही बु(हो या महावीर हो पतंजलि हो या कणाद हो शंकर हो या श्याम हो सभी योग गिरो मणियों का एक ही संदेश है रोग एवं दु:ख के कारण हम स्वंय है। रोग और स्वास्थ्य निजी मामला है। यह मनुष्य की स्वतंत्रता है। अज्ञान एवं असंयम के चलते प्रकृति के नियमों को तोडने से ही रोग होता है। प्रकृति के नियमों के अनुसार चलने से हम स्वस्थ रहते है।

प्रकृति के नियम के अनुसार चलने के लिए आत्मसंयम एवं आत्मनुशासन की जरूरत होती हैं। आहार विहार एवं विचार में जहां संयम टूटता है वहीं रोगों का बीमारोपण हो जाता है। इसलिए पंतजलि ऋषि योग दर्शन का प्रारम्भ ही “अथ योगानुशासन” तथा योगश्चित्रवृति निरोधः से प्रारम्भ हो जाता है। अर्थात अनुशासन यानि प्रकृति एवं परमात्मा के नियमों तथा योगाचार्य महार्षियों के प्रवचनों आचारों एवं अनुभूत परम्पराओं के अनुसार एवं अनुकूल आचरण या आत्मशासन ही योग का अनुशासन है। जो इस अनुशासन के अनुकूल आचरण करता है वह निरोगी तथा स्वस्थ होगा ही। चित वृति निरोध यानि अपने चित की व रंगो तथा मन की वृत्तियों के प्रति जो जाग जाता है वह सदा स्वस्थ एवं सुखी रहता है। यहां निरोध का अर्थ दमन नहीं है दमन तो दवाइयां करती है। यहां निरोध का अर्थ शमन एवं जागरण से है। चित्त वृत्तियों एवं मन की तंरगों के प्रति सतत जागृति का विज्ञान योग है। “संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्” संयम से विवेक जन्य ज्ञान का उद्भव होता है। जहां विवेक जन्य ज्ञान है वहां आहार विहार विचार एवं व्यवहार के प्रति गलतियां नहीं होती है रोग का स्वतः निराकरण एवं निर्वासन आरोग्य का उद्भव एवं पुनरूद्भव होता है। योगेश्वरश्री कृष्ण का कथन

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तुः शत्रु त्वे वर्तेवात्मैव शत्रुवत- गीता 61 6

जो संयमी जितेन्द्रिय यानि अपने आपसे अपने आपको जीत लिया इसके लिए वह स्वंय ही अपना बन्धु है, वह कभी बीमार तथा रोगी नहीं होगा वह सदा स्वं में स्थित स्वस्थ एवं सुखी होगा और जिसने अपने आप को नहीं जीता है वह असंयम होकर आहारादि में अराजकता एवं गलतियां करेगा बीमार एवं दु:खी होगा। इस प्रकार ऐसे लोग स्वंय अपने से शत्रु जैसा बर्त्ताव करते है। ऐसे अनात्मा की आत्मा ही शत्रुता में शत्रु की तरह वर्त्ताव करता है।

अतः रोग एवं दु:ख के लिए अपने भाग्य एवं भगवान कभी न कोसें संयम एवं अनुशासन धारण करें, सदा रोग से मुक्त होंगे।

3 .7 - रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस आदि होते है यह वक्तव्य मात्र मान्यता एवं सिद्धान्त सत्य नही है। आम सि(ान्त है कि जहां जिन्दगी होगी वहीं पर रोगाणु पनपते है। रोगाणओं को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण होना चाहिए, चाहे वह गन्दगी शरीर के अन्दर हो या शरीर के बाहर हो।

उन रोगाणुओं को मारने वाली सभी दवाइयां रोग प्रतिरोधक क्षमता को सम्वर्द्धन एवं संरक्षण करने वाली कोशिकाओं को भी नष्ट करने लग जाती है। यही कारण है मल्टीड्रग्स रेजिस्टेन्ट वाले मेथिसिलिन एवं जिस्टेन्ट स्केफिलोकोकस ऑरियस ;एम. आर. एस. ए.द्ध जैसी खतरनाक सुपर बग बैक्टिरीयाओं का विकास हो गया है। जिन पर किसी प्रकार की दवा का भी प्रभाव नहीं होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग विज्ञान के अनुसार प्रकृति मे जो कुछ भी होता है कार्य **(effect)** एवं कारण **(law of effect and cause)**, क्रिया प्रतिक्रिया **(law of action and reaction)**, रोग उन्मूलक उमाड़ **(law of healing crisis)**, रचनात्मक सृजनात्मक एवं विनाशक विध्वंसक **(law of creation construction nad destruction)]** उपशमक उमाड़ **(law of curative crisis)**, विध्वंसक कारक रोग संकट **(law of destructive disease crisis)**, नियम के अनुसार होता है।

कारण दूर होने पर कार्य स्वतः दूर होने लगता है। रोग, रोग की चिकित्सा एवं आरोग्य की उपलब्धि अचानक नहीं होती हैं सभी उपर्युक्त नियमों के अनुसार उचित एवं नियत समय पर होती है। जीवन के हर क्षेत्र में बार-बार किये गये भूल एवं गलतियों का परिणाम होता है। आत्मजागरण से भूलो की पुनरावृत्ति नही होने आरोग्य प्राप्ति में साथ होता है।

लगातार तनाव, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, लोभ, लालच, भय, कामुकता, घृणा निराशा, क्षोभ आदि दुष्प्रवृत्तियां रोग पैदा करती है। इन मनः स्थितियों में रक्त में एड्रिनलिन, कोर्टिसोल, ऐनिन, एन्जियोटेन्सिन एल्डेस्टेरॉन, 5 एच. आइ. ए. ए., कॉर्क्सिोल, लेंक्टिक एसिड आदि जैव रसायनों का स्त्राव एवं सक्रियता बढ जाती है जिससे शरीर की अनेक प्रक्रियाओं विक्षुब्ध हो जाती है। रोग प्रतिरक्षात्मक प्रणाली अस्त व्यस्त हो जाती है। जिससे जुकाम से लेकर ह्दय रोग मधुमेह कैंसर तक बीमारी होने की संभावना बढ़ जाती है।

सारी दुष्ट चित्त वृत्तियां एक ही परिवार के सदस्य होते है, इनके नाम अनेक है फिर भी ये एक ही है। जिस प्रकार शरीर में संचित विकार विविध रोगों के रूप में कमजोर अंगो से बाहर निकलते है और उन अंगो की विकृति के अनुसार रोगों का नामकरण हो जाता है उसी प्रकार मन में एक विकार होने पर अनेक रूपों में प्रकट होकर रोग उत्पन्न होता है। योगीराज भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है -

ध्याय तो विषयान्पुंसः सस्तेषूप जायते।

संत्सन्जायते कामः कामात्कोधोऽभिजायते।। गीता 2 - 62 1 1

क्रोधाऱ्वति सम्मोहः सम्मोहत्स्मृति विभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद बुद्धि नाश त्प्रणश्यति।। गीता 2 - 63 1 1

जो व्यक्ति जिस विषय ;सोचद्ध का चिन्तन करता है, उसी में उसकी आसक्ति सम्बन्ध पैदा हो जाता है। आसक्ति से कामना पैदा होती है। कामना में बाधा अड़चन पैदा होने से क्रोध पैदा होता है। क्रोध होने पर व्यक्ति बेहोशी मुर्च्छा सम्मोह मूर्खता में फंस जाता है जिससे स्मृति भ्रष्ट हो जाती है स्मृति भ्रष्ट होने से बुद्धि विवेक, सही गलत, निर्णय लेने की क्षमता खत्म हो जाती है जिससे मनुष्य का पतन प्रारम्भ हो जाता है परिणाम स्वरूप व्यक्ति नाना प्रकार शारीरिक मानसिक रोगों के चंगुल में फंसता चला जाता हैं। विभिन्न विकृत विषयों का चिन्तन भी भोगने से कम नहीं है।

इसका निराकरण भी योगी श्री कृष्ण ने बताया है जो कि प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद का मूल मंत्र है

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2 -64 ।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हनिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2 -65।।

यदि होश एवं जागृति के साथ कोइ साधक साक्षी भाव से इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सेवन करता है तो वह साक्षी भाव के कारण स्वतः राग द्वेष से रहित अन्तःकरण की निर्मलता को प्राप्त हो जाता है। वह वशीभूत अन्तः करण वाला सही कर्मयोगी साधक होता है। अन्तः करण की निर्मलता प्राप्त होने पर साधक से सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है। ऐसे शुद्ध प्रसन्न चित्त वाले साधक की बुद्धि निःसन्देह बहुत जल्दी परमात्मा में स्थिर हो जाती है। राग बु(होने के कारण ही साधक भोगों का सेवन करते हुए पतनोन्मुख होते है, विषयों में बुद्धि न हो तो शास्त्र विहित भोगों का सेवन करते हुए भी साधक का पतन नही उत्थान ही होता है। ऐसे साधक भोगते हुए भी नहीं भोगता है।

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद मानव जीवन को बोधपूर्ण सम्यक बनाती है। इसके सिद्धान्त सार्वसौम सत्य, शाश्वत एवं सनातन है। हर काल, परिवेग, देश एवं परिस्थिति में अपरिवर्तनीय है।

प्रकृति स्वंय चिकित्सक है। जंगली जानवरों पेड़ पौधों को बाहरी औषधि, कीटनाशी आदि रसायनों की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उनमें प्राकृतिक रूप में जीवनी शक्ति

प्रतिरोधक प्रणाली एवं उपचारात्मक विकसित रहती है। जिन प्राणियों पौधों एवं मनुष्यों का रिश्ता प्रकृति से टूट गया उन्हीं के लिए कृत्रिम संश्लिष्ट रसायनों की दवा की जरूरत होती है। कृत्रिम रसायन शरीर के कभी अनुकूल नहीं होते है इसलिए उनके साइड इफेक्ट के कारण अनेक बीमारियां होती है। जिस प्रकार एड्स फैला है उसी प्रकार की एक और नई बीमारी एड्स **(adverse effect of drugs)** यानि औषधियों के पार्श्व दुष्प्रभाव अन्य बीमारियां तेजी से फैल रही है। वन्य प्राणियों के लिए कौन दवा, इन्जेक्शन, टीका, ऑपरेशन का प्रयोग करता है। कोइ आवश्यकता नहीं होती है, वे नैसर्गिक जीवन जीते है और स्वस्थ रहते है। अजानवरों के स्वास्थ्य की दुर्गति हो गयी जो मनुष्य के सम्पर्क में आये।

रोग को अंग्रेजी में डिजीज **(disease)** डिसआर्डर **(disorder)** आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। **dis+ ease** या **dis + order** यानि शरीर की चैन, व्यवस्था लय ताल जब खो जाती है तो भांति-भांति की बीमारियां होती है। गलत आहार मेल, प्रदुषित, परिशोधित, डिब्बा बन्द, प्रोसेस किया हुआ, कृत्रिम रसायन जैसे प्रिजरवेटिव ;सुरक्षाकारकद्ध फ्लेवर्ड, कलरेन्ट आदि मिले हुए आहार, तले हुए नमकीनादि कॉफी शराब, तम्बाकू नारकोटिक ड्रग्स कोलादि सॉफ्टपेय, दर्दनाशक, उत्तेज, गर्भनिरोधक, एण्टीबायोटिक्स आदि दवाइयों का दुरूपयोग, अनेक प्रकार के मानसिक तनाव, अतिश्रम, देर रात तक जागना, अपर्याप्त एवं विक्षुब्ध नींद एवं विश्राम, आत्मनिंदा, परनिंदा व्यायाम तथा श्रम का अभाव उपयोगी विटामिन, मिनरल तथा अन्य बायों एक्टिव माइक्रो न्यूट्रिएन्ट की कमी वाला आहार से शरीर की रोग निवारण जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद का एक ही लक्ष्य है प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगों का उपचार करने के बाद नैसर्गिक जीवन बीमा नैसर्गिक जीवन के अन्तर्गत दिनचर्चा, रात्रि चर्या ऋतुचर्या द्वारा आहार विहार विचार एवं व्यवहार को कुदरत के कानून का पालन करते हुए **disease-dis=ease** या **disorder-dis=order** आदि को उद्घाटित या प्रकट करना है। **dis** लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है पृथकता **(sepration, removal, negativeness)** पैदा करना उपरोक्त गलत जीवन शैली आरोग्य से अलग कर बीमारी **disease** पैदा करती है।

स्वास्थ्य जैसा शब्द किसी भी भाषा के शब्द कोष में नहीं है। स्वास्थ्य का अर्थ ही होता है स्वास्मिन तिष्ठति स्वस्थः अर्थात जो अपने अन्दर प्रवेश कर 'स्व' में स्थित हो गया है **"that one who has reached himself** वही स्वस्थ है। जब बाहर एवं अन्दर का लय ताल, संगीत, हार्मोनी, रिद्म एवं नृत्य के मध्य संतुलन पैदा होता है तो सही में व्यक्ति चैन अमन शान्ति एवं स्वास्थ्य के अहसास से भर जाता है। स्वास्थ्य को अंग्रजी में हेल्थ कहते है जो हील (**heal**) शब्द से बना है जिसका अर्थ सुरक्षित, सुव्यवस्थित सुस्थित **(safe and sound)** होता हैं। चित, मन, तन, परिवार समाज

के मध्य संतुलन का नाम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की अनेक परिभाषाएं है किन्तु ये बेमानी हो जाती है क्योंकि स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं बल्कि अहसास एवं अनुभूति होती है। स्वास्थ्य अव्याख्य है। रोग एवं बीमारियों की व्याख्या एवं परिभाषाएं होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद में रोग की नहीं रोगी के पुरे शरीर की चिकित्सा होती है। **not treat the disease, only treat the patient** । अन्य चिकित्सा प(ति में जिन्हें रोग कहा जाता है और उनकी लाक्षणिक चिकित्सा दी जाती है, सिर्फ लक्षणों को दबाव दिया जाता है। जब कि प्राकृतिक योग एवं आयुर्वेद में जो रोग लक्षण एवं चिन्ह परिलक्षित होते हैं वे सिर्फ संचित दमित विकृत दुषित दोष एवं विकार है जिन्हें शरीर की जीवनी शक्ति निकाल बाहर कर स्वतः स्वस्थ होने का प्रयास कर रही है। रोगी की उम्र, उसकी जीवनी शक्ति, संचित विकार की मात्रा, धैर्य, विश्वा, समय, रोग की स्थिति, आत्मनियंत्रण एवं संयम की क्षमता, आनुवांशिकता, संस्कार आदि पर रोगी की चिकित्सा एवं आरोग्यता निर्भर करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के साथ शत्रुवत नहीं एवं मित्रवत व्यवहार किया जाता है। खास करके तीव्र रोग सर्दी जुकाम, खांसी बुखार, दर्द, दस्त आदि सिर्फ ये सूचना देते है कि शरीर में संचित विकार शरीर के वरदाश्त करने की सहनीय क्षमता **(threshold power)** से अधिक हो गया। यह खतरे की घंटी **(red signal)** है। आहार, विहार एवं विचार के प्रति जाग जाओ। उसमें सुधार करों। दो हजार वर्ष पूर्व तीव्र रोगों का सम्राट "ज्वर एवं बुखार" के लिए हिप्पोक्रेटस का वक्तव्य **"Give me the power to create a fever and i shall cure any disease"** मनन करने योग्य है। यदि तीव्र रोगों को प्रकृति के पंच महाभूत चिकित्सा आहार उपवासादि द्वारा शरीर के विकार को निकाल दिया जाता है तो भविष्य में जीर्ण एवं मारक घातक रोग होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

स्वास्थ्य यानि स्व में स्थित वहीं हो सकता है जो शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक एवं आत्मिक दृष्टि से सशक्त समृद्ध शक्तिशाली एवं संतुलित हो। प्रसिद्ध विश्व कोष वेबस्टर कॉलिजियेट डिक्शनरी में स्वास्थ्य ;हैल्थद्ध की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है।

"The state of being hale and sound in body mind or sow especially from physical disease or pain" यानि शरीर मन या आत्मा के मध्य समन्वय, सशक्त, शक्तिशाली सुव्यवस्थित स्थिति ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की स्थिति में किसी प्रकार शारीरिक रोग एवं पीडा नहीं होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन **(WHO)** के अनुसार **"state of complete physical, mental, social well being and not merely the absence of disease or infirnity"** अर्थात सिर्फ बीमारी, शारीरिक एवं

मानसिक निर्बलता से मुक्ति ही स्वास्थ्य नहीं है। बल्कि व्यक्ति की शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर शक्तिशाली जीवन यापन एवं संतुलन ही स्वास्थ्य है।

आयुर्वेद के अनुसार सम दोषः सम अग्निश्चः सम धातु मलक्रिपः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यामि धीयत।। अर्थात शरीर में सभी दोष, 1 3 अग्नि, सप्त धातु, 3 प्रकार के मल आदि समयानि उदासीन एवं संतुलन में होते है सभी इन्द्रियां मन चित्र एवं आत्मा साम्यावस्था में रहकर प्रसन्न एवं अपने-अपने कार्य करते है आनन्दित रहते है। शरीर की इस स्थिति को स्वास्थ्य कहते है। धर्मार्थ काम मोक्षणामारोग्यं मूल मूत्तमम यानि स्वस्थ होने पर ही जीवन के चार अनिवार्य कर्म धर्म अर्थ काम और मोक्ष सफलता से सम्पादित होते है। और इसके लिए आयुर्वेद आयु का ज्ञान कराता है तदायुर्वेद तीत्यायुर्वेदः हमारी आयु कैसी होनी चाहिए इसे भी चरक ने वर्णन किया है - हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम

हितकारी अहित कारी, सुखमय आयु दुःख मय आयु के लिए किस प्रकार आहार विहार विचार एवं व्यवहार यानि पथ्य होना चाहिए। इन सबका ज्ञान देने वाला एवं पथ प्रशस्त करने वाला प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद ही है।

अतः प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद आरोग्य का शाश्वत स्वंय सिद्ध सनातन अनादि एवं अनन्त विज्ञान है इनका अन्र्तसम्बन्ध भी अनादि और सनातन शाश्वत है इनके सत्य प्रभाव से व्यक्ति रोगमुक्त होकर अपने सही स्वभाव स्वास्थ्य में स्थित हो जाता है। गलत मान्यता और दुश्चिन्ताओं से मुक्त होकर आरोग्य के नित्यभाव में लीन रहते हुए अपने सही स्वभाव को प्राप्त होता है।

सोयऽमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात।

स्वभावसंसिहलक्षणत्वात भावस्वभावनित्यत्वाच्च।।

प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद जीवनोंपयोगी वनौषधियों जैसे आंवला, धृतकुमारी, अश्वगंधा, अर्जुन, अशोक, हरड़, हल्दी, चिरायत, कुटकी आदि का प्रयोग किया जाता है किन्तु कुचलाख धतूरा, भांगादि विषैले, नशे वाले औषधियों का प्रयोग उचित नहीं है। रसरसायन एवं धात्विक भस्मादि चिकित्सा का प्रयोग वर्णित है। आयुर्वेद का मूल सि(ान्त दोष प्रशमनं पर प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य करती हैं। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद पंचकर्म एवं योग के षट्कर्म का अच्छा समन्वय है। प्राकृतिक चिकित्सा में पंचभूतात्मक मिट्टी पानी धूप आकाश हवा आहार एवं प्रकृति मित्र **(nature friendly)** निरापद औषधि प्राकृतिक चिकित्सा को समग्र रूप से सक्षम एवं सशक्त बनाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

(1) आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य - आचार्य बाल कृष्ण

दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मंदिट्रस्ट पतंजलियोग पीठ, हरिद्वार

(2) प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज

मां सीता स्मृति प्रकाश न माला

3 3 /1 53 मानसरोवर जयपुर

(3) रोगों की सही चिकित्सा - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज

डॉ मंजु नीरज

जयपुर बुक हाउस, जयपुर

(4) आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान - वैद्य हरीदास श्री धर कस्तुरे

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.

(5) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - सम्पादक डॉ राकेश निन्दक डॉ गंगा प्रसाद गौड "नाहर"

आरोग्य सेवा प्रकाशन उमेश पार्क मोडीस

(6) मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य **I, II & III** भाग - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज

पापुलर बुक डिपो, जयपुर

(7) change your brain change your body - daniel G. A. men m.d.

three rivers press.com

(8) गीता प्रबोधनी - स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस

गोरखपुर

(9) आर्य योग प्रदीपिका ;पतन्जल योग दर्शनद्ध - स्वामी ब्रह्ममूनि परिवाजक

सत्यधर्म प्रकाशन, रोहतक

लेखक - डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

3 .9 - महत्वपूर्ण प्रश्न -

प्र.1 . प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद मे क्या सम्बन्ध है?

प्र.2 . प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन करो।

प्र.3 . प्राकृतिक चिकित्सा, षट्कर्म एवं पंचकर्म का रोगहरण में कैसे प्रयोग किया जाता है?

प्र.4 . चिकित्सा में आत्मानुशासन की कितनी आवश्यकता है? प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा के सन्दर्भ में समझाइये।

प्र.5. स्वस्थ एवं सुखी जीवन जीने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा किस प्रकार सहयोग करती है?

प्र.6. मानव समाज को उन्नत बनाने के लिए आप किस चिकित्सा पद्धति को सर्वोत्तम समझते है? कारण के साथ स्पष्टीकरण दो।

इकाई - 4 :

विजातीय द्रव्य का सिद्धांत एवं रोग के कारण

इकाई की संरचना

4 .1 उद्देश्य

4 .2 विजातीय द्रव्य का अर्थ व सिद्धान्त

4 .3 विजातीय द्रव्य से बचाव के बिन्दु

4 .4 रोग के कारण

4 .5 रोग का वर्गीकरण

4 .6 रोग की चिकित्सा हेतु मुख्य बिन्दु

4 .4 बोधात्मक प्रश्नावली

4 .8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4 .1 उद्देश्य

विजातीय द्रव्य शरीर में जाना सांसारिक गतिविधियों की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया दिन प्रतिदिन के खानपान, रहन-सहन, कार्य क्षेत्र का वातावरण, अपने व परिवार-रिश्तेदारों के संबंधों का नकारात्मक प्रभाव तथा मुख्य रूप से हम कह सकते हैं कि जीवन शैली के बदलाव के अप्राकृतिक पहलु के द्वारा शरीर में कुछ अनावश्यक व अहिताकरी द्रव्यों का जन्म देती हैं, जिनको हम विजातीय द्रव्य के नाम से जानते हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था का जो भी रूप नाम हैं वही विजातीय द्रव्य है। इसी अध्ययन को विस्तार से समझाने, विजातीय द्रव्य कब रोग के रूप में अर्थात् लक्षण बन कर सामने आते हैं।

ये लक्षण शरीर के किस अंग विषेष में आते हैं। इसी अवलोकन के आधार पर दूसरी पद्धतियां रोग का नामकरण करती हैं। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में ''एक ही रोग एक ही कारण तथा एक ही उपचार'' का सिद्धान्त पर सब कुछ आधारित है। इस कारण रोग के मूल विजातीय द्रव्य का यहां अध्ययन करना आवश्यक है। यह विजातीय द्रव्य - मूल - मूत्र -पसीना, ईर्ष्या, द्वेश, जुदाई, लोभ, हिंसा के रूप में शरीर में आकार रोग उत्पन्न करते हैं। रोग के शरीर में आने के कारण क्या हैं? रोगों के शरीर में प्रवेश करने के साधन अथवा प्रकार कितने हैं? इस जानकारी का अध्ययन करके हम समझ पाएगे कि

विजातीय द्रव्य तथा रोगों के कारणों से किस प्रकार दूर रह सकते हैं। इस प्रकार अच्छे स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होने के लिए हमें रोगों के प्रकार समझ कर उनकी अनुपस्थित की स्थिति कैसा बन सकती हैं अर्थात् स्वास्थ्य का आधार ही रोगों के उन्मूलन से प्रारम्भ होता है। आइये इसका पूर्ण अध्ययन हेतु आगे विवेचन को समझने का प्रयास करें।

4 .2 विजातीय द्रव्य का अर्थ व सिद्धान्त

मानव शरीर में खान-पान रहन-सहन वातावरण इत्यादि का प्रभाव सर्वथा आता जाता रहता है। उसी के फल स्वरूप में खान-पान के द्वारा एवं स्वास लेने की प्रक्रिया में किसी प्रकार की भी त्रुटि पाई जाती है तो वही बुद्धि हमारे शरीर में प्रविश्ट होके विजातीय द्रव्य के रूप में शरीर के किसी भी भाग को प्रभावित कर देती है। यह अवांछित द्रव्य शरीर के अन्य द्रव्यों से मूल नहीं खाता, इस कारण शरीर के विभिन्न भागों में रोग आने के लक्षण दिखाई देने लगते है। जिससे हमें रोग का आने का संकेत भी प्राप्त होता है। यही विजातीय द्रव्य दिन प्रतिदिन की क्रियाओं में स्वाभाविक रूप से शरीर में जमा होते रहते है। और शरीर के विभिन्न संस्थान उनको मल, मूत्र, पसीना एवं स्वास निश्कासन द्वारा शरीर से बाहर निकालते रहते हैं जब इसके निकालने के सभी मार्ग अवरूद्ध हो जाते है। तभी रोगों की उपस्थिति बन जाती है। अर्थात् यही विजातीय द्रव्य शरीर में जमा होकर हरकत में आ जाते है और उपद्रव्य शुरू कर देते है। विजातीय द्रव्य का शरीर में जिस भी अवयव पर प्रभाव पड़ता है। उसी अवयव (अंग) के नाम से रोग का नाम दिया जाता है। उपरोक्त जानकारी से पता चलता है कि केवल गलत खान पान से ही विजातीय द्रव्य शरीर में नहीं जाते है। अपितु अन्य मार्ग से भी ये शरीर में प्रविश्ठ करते है जिनमें से अप्राकृतिक जीवन शैली, प्रदूशण या गन्दे स्थान पर स्वास लेने से अथवा किसी जहरीले कीटाणु के काट लेने से या फिर अत्यधिक अनियमित दवाओं के सेवन से मानसिक कुविचार अनियमित भोग विलास, आराम दायक या आलस्य पूर्ण दिनचर्या इत्यादि से भी विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होते रहते है। इन्ही विजातीय द्रव्य को आयुर्वेद में दोश कहा जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति विजातीय द्रव्य की ही सर्वोत्तम चिकित्सा है।

प्रायः यह माना जाता है कि विजातीय द्रव्य कमजोर व्यक्ति में जल्दी पनपते है। किन्तु यह कमजोर व्यक्ति शरीर में कमजोर ना होकर उसकी जीवनी शक्ति का कमजोर होना पाया जाता है। जब शरीर में जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है उस अवस्था में शरीर से विजातीय द्रव्य का निश्कासन प्रभावित होता है। अर्थात् शक्ति हीन शरीर में जमा हुये कचरें को बाहर निकालकर शरीर को निर्मल न हो बना सकता। अतः विजातीय द्रव्यों के कारण शारीरिक सौन्द्रर्य एवं आकर्शण व बनावट प्रभावित होती है, स्वभाव चिड़चिडा हो जाता है बात बात पर क्रोध उमड़ता है भूख मर जाती है शरीर थुल थुल हो जाता है। अतः उसकी नीद हराम हो जाती है। इन सबके पीछे रात्रि में जागना, चिंताओं से घिरे रहना, किसी अति प्रिय को भूल न पाना, रात की सिफ्ट में नौकरी करना, शारीरिक क्षमता बैठाने के लिये औशधियों का प्रयोग करना, श्रमव्हीन जीवन चर्या व्याधियां। वाग भट ने भी कहा है - ''दौश ऐवहि सर्वेशाम रोगाणमिक कर्ण में अर्थात सभी रोगों का

कारण एक ही है जिसे दोश या विजातीय द्रव्य कहा जाता है। विजातीय द्रव्य तो एक ही है लेकिन उससे पैदा होने वाले लक्षण एवं रोग अनेकों पैदा हो जाते है। अर्थात् रोग एक होते हुये भी उसके रूप भिन्न - भिन्न पाये जाते है यह एक बहुत बड़ा तथ्य सामने आता है कि विभिन्न रोगों को उत्पति में कीटाणु नहीं होते अपितु विजातीय द्रव्य शरीर में भरे होने से उनमें रोग के कीटाणु पनपते है अथार्थ बाहरी वातावरण के कीटाणुओं को शरीर में प्रविश्ट होने से तब तक रोग नहीं पाते जब तक शरीर में उनको पनपते के लिए गन्दगी नहीं मिल जाती। यदि शरीर में गन्दगी नही है तो शरीर की जीवनी शक्ति कुछ कीटाणुओं के शरीर में आने का प्रभाव नश्ट कर सकती है अतः हम कह सकते है कि बाहरी कीटाणुओं को शरीर में प्रविश्ट होने से तब तक रोग नही आते जब तक शरीर में उनको पनपने के लिए गन्दगी नहीं मिल जाती। यदि शरीर में गन्दगी नहीं हैं तो शरीर में आने का प्रभाव नश्ट कर सकती है। अतः हम कह सकते है कि बाहरी कीटाणु शरीर में प्रविष्ट होकर भी शरीर में रोग पैदा नहीं कर सकते। जब तक जीवनी शक्ति प्रबल है। यही जीवनी शक्ति प्रत्येक शरीर में अलग अलग पायी जा रही है। अर्थात् किसी भी जीवनी शक्ति बहुत अच्छी होती है किसी की कम होती है इसी कारण हमारे शरीर के चारों ओर कीटाणु होने से कुछ को रोग होते है तथा अन्य को नहीं क्योंकि जिनकी जीवनी शक्ति प्रबल है वो कीटाणुओं के शरीर में आते ही वे असर कर देती है। इससे यह स्पश्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य ही रोगों का प्रमुख कारण है तथा तीव्र रोगों का जन्मदाता है। इसी के कारण आज विष्व में एक प्राकृतिक जीवन शैली का प्रभाव चारों और छाया हुआ है केन्सर, हृदय, रोग, उच्च्व रक्त चाप, मधुमेह, जोड़ों के दर्द व एड्स जैसी दुखद एवं जानलेवा बीमारियों का समाना करना पड़ रहा है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त व नियम आज भी अचूक सिद्ध होते जा रहे है क्योंकि मानव शरीर छित, जल, पावक, गगन, समीरा रूपी महाभूत की देने है। इन्हीं को उपयोगी व गुणवान मानते हुए प्राकृतिक चिकित्सा का अस्तित्व सशक्त है तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियां मनुश्य कृति होने के कारण कुछ चीजों का छोड़ के शेष रोगों में मिथक बनती जा रही है। निष्कर्ष के तौर पर जीवन शैली एवं प्राकृतिक चिकित्सा के नियम व सिद्धान्त ही विजातीय द्रव्य से बचाकर स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है अन्यथा रोगी से पीड़ित रहना निश्चित होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पश्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य को शरीर में पैदा होने से रोकना है तो अहितकर भोजन जो निम्न प्रकार है।

4 .3 विजातीय द्रव्य से बचाव के बिन्दु

1 संयुक्त भोजन - जब एक ही समय पर विभिन्न खाद्य द्रव्यों का समावेश करके अर्थात् रोटी, दाल, चावल के साथ खीर दूध अचार घी इत्यादि का सेवन संयुक्त रूप से नहीं करना चाहिए।

2 मासाहारी भोजन

3 मिर्च मसाले व तला भुना भोजन

4 वासी व सड़ा गला भोजन

5मृत भोजन - इस श्रेणी में चाय, केक, बिस्किट सफेद, चीनी, मिठाइयां नशीली व उत्तेजक खाद्य वस्तुऐं म्रत या निश्प्राण भोजन के अन्तर्गत आती है। इससे लाभ की अपेक्षा विजातीय द्रव्य पैदा होते है।

6वेमेल भोजन - वे मेल अर्थात् विपरीत द्रव्यों को मिश्रित करके ग्रहण करने से वह भोजन नहीं विष बन जाता है। उदाहरण के लिए दाल-भात के साथ मांस का सेवन अथवा घी व शहद का बराबर बराबर मात्रा में खाने से मृत्यु तक हो सकती है।

इन सभी वे मेल द्रव्यों के सेवन से शरीर में विजातीय द्रव्य पनपते है संक्षेप में हम कह सकते हैं विजातीय द्रव्य रूपी रोग के स्वरूप को दूर रखना चाहते है तो उपरोक्त का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

रोग का तात्पर्य है शरीर की तथा मन की विकार युक्त अवस्था रोग कोई बाहरी तत्व नहीं है जो शरीर पर आक्रमण करके विकार युक्त बनने के लिए बाध्य करे रोग शरीर के आंत्रिक भाग में विजातीय द्रव्यों की उपस्थिति का नाम है। शरीर के कश्ट पूर्ण लक्षणों का अथवा पीड़ा युक्त लक्षणों को दबाते रहने को डॉ. एलेक्सिस ने (कृत्रिम स्वास्थ्य) का नाम दिया है ऐसे लक्षणों को दबाकर रहने वाला व्यक्ति पीडामय से सदा भयभीत रहता है इसी लिए वह कभी भी रोग मुक्त नहीं हो पाता अर्थात् भय से रहित व्यक्ति ही स्वस्थ हो सकता है।

डॉ. जैसमीमसर गेहमन के अनुसार स्वास्थ्य परिवर्तित अवस्था को ही रोग कहते है शारीरिक धर्म अथवा स्वास्थ्य के विरूद्ध आचरण करना अनिश्कारी मनोवृतियों का असंगत प्रयोग अहितकर चिन्तन इत्यादि ही रोग का कारण होते हैं। प्रकृति एवं प्राकृतिक नियमों का पालन न करना हा रोगों को जन्म देता है।

रोग शरीर में कही भी किसी न किसी अवस्था में छिपा रहता है उस अवस्था में उसका कोई आकार या सकल नहीं पहचानी जा सकती लेकिन जब वह विकराल रूप धारण कर निकलने के लिए अपना रूप बदलता है त बवह आकार या नाम के रूप में पहचाना जा सकता है इन्ही नामों में से कुछ नाम जैसे चेचेक, बुखार, दस्त, फोड़े, उल्टी, कमर दर्द, सिार दर्द इत्यादि के रूप में देखने को मिलते है अर्थात् शरीर में संचित मल कभी ना कभी इन रूपों की दो अवस्थाएं अथवा रूप में जो जो रोगों के विभिन्न लक्षणों के आने से पहले की अवस्था है दूसरा साकार रूप जा`रोगों के विभिन्न नामों से जाने जाते हैं अर्थात विभिन्न अंगों तथा विभिन्न रूप के रू‌प से जाने जाते हैं अर्थात् विभिन्न अंगों तथा विभिन्न रूप के रू‌प में देखे जात सकते हैं किसी का भी शरीर देखने से स्वस्थ दिखाई पड़ सकता है। लेकिन यह आवश्यक नही कि वह व्यक्ति वास्तव में भी स्वस्थ क्योंकि रोग के शुरू होने अर्थात् विजातीय द्रव्य का एकत्र होने उसके पनपने और उसके

बाद उसके निकलने में काफी समय लग जाता है जब तक वह शरीर के अन्दर निराकार रूप में पनप रहा था तब तक बाहर से व्यक्ति स्वस्थ दिखाई देता है। परन्तु अन्दर रोग बढता जा रहा होता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि रोग अपना सामने आने में कई बार बहुत समय लग जाता है लेकिन ऐसी अवस्था बहुत भयानक व प्राण घातक सिद्ध होती है।

वर्शों के अनियमित खान-पान, रहन-सहन, प्रतिकूल जलवायु इत्यादि के कारण शरीर में विजातीय द्रव्य रूपी जहर बूंद बूंद करके बढ़ता रहता है बाद में यही बूद बीज का काम करके एक विषाल पेड रूपी रोग को जन्म देती है। कभी कभी कुछ बूंदों के जमा होते ही तीव्र रोग आ जाते है जिससे विजातीय द्रव्य की वह बूंद जो जहर रूपी बीज बनने जा रही थी वह तीव्र रोग के द्वारा बाहर निकालती है। इस प्रकार यदि हम ये कहें कि तीव्र रोग हमें स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए आते है तो बड़ा अटपटा सा लगता है कि रोग से स्वास्थ्य कैसे मिल सकता है परन्तु यह बात पूर्णतः सत प्रतिशत ठीक है क्योंकि विजातीय द्रव्य के शरीर में बडा रोग आने से बचा जा सकता है। अब बात यह उठती है कि वह विजातीय द्रव्य रूपी जहर शरीर में क्यों आया। जब भी हम प्रकृति से दूर होकर नियमों की परवा न करके नियम विरूद्ध आहार - विहार लेते है वही इस जहर के लिए जिम्मेदार होता है स्वास्थ्य सिद्धान्तों को अनदेखी करना और अपने विचारों को संयमित न करना इसका मुख्य कारण है अग्रेज कवि मिल्टन के अनुसार म नही मनुश्य के रोगों का कारण है क्योंकि रोग सबसे मन में ही पैदा होते है फिर शरीर पर लक्षण दिखाई पड़ते है।

4 .4 रोग के कारण

रोग का मुख्य कारण तो प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र के नियमों का उल्लघंन है पूरी दुनिया में रोग जीवन शैली गलत होने के कारण व्यापक रूप ले रहे है जेकिन इसका अभिप्रायः ये नहीं है कि सभी को बीमार पड़ना अनिवार्य है यदि निम्न बातों को अथवा स्वास्थ्य नाषक आदतों को ध्यान में रखें तो हम रोगों से बच सकते है ऐसी ही रोग कारक आदतें निम्न प्रकार है -

1 रोगों का भय - महामारी, हेजा, प्लेग, डेगूं इत्यादि रोगों से उतनी ज्यादा मौते नही होती जितनी की रोगी उस रोग के भय से मन में भय पैदा कर लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है चरक के अनुसार भी काल बडी इन्द्रीय विषयम आदि के मिथ्या, योग, अयोग, और अतियोग होना भी शारीरिक मानसिक व्याधियों का कारण है।

2 अप्राकृतिक जीवन यापन - डॉ. ए. जुस्ट ने कहा है कि बहुत लोग सोचते है कि अकाल मृत्यु तथा रोग भगवान की देन है किन्तु ऐसा बिलकुल नहीं है इसका मुख्य कारण तो हमारी जीवन शैली के मुख्य घटक ही है जो इस प्रकार है -

1 बिना चबाये भोजन करना

2 बिना भूख के भोजन करना

3 दिन में बार-बार बिना समय खाते रहना

4 एक बार के भोजन में ठूस कर खा लेना

5संयोग विरूद्ध आहार का सेवन करना

6खाद्यय पदार्थों को तेल घी में गलत ढंग से पकाना

7 छोटी - छोटी श्वासें लेना

8 व्यायाम व शारीरिक श्रम का अभाव होना

9 वे ढंग से टाइट तंग व मोटे कपड़ों को पहनना।

1 0 अत्यधिक सौन्दर्य प्रसाधनों को शरीर पर लगाना

1 1 चलने बैठने व काम करने के ढंग में शारीरिक स्थिति का गलत प्रयोग करना

1 2 लालच व अत्यधिक क्रोध व ईर्श्या जैसी मानसिक स्वास्थ्य खराब करने वाली प्रवृत्तियों से ग्रस्त होना।

1 3 परिवार व समाज के प्रति तनाव पूर्ण रिश्ते से दैनिक कार्यों में समस्याऐं बढ़ा लेना या रूचि न लेना।

3 प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास - शरीर में दिन प्रतिदिन के धूल व गलत आहार-विहार से जो विजातीय द्रव्य शरीर में आते है उनको बाहर करने का काकम जीवनी शक्ति ही करती है जिसको प्रतिरोधक क्षमता भी कहा जा है यही जीवनी शक्ति5 यदि कमजोर हो जाती है तो वह विजातीय द्रव्य को बाहर निकलने में असमर्थ हो जाती है जिसके कारण स्वभव चिडचिडा होना भूख न लगना, ठहक से नींद न आना, चेहरा निस्तेज होना इत्यादि लक्षणों के फलस्वरूप रोगों का आना जाना बना रहता है इसलिए अत्यधिक औशधियों का सेवन रात में कम करना या जागना तनाव इत्यादि से घिरे रहना शक्ति से अधिक कार्य करने से बचना बहुत जरूरी है क्योंकि ये सभी चीजें प्रतिरोधक क्षमता को घटाती है।

4 पैत्रिक परम्परा - वंश के अनुसार माता पिता के खून के प्रभाव से अथवा गर्भाधान के समय रज और वीर्य माता पिता के दोश सन्तान में आना स्वभाविक है अतः ऐसे परम्परा एवं संस्कारों से प्रभावित व्यक्ति को प्रारम्भ से ही अपने शरीर में विजातीय द्रव्य पैदा होने से पहले ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बाहार करते रहने का प्रयास करना चाहिए।

5गलत उपचार - विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त के अनुसार शरीर में संचित अनावश्यक मल जमा होना ही रोगों का मुख्य कारण है इसलिए इस मल का उल्टी दस्त के मुख्य

कारण है इसलिए उसे रोकने के लिए दबा रूपी विष का प्रयोग करना गलत उपचार की श्रेणी में आता है क्योंकि दुशित मल बाहर निकालने की जीवन शक्ति का प्रयास निश्फल करना वह भी औशधयों के द्वारा गलत है इससे जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है तथा वह आगे आने वाले समय के लिए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में असफल हो जाती है।

6बाहरी दुर्घटना - किसी भी चोट या दुर्घटना के कारण अचानक शल्य चिकित्सा करनी पडे अथवा हड्डी टूट जाने के कारण रोग की अवस्था बन जाना इसके अन्तर्गत आता है।

7 कीटाणुओं के कारण रोग - प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार रोग उत्पति में कीटाणु कभी भी प्रारंभिक कारण नहीं बनते अपितु शरीर में जमा मल में कीटाणु पनपते है अर्थात रोग का प्राथमिक कारण प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार विजातीय द्रव्य ही है उसके बाद कीटाणु रोग को बढ़ाने में सहायक बन सकते है क्योंकि जीवाणु मल को खाकर मल को सड़ाने का काम करते है और उसी सडन से अपनी संख्या में वृद्धि करते है। इसी कारण महामारी के दौरान रोग फैलने की गति बहुत तेज हो जाती है क्योंकि अधिकतर लोगों के शरीर में मल संचित रहता है जिसमें बाहिरी कीटाणु प्रवेश करके जल्दी पनपने लगते है।

4 .5 रोग का वर्गीकरण

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार व्यक्ति आध्यात्मिक मानसिक सामाजिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ न होने की स्थिति में रोगी कहलाता है। अर्थात ऊपर बताई गयी चार अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में भी स्वस्थ न होना रोगी बना देता है। अतः रोग को उनके वर्गीकरण अनुसार समझने के लिए भारतीय शास्त्रों के अनुसार औधिदैविक, आधि दैहिक और आधि भौतिक ये तीन प्रकार के वर्गीकरणों की व्याख्या है जिसमें कुछ व्याधियां दैविक प्रकोप अथवा भाग्य से उत्पन्न होती है तो कुछ हमारे गलत खान-पान से होती है और तीसरे प्रकार की व्याधि सांप या किसी जानकवर अथवा भूत प्रेत की पीडाओं से होती है उपरोक्त विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार रोगों के चार भाग का अध्ययन हम निम्न प्रकार से कह रहे है -

1 आध्यात्मिक रोग - जिस प्रकार आत्मा व शरीर दो अलग अलग जीचें है इस कारण किसी एक में भी रोग आने से उसका प्रभाव दूसरे पर आना स्वाभाविक है शरीर, मन और आत्मा तीनों किसी न किसी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए है लेकिन उन तीनों के अनुसार अलग अलग है उदाहरण के लिए त्यार किसी शरीर से नहीं किया जा उसकी आत्मा अर्थात् उसके अच्छे व्यवहार अच्छी आदतों को ही पसन्द किया जाता है न कि उसके शरीर के आकर्शक को किसी व्यक्ति के शरीर को अच्छे बुरे के संज्ञा उसकी आत्मा द्वारा किये गये अच्छे कार्यों पर आधारित होती है उसी प्रकार प्रभु ने अविश्वास करना एक आध्यात्मिक रोग का स्वरूप माना जाता है ऐसे रोगों की चिकित्सा के लिए महात्मा गांधी जी ने पांच तत्व की चिकित्सा के साथ साथ्ज्ञ छटा तत्व रामनाम आवश्यक

बताया है चिकित्सा में राम नाम तत्व को हटाकर पंच महा भूत चिकित्सा द्वारा रोगों को ठीक करना असम्भव है अतः हम कह सकते है आध्यात्मिकता का अभाव रोग उत्पति का कारक बनता है।

2 मानसिक रोग – मानसिक रोग इतनी छोटी छोटी बातों से उत्पन्न हो जाते है जिनकी हम दिन प्रतिदिन को गतिविधियों में अनदेखी करते रहते है। यदि थोडा सा भी ध्यान और विवके रखा जाय तो उनसे बचना जितना आसान हो जाता है उतना ही इनमें लापरवाही करना भयानक एवं अनिश्ठकारी बन जाता है मानसिक रोग शारीरिक रोगों से ज्यादा खतरनाक होते है इस तरह की व्याधियों में निराशा, अहंकार, लोभ, चिन्ता, ईश्या, घृणा, द्वेश अहिंसा, भय, अज्ञान स्वार्थ अविश्वास बहम पागलपन आदि रोग आते है लुई कुने के अनुसार विजातीय द्रव्य की मात्रा बढकर पीठ में होते हुए रीड की हड्डी को प्रभावित करते हुए दिमांग की नाजुक ज्ञान इन्द्रियों जकड लेता है क्योंकि इसका मुख्य प्रभाव सुशमना नाडी पर अधिक आता है यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरूशों में अधिक आता है क्योंकि पुरूष शराब, सिगरेट इत्यादि संयम नहीं कर पाते है साथ ही साथ बचपन से ही आर्थिक अभाव उदास घर का वातावरण वेमेल विवाह अर्मानों का पूरा न होना लम्बी बीमारी अथवा बार बार बीमार होना अत्यधिक काम करना बच्चों का माता–पिता के प्रति अथवा माता पिता का बच्चों के प्रति लगाव कम होने से भी बच्चे आने वाले समय में चोर, अपराधी, बतमीज, क्रोधी और झूठे आसानी से बन जाते है। मानसिक रोगों को शरीर के स्नायु के मार्गों में बादा बनते हुए शरीर के तन्तुओं को नश्ट कर देते है। जिससे शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कमजोर हो जाती है और शरीर से मल रूपी विजातीय द्रव्य पूरी तरह से नहीं निकाल पाते विदेशी मनोवैज्ञानिकों ने लक्वा रक्त की कमी टीबी जैसे जान लेवा रोगों में 9 0 प्रतिशत भाग मनोविकार से शुरू होता है एक उदाहरण से मन में भय होने से कैसे रोग आते है यह आसानी से समझा जा सकता है एक बार रेडियों पर शेर के गर्जने की आवाज सुनकर एक बच्चा बेहाश होकर जमीन पर गिर गया दो घण्टे बाद जब उस बच्चे को होश आया तो देखा कि उसे दस्त व उल्टियां शुरू हो गयी इससे स्पश्ट हो जाता है कि मन में भय आने से किस प्रकार विभिन्न बीमारियां आसानी से आ जाती है ऐसे बहुत से उदाहरण जैसे भूत प्रेत का भय तथा रस्सी को सांप समझ लेने का भय व्यक्ति को वर्शों तक बीमार बनाये रखता है इसी प्रकार चिन्ता आज का प्रमुख मानसिक रोग है जो भय से उत्पन्न होती है चिंता के द्वारा खून में रासायनिक परिर्वतन होने शुरू हो जाते है जिससे रक्त में विकार आ करके रक्त सूखना शुरू हो जाता है और शरीर कमजोर पकडकर कान्तीहीन हो जाता है और यह अवस्था गहरी व लम्बी हो जाय तो मनुश्य चिन्ता से चिता तक पहुंच जाता है ऐसे रोगियों के मूह गाल पिचक करके रात को बार बार नीद टूट जाती है, और उसका पाचन खराब हो जाता है यह वह कीडा है जो शरीर रूपी पेड को जड़ से खोखला कर देता है जो शरीर रूपी पेड को जड से खोखला कर देता है एक शोध के अनुसार मानसिक असन्तुलन से विषेषकर ईर्श्या से खून में जहर बन जाता है जो बात या वायु रोग में परिवर्तित हो जाता है इससे स्नायु प्रणाली सिकुड जाती है जोड जकड जाते है।

जिससे खून का प्रवाह धीमा होकर विभिन्न अंगों को सुन कर देता है ठीक इसी तरह से मोह और वासना जिसको हम गलती से प्रेम कहते है से चिडचिडा पन हीन भावना इत्यादि रोग शरीर को धुन की तरह लग जाते है इसलिए उग्रता लाना उत्तेजित होना हर बात में बहस करना दूसरे को डरा धमका कर अपनी बात ऊपर रखना तथा अपनी इच्छा की पूर्ति करना दूसरों पर अधिकार जमाना इत्यादि से दूर रहना ही मानसिक रोगों को बचाव है मन चंचल होने पर एक गिलास ठंडा पानी पीने अथवा रामनाम का जाप कर ले या अपने को वहां से हटाकर दूसरी जगह ले जायें।

3 शारीरिक रोग - शारीरिक रोगों में दो प्रकार के रोग माने जाते हैं एक तीव्र रोग जो प्रकट होने के साथ साथ भी उग्र रूप धारण कर लेते हैं उदाहरण के लिए हैजा, जुकाम, दस्त, उल्टी, सिस दर्द, आदि इसके अन्तर्गत आते है डॉ. लिण्डल्हार के अनुसार इसकी पांच अवस्थायें बताई गयी है पहली अवस्था में शरीर के किसी भाग में भर जाने से उत्तेजना के द्वारा धीरे धीरे या कभी कभी जल्दी एक वि शेश रूप धारण कर लेते है दूसरी अवस्था में रोग का वह रूप बढ कर कश्ट कारक हो जाता है रोगी सूजन बुखार इत्यादि से कमजोरी महसूस करता है तीसरी अवस्था में रोग का रूप बढ कर कश्ट कारक हो जाता है रोगी सूजन बुखार इत्यादि से कमजोरी महसूस करता है तीसरी अवस्था में रोग से प्रभावित स्थान के कण नश्ट होने से घाव बन जाता है मवाद पड जाती है तथा रक्त बहना शुरू हो जाता है रोग की यही जोखिम की दशा होती है इस घडी को पार करने पर शरीर रोग मुक्त होना प्रारम्भ करता है उसी को चौथी अवस्था भी कहते है जिसमें रोग खत्म होना शुरू होता है व उसके लक्षण एक एक करके कम होते जाते है पांचवे व अंतिम अवस्था में रोग के मूल कारण विजातीय द्रव्य पूरी तरह से शरीर से बाहर होने शुरू हो जाते है और शरीर पुनः अपने स्वाभाविक रूप में आना शुरू हो जाते है।

2 . जीर्ण (पुराने रोग) - विजातीय द्रव्य तीव्र या उग्र होकर के निकलने के बजाय दवाओं से या किसी अन्य कारण से दबे रहेकर शरीर के भीतर भाग में बने रहते है जो लम्बे समय तक हल्का हल्का कश्ट देते हुए शरीर में बने रहते है जिनको हम जीन रोग के नाम से पुकारते है ये रोग तीव्र रोगों के द्वारा विजातीय द्रव्यों को पूरी तरह निकालने में असमर्थ होने अथवा उनको निकालने में बाधा उत्पन्न होने से पैदा होते है उदाहरण के लिए बार बार बुखार होने पर उसको दवाओं से दवाते रहने से एक्समा रोग (टीवी) हो जाती है तथा बार बार जुकाम होने से एनटी वाइटिक खाकर दवा देने से अस्थमा हो जाता है अर्थात स्वांस की बीमारी लग जाती है तीव्र रोगों में पीडा अधिक होती है लेकिन जीर्ण रोगों में पीडा अधिक होती है लेकिन जीर्ण रोगों में पीडा कम हो करके ज्यादा अवधि तक बनी रहती है जिससे पूरा जीवन असहनीय व दुर्लभ हो जाता है और रोगी धैर्य खोकर के निराश हो जाता है ऐसे रोगों को दूर करने के लिए रोगी को चिकित्सक पर पूरा विश्वास करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार लेना चाहिए जिसके अन्तर्गत विभिन्न उपचारों के माध्यम से उसकी जीवनी शक्ति को मजबूत बनाना होता है तथा उसके बाद जीर्ण रोगों को उभार लाकर तीव्र रोग की स्थिति पैदा करते हुए विजातीय

द्रव्यों को बाहर निकालकर रोग को ही नहीं उसकी मूल अवस्था को भी दूर कर दिया जाता है। लेकिन इसमें स्थिति भयानक होकर के खतरा पैदा कर सकती है। इस लिए ऐसे रोगों की चिकित्सा में थोड़ा टाइम अधिक लग जाता है परन्तु रोग जड़ से चला जाता है।

4 .6 रोग की चिकित्सा हेतु मुख्य बिन्दु

1 रामनाम - इस चिकित्सा पद्धति में उपचार के साथ साथ रोग को दूर करने की इच्छा नियमों का पालन और पंच तत्व चिकित्सा के साथ साथ मन में ठीक होने का द्रण विश्वास ही चिकित्सा का रोग रहित प्रभाव मिल सकता है अर्थात रामनाम रूपी श्रद्धा व्यक्ति के अन्दर बसने वाली शक्ति में उत्पन्न होनी आव श्यक है यही शक्ति आरोग्य प्रदान करती है जिसको कोई जीवनी शक्ति कहता है कोई परमात्मा कोई अन्तर आत्मा कोई उपासना अथवा प्रार्थना कहता है।

2 मन की सोच - यह बात बिल्कुल सत्य है कि रोग की अवस्था में मन में जैसे विचार होगे उसी के अनुसार रोग का घटना या बढ़ना आधारित होता है इसलिए आवश्यक हैं रोगी ऐसे वातावरण में रहे जहां उसके मन में रोग के ठीक होने की अनुभूति अथवा क्रोध भय, चिन्ता इत्यादि वेग उत्पन्न ना होने दे सुधार के लक्षणों का अवलोकन करते हुए अपने विचारों को सकारात्मक रूप प्रदान करें।

3 संयम - जैयस कि कहा गया है कि अकेला परेज सौ रोगों की एक मात्र दवा है साथ ही सर्वप्रथम उपचार भी है। जिसका दूसरा नाम संयम है इसके बिना बढिया से बढिया उपचार भी उतना अच्छा परिणाम नहीं दे सकता जितना संयम के परिणाम आते है महात्मा गांधी जी ने संयम ही जीवन को बिना नीम का घर बताया संयम ही सभी प्रकार के शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक रोगों की सबसे अच्छी औषधि अथवा उपचार है।

4 सम्पूर्ण आराम (विश्राम) - रोग की अवस्था में शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि शरीर में अनावश्यक ऐसे कार्यों में न लगाये जिससे जीवन शक्ति का कार्य वांछित हो क्योंकि उस समय जीवनी शक्ति का कार्य वाछित हो क्योंकि उस समय जीवनी शक्ति को एक मात्र काम विजातीय द्रव्य बाहर करना जरूरी होता है इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि रोगी पूरी तरह से आराम करें।

5मन प्रसन्न रखना - जब तक भी हम प्रसन्न होते है तब हमारे शरीर में सिरोटीनिन का श्राव बढ जाता है जिसके कारण शरीर का विद्युत प्रभा बढ़ जाता है इसी के द्वारा शरीर में ऊर्जा बढती है और सकारात्मक विचार आने प्रारम्भ हो जाते है।

6गहरी निद्रा - प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार माना जाता है कि रोगी की आवश्यकता आहार से अधिक नीद की होती है रोगी को कम से कम 8 से 1 0 घण्टे गहरी नींद सोना आवश्यक है नीद के द्वारा उसका स्नायु मण्डल तनाव रहित होकर पूरे शरीर का तनाव मुक्त कर देता है।

7 मनोरंजन – रोग की अवस्था से निकलने के लिए सदा प्रसन्न होना आवश्यक है तथा बार बार रोग के बारे में सोचने से बचना आवश्यक हे जिसके लिए रोगी को मनोरंजन जैसे कुछ गतिविद से जुड़े रहना की आव श्यकता है।

निष्कर्ष –

उपरोक्त विवेचन से स्पश्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य ही सभी रोगों की जननी है इसलिए इनको समझना उतना ही आवश्यक है जितना रोगों के आने के बाद उनका उपचार करना रोग न आने देना उतना कठिन काम नहीं है जितना कठिन काम रोग आने के बाद उनको ठीक करना है इसलिए समय समय पर विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने हेतु पंच महाभूत चिकित्सा की सहायता लेनी चाहिए यही एक मात्र ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो रोगों के बिना भी की जा सकती है अर्थात रोगो के बिना भी कि जा सकती है अर्थात रोग आये ही नही ऐसा केवल इसी पद्धति में संभव है। यद्यपि रोग आ भी जाये तो उसके कारणों व लक्षणों को समझते हुए रोग को दबाये बिना ठीक किया जा सकता है अर्थात जीवन शैली में बदलाव लाकर रोग के द्वारा आने से भी रोका जा सकता है। इसी चिकित्सा पद्धति के माध्यम से और जीवन शैली के परिवर्तन से शारीरिक – मानसिक आध्यात्मिक आदि सभी रो दूर किये जा सकते है।

4 .4 बोधात्मक प्रश्नावली

1 विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त से आप क्या समझते है? विजातीय द्रव्य का रोग से क्या संबंध है।

2 रोग का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करते हुए विभिन्न रोगों का वर्गीकरण समझाइए?

3 रोग के कारण व लक्षण का वर्णन कीजिए?

4 रोग की चिकित्सा हेतु आवश्यक बिन्दुओं की व्याख्या करें?

4 .8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल

2 प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र – आचार्य शेशाद्रि स्वामिनार्थन्

3 वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओ.पी. सक्सेना

इकाई - 5:

स्वास्थ्य एवं रोग का अर्थ एवं परिभाषा

5.0 उद्देश्य

स्वास्थ्य किसे कहा जाता है? स्वास्थ्य रोग विहीन शरीर को माना जा सकता है? स्वास्थ्य के विषय में डब्ल्यू.एच.ओ. की संशोधित परिभाषा क्या कहती है? स्वास्थ्य शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक, आध्यात्मिक व सामाजिक स्वास्थ्य से भी परिपूर्ण होना आवश्यक है। स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाने हेतु किन बिन्दुओं को समझते हुए उनकी मौलिक आवश्यकताएं क्या हो सकती है? जिनसे हम चारों प्रकार के स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सके। साथ ही हम जान पाएगें कि स्वास्थ्य की अनुपस्थिति ही रोग की जन्मदात्री है। अर्थात् रोग क्या है? उसका अर्थ एवं परिभाषा तथा उसके कारण जिनमें रोग आते है और रोगी शरीर को हम किस प्रकार पहचान कर सकते हैं। रोग कितने प्रकार से हमारे शरीर को प्रभावित करते हैं। उनके मुख्य स्रोत क्या हो सकते हैं।

5.1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा

शरीर, मन तथा शरीर के विभिन्न अंगों का आपस में तालमेल बनाते हुए एकरूपता में व्यवस्थित तौर पर कार्य करना ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य उन तत्वों एवं शक्तियों का पूर्णरूपेण कार्य करना होात है जो मानव अस्तित्व को निर्माण करने वाले भौतिक, मानसिक एवं नैतिक स्तरों पर व्यक्तियों के अस्तित्व के लिए आवश्यक प्रकृति के निर्माणकारी सिद्धान्त के अनुरूप होते है। स्वास्थ्य स्वस्थ रहना और स्वास्थ्य को बनाए रखने की बात सदियों से चलती रही है। समय के बदलते रूप के साथ इसका स्वरूप भले ही बदलो लेकिन इसके प्रति लोगों का आर्कशण सदैव बना रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के तौर तरीके अपनाता है जिसमें औषधि का लिया जाना, अन्य क्रियाकलापों का किया जाना तथा अन्य भी ढेर सारे क्रियाकलाप शामिल होते है। हमारे लिए यह जानना काफी क्रियाकलाप शामिल होते है। हमारे लिए यह जानना काफी आवश्यक है कि स्वास्थ्य क्या है। सरल शब्दों में रोगों की अनुपस्थिति ही स्वास्थ्य कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार पंच तत्वों का संतुलन ही स्वास्थ्य है। इन तत्वों में असंतुलन ही रोगों के प्रार्दुभाव का मुख्य कारण होता है और इससे हमारे स्वास्थ्य को काफी नुकसान पहुंचता है। लेकिन WHO के अनुसार किसी भी व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक इन सभी दृश्टिकोणों से पूर्ण स्वस्थ्य होने की अवधारणा ही स्वास्थ्य कहलाती है। आज आधुनिक जीवन शैली में स्वास्थ्य को प्राप्त करने तथा अपने आपको रोगमुक्त रखने के लिए चिकित्सा विज्ञान द्वारा काफी प्रयास किए जा रहे है। दिन प्रतिदिन हो रहे अनुसंधानों, चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों, म शीनों, निदानों, डॉक्टरों और अस्पतालों की बढ़ती संख्या के बावजूद रोग और रोगियों दोनों की संख्या में काफी वृद्धि हो रही है। इस स्थिति के पीछे का मुख्य कारण यह है कि आज हमारा सारा ध्यान स्वास्थ्य की चिंता करने के बजाए बीमारियों को दूर करने में लगा रहता है। हम स्वास्थ्य को प्राप्त करने के बजाए बीमारी को मिटाने में लगे रहते है। वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों का ध्यान भी स्वास्थ्य को पूर्ण अवधारणा को प्राप्त करने के बजाए रोग पर केन्द्रित होता है। दुर्भाग्यवश आज हम स्वास्थ्य की पूर्ण आवधारणा से अनजान है। वर्तमान पद्धतियों के सहारे हमें रोगों के कारण का पता तो चल जाता है लेकिन हम स्वस्थ्य रहने के महत्वपूर्ण कारणों को नजर अंदाज करते चले जाते है। हमारे अस्वस्थ रहने का मूल कारण यही है।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना अपने आप में शरीर में किसी प्रकार के रोग होने और शरीर रूपी मशीन के सही ढंग से कार्य करने को शामिल करती है। शरीर और इसके अंगों के बीच कार्यात्मक क्षमता का अभाव व अस्वस्थ होने की स्थिति की तरफ इशारा करती है। लेकिन शारीरिक रूप स स्वस्थ होने के साथ साथ हमारा मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ्य होना भी आवश्यक है। मानसिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह होता है कि हामरा मानसिक रूप से स्वस्थ होता है कि हमारा मानसिक संतुलन ठीक हो और हमारे क्रियाकलापों व आचरण द्वारा किसी भी प्राणी व जीव जंतु को कोई नुकसान न पहुंचे । आधात्मिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह है कि हम उस सर्वशक्तिमान ईश्वर में पूर्ण आस्था रहते हुए अपने आप में आत्मा के मूल गुणों

को समाहित करते हुए अपने जीवन में राम नाम की अवधारणा को शामिल करें। सामाजिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह है कि हमारे सभी सामाजिक सरोकार और संबंध ठीक ठाक हो। अपने सामाजिक कर्तव्यों का पूर्णरूपेण निर्वाह करते हुए हम अपने जीवन को सार्थक बना रहे हों। उपरोक्त बातों को अगर हम अपने जीवन में शामिल करते है तो हम पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा को प्राप्त करने में सफल हो सकते है।

डयूबोस को इस संदर्भ में कहना हे कि स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें रोग असुविधा तथा दर्द आदि अत्यन्त न्यून होते है तथा पर्यावरण के साथ्ज्ञ सतत सामंजस्य बना रहात है जिसके परिणाम स्वरूप सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएं उच्चतम स्तर पर चलती रहती है।

सामान्यतः अगर हमारे शरीर के किसी भी हिस्से में दर्द सूजन, खिचाव और इस प्रकार की अन्य कोई परेशानी न हो तो हम अपने आपको स्वस्थ कह सकते है शरीर शरीर के सभी अंगों को उचित अनुपात में विकसित होकर पूर्णरूपेण क्रियाशील होना भी एक महत्वपूर्ण कारक है। इस सबके साथ कुछ अन्य स्थितियां, जैसे सारी इन्द्रियों का अच्छी तरह कार्य करना, स्वच्छ त्वचा, चमकदार आंखे, काले घने बाल, संतुलित श्वास, भूख प्यास का संतुलित होना, गहरी नीद और शौच आदि क्रिया कलापों का ठीक होना भी उत्तम स्वास्थ्य के लिए जवाबदेह होती है।

स्वास्थ्य की परिभाषा

समस्त शारीरिक परेशानियों और कश्टों के अभाव में स्थिति वाली शरीर, मन और चेतना की अवस्था को स्वास्थ्य कहते है। इस अवस्था में हम अपने सभी शारीरिक और मानसिक कार्यों को समय पर तथा पूरी क्षमता के साथ पूर्ण कर सकते है। इसमें व्यक्ति की आनुवाशिक और वातावरणीय स्थिति के साथ उसकी दिनचर्या का संतुलन पूर्ण गुणवत्ता के साथ होता है।

इस संदर्भ में पहले बतायी गयी डब्ल्यू.एच.ओ. के द्वारा दिये गए पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है।

5.2 मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु

मानव स्वास्थ्य को मानव शरीरों के अंदर अथवा बाहर के वातावरण में नहीं बल्कि मानव के संपूर्ण वातावरण की पृश्ठभूमि में वैज्ञानिक रूप में आंका जा सकता है। मानव के संपूर्ण वातावरण को आमतौर पर भीतरी वातावरण और बाहरी वातावरण में विभाजित किया जा सकता है। मानव का जीवन इन दोनों वातावरणों का ही परिणाम है।

भीतरी वातावरण : यह मानव शरीर के अंदर वाला वातावरण है। इसमें शरीर की सामान्य संरचनाएं और कार्यप्रणाली तथा रोग के दौरान शरीर में जो परिवर्तन होते हैं वे सब सम्मिलित हैं। किसी रोग के ठीक हो जाने के उपरांत भी मानव की अच्छे स्तर

वाली कार्यक्षमता के विकास और उसे बनाए रखने के लिए उसका ध्यान दिया जाना काफी आव श्यक होता है। सकारात्मक अथवा वांछित स्वास्थ्य की आधुनिक संकल्पना यही है।

बाहरी वातावरण - इसमें उन सारे पहलुओं को शामिल किया जा सकता हैं जो मानव शरीर के बाहर हैं और अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए इनका भी उतना ही महत्व है। जितना भीतरी वातावरण का। इसमें शंका की कोई गुंजाइश हीं होती है कि मानव के चारों और का वातावरण हर हमेशा आंतरिक वातावरण को प्रभावित करने के लिए कार्यरत रहता है। बाहरी वातावरण को भौतिक, जैविक तथा सामाजिक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

वैसे तो वातावारण का दायरा काफी व्यापक है लेकिन कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक है जिन पर नियंत्रण रखा जाना काफी आवश्यक है और इन्हीं चीजों का ख्याल रखते हुए कोई भी समाज स्वास्थ्य के इश्टतम स्तर रोग के निम्नतम स्तर और आयु की अधिकतम पराकाश्ठा तक पहुंच सकता है।

भौतिक वातावरण - हवा, पानी और भौतिक वातावरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है। जीवधारी प्राणियों का अस्तित्व हवा के अभाव में तत्क्षण खतरे में पड़ सकता है। शरीर का लगभग 7 0 प्रतिशत अं पानी का होता है और शेष तत्वों की आपूर्ति भोजन द्वारा की जाती है। ये तीन अनिवार्य अवयव मानव के जीवन के लिए अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य के मानव इन तीन आधारभूत अवयवों की गुणवक्ता और मात्रा पर ही निर्भर करते हैं। इसी तरह व्यक्तियों, परिवारों अथवा समुदायों में रोग का स्तर भी इन महत्वपूर्ण पदार्थों के उतार - चढ़ाव पर ही निर्भर करता है।

हमारी आधुनिक जीवन शैली के कारण उत्पन्न हुए भयावह स्थितियों जैसे अत्यधिक प्रदूषण, शोर-शराबा, भागमभाग और इस प्रकार के अन्य भी कई कारकों ने उपरोक्त बताए गए तीनों अवयवों को काफी हद तक प्रदूषित कर लेने के लिए बाध्य है और यह रोगों की उत्पति का एक मूल कारण है। हम सबको पता है कि स्वास्थ्य का स्तर अथवा जीवन की अवधि, उसके लिए ली जाने वाली हवा, पिए जाने वाले पानी, खाए जाने वाले भोजन और उस स्वच्छ वातावरण पर निर्भर करती है। जिसमें मानव जीवनयापन कर रहा है।

सामाजिक वातावरण - समाज, संस्कृति, शिक्षा, सभ्यता, सामुदायिक संगठन, आर्थिक परिस्थितियों आदि ही मानव के सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है। आज रोगों की प्रवृत्ति में सामाजिक वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रहन-सहन, शिक्षा व विकास काक स्तर और सामुदायिक स्वास्थ्य एजेन्सियों आदि के संगठन के रूप में स्वास्थ्य और रोग के स्तर सामाजिक पंरपरा से संगतता रखते हैं। स्वास्थ्य से जुड़े कई पहलू तकनीकी और वैज्ञानिक होने की अपेक्षा अधिकांशतया समाज शास्त्रीय व प्रशासन संबंधी है।

जैविक वातावरण : मनुश्य के चारों और जीवधारियों का संसार ही उसका जैविक वातावरण है। स्वास्थ्य की दृश्टि से इस वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण कारक सूक्ष्मजीव अथवा रोगाणु होता है। सभी संक्रामक रोग रोगाणुओं द्वारा ही जनित होता है। सभी संक्रामक रोग रोगाणुओं द्वारा ही जनित होते है। विकास क्रमों के परिणामस्वरूप ये रोगाणु मानव के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और अपने अस्तित्व के संघर्श में परजीवी के रूप में वृध्दि करते हैं। रोग की प्रघटना को मानव ने मानव जाति और इन सूक्ष्म जीवों के बीच उत्तर जीविता के संघर्श की प्रघटना कहा है।

शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ होना ही प्राकृतिक स्वास्थ्य है। इसकी पहचान हम निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए कर सकते हैं -

1 मानव शरीर के अंदर सभी क्रियाकलाप सामान्य हों।

2 अपने आपको सदा ऊर्जावान और सक्रिय महसूस करते हों।

3 वाणी में मिठास हों।

4 रचनात्मक और सामाजिक कार्यों को करने में अभिरूचि हो।

5चेहरे पर हर हमेशा कान्ति का भाव हो।

6आंखों मेंचमक एवं सत्यता और निर्भीकता का भाव हो।

7 मन हर हमेशा प्रसन्न एवं हृदय सदैव स्वर्गीय आनंद से ओतप्रोत रहता हो।

8 पर्याप्त मीठी और गहरी नींद आती हो।

9 नियत समय पर भोजन लेने की इच्छा हो।

1 0 पूरे दिन कार्य करने के दौरान उत्साह का अनुभव करते हो।

1 1 पेट छाती से कभी भी बड़ा ना हो।

1 2 मादक और उत्तेजक पदार्थों को लेने की बिल्कुल इच्छा न हो।

1 3 बिना थके लगातार कार्य करने की क्षमता हो।

1 4 हर अवस्था में चेहरे पर मुस्कान का भाव हो।

1 5जीवन के प्रति पर्याप्त सकारात्मक दृश्टिकोण हो।

1 6शौच खुलकर और नियमित रूप से आता हो।

1 7 प्रातः जगने पर तन-मन स्फूति और उत्साह से भरा हो।

1 8 अपने को एक सच्चा मानव बनाने का प्रयास करते हुए अन्य सभी मानवों के प्रति आत्मवत व्यवहार हो।

1 9 जीवन में राम नाम की अवधारणा का समावेश किया हो।

2 0 भगवान द्वारा उपहार के रूप में दिए गए इस मानव जीवन को सफल बना रहे हो।

उपरोक्त बिन्दुओं को सुनिश्चित करने के लिए हमारे द्वारा स्वास्थ्य संबंधी निम्नलिखित प्रमुख कारकों की उपस्थिति अनिवार्य है।

सही जल आपूर्ति : पीने के लिए प्रयोग किए जाने वाले जल को सभी हानिकाकर अशुद्धियों से मुक्त होना चाहिए। क्योंकि जल में सबसे खतरनाक रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणु होते है। नदियों, कुएं आदि से प्राप्त होने वाले जल को पहले छानकर फिर क्लोरोनीकृत करते हुए प्रयोग किया जाना चाहिए। पीने वाले पानी को हर हमेशा ढककर रखना चाहिए जो इसे संदूशित होने से बचाता है।

उचित भोजन पर्याप्त मात्रा में - हमें भोजन को हर हमेशा संयत मात्रा में लेना चाहिए और भोजन इस प्रकार का हो जिससे आवश्यक ऊर्जा प्राप्त हो, शरीर की वृद्धि हो, ऊतकों की मरम्मत हो तथा रोगों से प्रतिरक्षा हो। भोजन हर हमेशा प्रदूशण से मुक्त होना चाहिए।

विश्ठा और अन्य मल पदार्थों का स्वास्थ्यकर निपटान : मल पदार्थ से पानी, भोजन और भूमि का बिल्कुल ही संदूशित न होने देना निपटान का सबसे अच्छा तरीका है। इसका सबसे अच्छा उपाय संप्रवाहन या जल वाह प्रणाली का प्रबंध है। आर्थिक कारणों से ऐसा हर जगह किया जाना संभव नहीं है। लेकिन सस्ते और सेवा - निरपेक्ष प्रकार के स्वच्छ शौचालय तो बनाए ही जा सकते हैं।

इसी प्रकार स्वास्थ्योपयोगी वातावरण बनाने के लिए अन्य मल पदार्थों, कचरे, बेकार पानी आदि का स्वास्थ्यकर निपटान भी अत्यन्त आवश्यक है।

अच्छा आवास : यह अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति और रोगों से बचाव दोनों के लिए आवश्यक है। अच्छे घर में संवातन की सुचारू व्यवस्था होनी चाहिए और पूरे मकान में प्राकृतिक प्रकाश के यथेश्ट रूप से आने का प्रबंध हो। इसी तरह रसोई घर और स्नानघर अलग अलग और शौचालय स्वच्छ होने चाहिए।

अंत में यह कहना ज्यादती नहीं होगी कि हवा, पानी, भोजन, और मल पदार्थों के निपटान को दूश्टि में रखते हुए रोगों से बचा व दीर्घ जीवन तथा उत्तम स्वास्थ्य और शारीरिक क्षमता के लिए वातावरण का स्वच्छता का उच्च स्तर नितांत आवश्यक है। उपरोक्त सभी स्थितियों का अभाव ही रोगों के प्रार्दुभाव का कारण होती है।

स्वास्थ्य की मौलिक आवश्यकताएं

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती है -

1 वायु

2 जल

3 आहार

4 सूर्य का प्रकाश

5शारीरिक श्रम, (अवश्यकतानुसार शारीरिक व्यायाम)

6चार प्रकार के आराम

1 शारीरिक

2 मानसिक

3 ऐन्द्रिस

4 आंतरिक

7 गहरी नींद

8 प्रसन्नता (उपयुक्त मानसिक स्थिति)

9 सामान्य आंतरिक गमहित का एक समान होना

1 0 आशावाद

1 1 मनोदृढ़ता

उपरोक्त मौलिक आवश्यकताओं से जीवन शक्ति में वृद्धि होती है तथा सभी कार्य शारीरिक तथा मानसिक बाह्य या आंतरिक, ऐच्छिक या अनैच्छिक, स्वास्थ्यवर्द्धक या स्वास्थ्य नाशक सुचारू रूप से सकारात्मक बन जाते है।

रोग की आवधारणा -

प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों में रोगों के बाहरी कारणों को ढूंढा जाता है। जब हमारे शरीर के अंदर कार्य करने वाली प्रणाली शरीर में इक्ट्ठा होने वाले द्रव के निश्कासन में असमर्थ होती है तो रोग की स्थिति उत्पन्न हाती है। अनुचित अप्राकृतिक जीवन शैली तथा भोगवादी आहार के कारण हमारे शरीर में विषाक्त द्रव्य की मात्रा अधिक हो जाती है। इसी विषाक्त द्रव्य को शरीर को मुक्त करने के लिए शरीर द्वारा जो अतिरिक्त प्रयास किया जाता है यह स्थिति भी रोग को उत्पन्न करती है।

रोग शरीर के कल्याण के लिए प्रकृति द्वारा चलायी जाने वाली एक विशेष प्रक्रिया का ही नाम है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बिना हमारे द्वारा बिना दबाए हुए शरीर की इस अवस्था में मदद करनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के अलावा अन्य सभी चिकित्सा प्रणालियों द्वारा रोगों का अस्तित्व माना जाता है। अन्य सभी विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों में बीमारियों के कुछ लक्षणों को देखते हुए बीमारियों का नाम दिया जाता है। उपचार प्रक्रिया के दौरान आकस्मिक लक्षण दिखने पर रोग का नाम भी बदल जाता है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रोगों को नाम दिया जाना न तो महत्वपूर्ण है और न ही यह उसका निदान है क्योंकि हम लक्षणों के आधार पर रोगों के मूल कारणों का पता नहीं लगा सकते है। अतः हम कह सकते है कि रोगों का उपचार बिना उसके मूल कारणों को जाने बिना अत्यधिक फायदेमंद नहीं है।

वर्तमान में उपयोग की जाने वाली तमाम निदान परीक्षणों की विधियाँ जैसे एण्डोस्कोपी, एक्स रे, अल्ट्रासाउण्ड, एम.आर.आई द्वारा निदान किए जाने पर कभी कभी रोगों का पूर्ण निदान नहीं होता है बल्कि इस दौरान प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न तंरगों के प्रभाव द्वारा शरीर में अन्य बीमारियों के होने की भी आशंका बनी रहती है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में इस प्रकार के किसी भी परीक्षण किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। बल्कि रोगी के द्वारा व्यक्तिगत रूप से खान-पान, रहन-सहन की आदतें तथा शारीरिक प्राण शक्ति एवं अवस्था के बारे में जानना जरूरी होता है। रोगी की जीवन शैली, दिनचर्या इत्यादि द्वारा स्वास्थ्य स्तर की जांच करना ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया जाने वाला वास्तविक निदान है। इस प्रक्रिया के माध्यम से रोगी को महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कर सकता है। इस चिकित्सा प्रणाली के माध्यम से व्यक्तियों को निदान प्रदान करने के साथ उन्हें शिक्षित करने का भी कार्य किया जाता है।

रोग की परिभाषा और अर्थ -

पूर्ण स्वास्थ्य की अनुपस्थिति ही रोग है।

शरीर के अंदर एकत्र हुए विजातीय द्रव को प्रकृति द्वारा शरीर से निश्कासित किया जाने वाला प्रयास ही प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग की स्थिति कहलाती है।

अनुचित और अप्राकृतिक ढंग से लिए जाने आहार विहार द्वारा स्वास्थ्य को खोना ही रोग है।

मानव शरीर की पूर्ण कार्य प्रणाली में होने वाला किसी भी प्रकार के असंतुलन की स्थिति रोग कहलाती है।

जल चिकित्सा के महान प्रवर्तक लुई कुने ने अपनी पुस्तक में **New Science of Healing** रोगों की एकता व उपचार की एकता पर **Unity of Diseases Unity of Treatment** जोर देकर विश्लेशण किया है। डॉक्टर जोजफ ने लिखा **Disease in man for simply the result of decomposition in one form or other** मनुश्य में समस्त रोग एक या दूसरे रूप में सीधे तौर पर गंदगी का फल है।

डॉ. डाइओ लेविस एम.डी. ने **"Weak Lungs"** में लिखा है। **Local disease is an impossibility every disease must be systematic before it can assume any local expansion** स्थानीय रोग असंभावित हैं। प्रत्येक रोग स्थानीय रूप धारण करने के पूर्व संपूर्ण शरीर से अवश्य ही संबंधित रहेगा। शरीर में रोग उत्पन्न होने का कोई ना कोई कारण अवश्य होता है। रोग शब्द रूप धातु से निश्पन्न है, जिसका अर्थ पीड़ा (दुःख) कष्ट आदि से है। इसका विवरण अथर्ववेद में मिलता है। शरीर के अंदर विष (विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना) जिसके लिए यक्ष्म शब्द का उल्लेख किया गया है।

''यक्षमाणां सर्वेशां विषं रिवोचमहम्''

बिना संपूर्ण शरीर के रोग ग्रसित हुए रोग का कोई भी लक्षण (स्थानीय रोग) प्रकट नहीं हो सकता जैसा कि डॉ. डरहन डनलयेन ने **"Philosophy of the Bath"** में कहा है। **The Function of no one organ can be impaired without involving the whole system in the conrequence"** किसी भी एक अवयव की क्रिया संपूर्ण शरीर के खराब हुए बिना दोशपूर्ण नहीं हो सकती। इससे भी रोग की एकता प्रकट होती है। सभी रोग के लक्षण स्थानीय नहीं संपूर्ण शरीर से संबंधित होते है।

कृमि रोग का मुख्य कारण है जो अन्न या जल के माध्यम से प्रविश्ट होकर शरीर को रोग ग्रस्त करता है। (अर्थर्ववेद 5/2 9 /6-6)

रोग का तीसरा कारण है - त्रिदोश (वात, पित्त, और कफ) जब तक शरीर स्वस्थ रहता है इसकी विषमता से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। (ऋग्वेद 1 /3 4 /6)

यदि रोग की परिभाषा पर ध्यान देते हैं तो वह एक ऐसी दशा है जो जीवन को शक्ति, अवधि तथा आनंद इन सभी दृश्टियों से सीमित कर देती है। रोग स्वास्थ्य की दशा से स्खलन है। व्यक्तियों का पारिस्थितिक अथवा प्राकृतिक संतुलन से वंचित होना रोगी दुःखी बनाता है। कई बार ऐसा होता है कि संतुलन की स्थिरता बहुत कम होती है। और निदान करने के साधन या उक्त परिवर्तन को लक्ष्य करने के जो साधन उपलब्ध

होते हैं वे इतने अपर्याप्त होते हैं कि स्वास्थ्य में कमी को किसी रोग विषेष संज्ञा दे पाना असंभव होता है। विशिष्ट रोगों का निदान आमतौर से तभी हो पाता है जब वे मनुश्य के आंतरिक वातावरण में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न करते हैं जिनमें पीड़ा, ज्वर, दुर्बलता इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। ऐसी दशा में स्वास्थ्य को स्खलन बहुत व्यापक होता है और रोग के कारण जो भी हो लेकिन दिलचस्प तथ्य यह है कि बहुत से मामलों में रोग के द्वारा उत्पन्न परिवर्तन लक्षण प्रकट करने के योग्य प्रभावपूर्ण नहीं होते। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि इस प्रकार लक्षणहीन अथवा अतिस्वल्य रोग का सरलता से निदान नहीं हो पाता। आयुर्विज्ञान और विशेष रूप से निरोधक आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक प्रगतियों के फलस्वरूप किसी प्रकार का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के बहुत पहले ही स्वास्थ्य से स्खलन के रूप में अधिकाधिक रोगों का निदान किया जा सकता है।

'रोग' का शाब्दिक अर्थ है आराम अथवा सुख का अभाव, जिससे यह तथ्य महत्वपूर्ण हो जाता है कि स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण अच्छा महसूस करना अथवा वातावरण के साथ पूर्ण संगति की अनुभूति करना है। यह अनुभूति अविश्वसनीय रूप से शरीर क्रिया तंत्रों के कार्य का परिणाम है। ये तंत्र भीतरी वातावरण का गतिविधि तथा कार्यक्षमता को सुरक्षित रखते हैं। बाहर के तत्व जो कि मूलतः शत्रु होते हैं, उनका सामना प्रभावपूर्ण तरीके से जिन संकुचित सीमाओं में आंतरिक समायोजन करने वाले तंत्र शरीर की सभी प्रणालियों के जरिए काम करते रहते हैं, खास तौर पर केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र तथा अंतः स्त्रावी ग्रंथियों द्वारा निःसृत हार्मोनों के जरिए काम करते हैं। जीव के जीवित रहने के लिए उसके शरीर के तापमान को एक संकुचित परिसर के बीच रहना चाहिए और यदि उसे अधिकतम शरीर क्रियात्मक क्षमता के साथ अर्थात् पूर्णतम स्वास्थ्य की अवस्था में रहना हो तो उसके शरीर का तापमान और भी संकुचित परिसर के भीतर रहना चाहिए। इसी प्रकार शरीर के द्रव्यों की अम्लता, हृदय का निकास तथा विभिन्न अंगों में रक्त का प्रवाह, ऑक्सीजन की शरीर के भीतर प्रवेश करने वाली मात्रा तथा कार्बन डॉई ऑक्साइड का बाहर निकलना, आंतों क संचालन तथा शरीर के अन्य कार्यों का एक निश्चित परिसर के भीतर होते रहना आवश्यक है।

उपरोक्त तथ्यों से हम यह जान पाए है कि मनुश्य या कोई भी जीव जिस वातावरण में रहता है वह विरोधी वातावरण होता है। बाहरी वातावरण में ऐसे ढेर सारे प्रभाव मौजूद रहते है जो शरीर के आंतरिक नाजुक संतुलन और एकरूपता को नष्ट करने के लिए तैयार रहते हैं और यही रोगों का मूल कारण होता है । अत्यधिक या निम्न तापमान, उचित पोशक तत्वों की कमी और ऊर्जा प्रदान करने वाले ऐसे पदार्थों का अभाव जो शरीर के सामान्य क्रियाकलापों के लिए आवश्यक होते है, भौतिक और रासायनिक घटकों को ऐसा संयोग जो शरीर के लिए हानिकारक है, परजीवी सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म जीवाणुओं का संसार जो जीवित प्राणियों पर आक्रमण करते रहते हैं और अंत में अनिवार्य रूप से घटने वाली वह जैविक घटना जिसके अंतर्गत शरीर में व्ययजनन तथा वयोवृद्धि - ये सभी शरीर के संतुलन को बिगाड़ने के लिए बहुत हद तक उत्तरदायी होते हैं।

रोगी शरीर की पहचान के बिन्दु -

1 शरीर में शारीरिक क्रियाओं का असामान्य होना।

2 मीठी और गहरे नींद का न आना।

3 शौच क्रिया के दौरान मल का पतला या सख्त होना

4 भूख का अभाव

5सिरदर्द का होना

6जल्दी क्रोध का आना

7 किसी भी कार्य में अपने मन को स्थिर न कर पाना।

8 हर हमेशा आलस्य के भाव को महसूस करना।

9 किसी भी कार्य के दौरान जल्दी ही थकान को महसूस करना

1 0 हर हमेशा चिड़चिडेपन के स्वभाव को महसूस करना

1 1 हर हमेशा मसालेदार और चिकनाईवाले खाने की इच्छा होना

1 2 भोजन के उपरान्त भारीपन और भांति भांति की तकलीफें होना।

1 3 पेट का आकार छाती से बडा होना

1 4 शरीर और त्वचा से दुर्गन्ध आना।

1 5सिर में बालों या गंजापन रोगी शरीर का परिचालक है।

1 6वर्तमान समय में प्रचलित तरह तरह के मादक और नशीली दवाओं के सेवन का आदि होना।

1 7 शरीर के विभिन्न जगहों पर सूजन का होना

1 8 चहरे पर धब्बों, आखों के नीचे काले धब्बे इत्यादि का होना।

1 9 जीवन में सकारात्मकता का अभाव और नकारात्मक विचारों का प्रबल होना।

2 0 अन्य मनुश्यों, प्राणियों और प्रकृति के प्रति विध्वसात्मक कार्यों को किए जाने की प्रवृति रखना।

रोग के प्रकार -

1 सहजन्य रोग - माता पिता के शुक्र दोश के द्वारा रोगों की उत्पत्ति पायी जाती है जिसमें मुख्य रूप से बाबासीर, प्रमेह अथवा मधुमेह व कुष्ठ रोग इत्यादि पिता के अथवा माता के शुक्र में उत्पन्न हुए दोश के कारण पनपते हैं।

2 गर्भजन्य रोग - रोग के दौरान माता के द्वारा लिया गया मिथ्या आहार इसका मूल कारण होत है जिससे शिशु में कूबरापन या अपंगता के आने की संभावना होती है।

3 जातजन्म रोग - जन्म होने से पहले जब उपचार दिया जाता है उससे प्रभावित होकर पैदा होने वाले रोग को जातजन्य रोग कहते है।

4 पीड़ाजन्य रोग - चोट आदि से पैदा होने वाले रोग अपंगता, हड्डी का टूटना उसके द्वारा उत्पन्न अपंगता, क्रोध, शोक, भय व मानसिक रोग होते है।

5कालजन्य रोग - इसमें ठंड (सर्दी) आदि के प्रभाव से अथवा अन्य दोश के प्रभाव से शरीर की रक्षा न होने पर उत्पन्न रोग

6प्रभावजन्य रोग - गुरू या देवता की आज्ञा का उल्लंघन करने से उनके साप से उत्पन्न रोग।

7 स्वभावजन्य रोग - इसमें भूख, प्यास, ज्वर इत्यादि रोग स्वभावजन्य रोग होते है।

सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पश्ट हो गया कि केवल रोग की अनुपस्थिति को ही स्वास्थ्य जान लेना कभी भी उचित नहीं है। स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु कुछ आचार-विचार नियम, सिद्धान्त व आदतें तथा जीवन शैली का उचित रूप से पालन करते हुए उनकी मौलिक आवश्यकताओं को भी भली भांति जान कर जीवन का अंग बना लेना आवश्यक है। अन्यथा हमें पैत्रिक, दैनिक व भौतिक रूप से आने वाले रोगों को भुगतने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इन रोगों के आने के बाद किस प्रकार के संयम व आदतों को अपना कर इनके आने वाले भयंकर परिणाम शरीर पर भुगतने से बचा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दुओं की भी चर्चा की गई जिनसे हमें ज्ञान हो जाता है कि हम रोग ग्रस्त हो चुके हैं। यह रोगग्रस्त अवस्था किस प्रकार हमारे शरीर में प्रवेश करती है तथा प्रवेश करने के पश्चात् हमारे शरीर को आतंकित कर उसे भयंकर पीडा प्रदान करता है।

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करें।

2 स्वास्थ्य के लक्षण एवं आवश्यक बिन्दुओं की व्याख्या करें।

3 रोग से आपका क्या अभिप्राय है? इसके लक्षणों को समझाइए।

4 स्वास्थ्य एवं रोग का आपस में क्या संबंध है? रोग के कारण का वर्णन करें।

5.1 0 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - राकेश जिन्दल

2 प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र- आचार्य शेशाद्रि स्वामिनाथन्

3 वृहद् प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

इकाई - 6:

शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में प्राकृतिक चिकित्सा का योगदान

इकाई संरचना

प्रथम पत्र

इकाई संख्या -6

शरीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य में प्राकृतिक चिकित्सा का योगदान

6.0 प्रस्तावना :-

स्वास्थ्य जीवन का मौलिक जन्मसिद्ध ही नहीं, स्वरूप सिद्ध अधिकार है। "**Health is a fundamental human right hut it has to be own by birth.**" आरोग्य, निरामय, निरोग, "**health, heal**" आदि पर्यायवाची शब्द है। फिर भी स्वास्थ्य के टक्कर का विश्व के किसी भी शब्द कोष में महान शब्द नहीं है। "स्वास्थ्य" शब्द में जीवन का विराट अर्थ सन्निहित है।

शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य में प्राकृतिक चिकित्सा का योगदान

6.0 प्रस्तावना :-

स्वास्थ्य जीवन का मौलिक जन्मसिद्ध ही नहीं, स्वरूप सिद्ध अधिकार है। **"Health is a fundamental human right hut it has to be own by birth."** आरोग्य, निरामय, निरोग, **"health, heal"** आदि पर्यायवाची शब्द है। फिर भी स्वास्थ्य के टक्कर का विश्व के किसी भी शब्द कोष में महान शब्द नहीं है। "स्वास्थ्य" शब्द में जीवन का विराट अर्थ सन्निहित है। स्वास्मिन तिष्ठति स्वस्थः अर्थात स्व में स्थित हो गया है वह स्वस्थ है भारती मनीषा स्वास्थ्य को व्यापक अर्थ में प्रयुक्त करती है स्वास्थ्य मानव जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण आन्तरिक घटना है यह परम सम्पदा भौतिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य का प्रतिबिम्ब है आन्तरिक स्वास्थ्य का भाव भंगिमा अन्तरत्तम के प्रफुलता का आइना है अन्तरत्तम के उत्सव और उल्लास का सुगन्ध है अन्तर मन के उत्साह एवं सुवास का भीतर के तल पर जब कोई स्व में स्थित में होता है उसका शरीर पर स्वास्थ्य के रूप में होता है यह एक अत्यंत विरल विराट अद्वितीय घटना है बाहर का परिणाम जरूरी नही है कि भीतर केन्द्र में जाए लेकिन केन्द्र पर जो घटता है उसकी तंरगे परिधि पर आ ही जाती है केन्द्र मूल है मौलिक है यही कारण है प्राकृतिक चिकित्सा मूल को आधार को पकडती है जो शाश्वत है अमृत है भीतर छिपा है यह है समग्र स्वास्थ्य है।

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा शरीर मन एवं केन्द्र में संचित विकार निकाल बाहर करने पर कूडा करकट मुक्त जीवन सम्यक स्वस्थ होने लगता है जीवन सम्यक सम्बुद्ध एवं सरस हो जाता है स्व मे स्थित होते ही स्वास्थ्य का उद्घाटन होता है उस स्थिति में स्वास्थ्य का परम स्वभाव शान्ति समस्वरता सम्यकत्व सन्तुलन संगीत लय ताल रिदम, सुख सौजन्यता समताशील सहमध्यता सहनशीलता संवेदनशीलता मुदिता मैत्री करूणा कल्याण भाव मंगल भाव निष्कपटता प्रेम त्याग सेवा आदि दिव्य पुष्प गुण प्रस्फुटित हो कर निकल जाते है जिसकी अनुभूति अहसास लहर तरंग एवं मस्ति की तरह हमें घेर लेती है जीवन आनंनदित एवं आच्छादित होता है।

स्वास्थ्य के संसार में निसर्गोपचार एक बहुत ही बडी क्रान्ति है क्रान्ति ही नहीं महाक्रान्ति है। जीवन के सृजनात्मक एवं स्वस्थ रूपान्तरण का महाविज्ञान है। प्राकृतिक चिकित्सा होश एवं जागरण के साथ जीवन जीने की अद्वितीय कला है। प्राकृतिक चिकित्सा जीवन के नित्यनूतन नवनिर्माण के रचानात्मक दर्शन का नाम है प्राकृतिक चिकित्सा। स्वास्थ्य औषधि पर निर्भर नहीं करता है। स्वास्थ्य कुदरत के कानून का पालन करने से मिलता है। नैसर्गिक का नियमों का पालन करने से तन मन एवं आत्मा में सन्निहित स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता जाग जाती है। क्योंकि जीवन के अस्तित्व का स्वाभाव ही स्वास्थ्य है। यह प्राकृतिक चिकित्सा की महाउद्घोषणा है।

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से स्वास्थ्य के शाब्दिक अर्थ से हम रू-ब-रू हुए अब इसके अन्य पक्षों को भी जानेंगे।

विश्व स्वस्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य रोगों एवं निर्बलता से मुक्ति का नाम ही स्वास्थ्य नही है बल्कि व्यक्ति की शारीरिक मानसिक पारिवारिक एक सामाजिक स्तर पर

सम्पूर्ण आरोग्य एवं कल्याण की स्थिति ही स्वास्थ्य है **"Health is a state if complete physical, mental and social well-being and not ncerely the absence if disease or infirmit"** स्वास्थ्य के लिए सामाजिक आर्थिक दृष्टि से सक्रिय होना आवश्यक है। यदि किसी प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या, विकलांगता, अशक्त, अक्षम, असुविधाजनक स्थिति में होते हुए भी सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सक्रिय एवं सशक्त है तो उस स्वास्थ्य के दायरे में ही माना जा सकेगा, हेल्थ एव्यनॉमिक्स (**Health economics**) के अनुसार **A person should be regarded as healthy provided he can remain socially and economically active, healthy provided he can remain socially and economically active, even though he may have to suffer some health disability or discomfort .**

वास्तव में शरीर के समस्त संस्थान तथा मन सामान्यवस्था में सदा सक्रिय रहते है इस स्थिति को स्वास्थ्य कहते है। टेबर के साइक्लोपेडिक मेडिकल डिक्शनरी के अनुसार **"Health wholeness a condition in which all functions of the body and mind are normally active."**

प्रसिद्ध विश्वकोश वेबस्टर कॉलिजिएट डिक्शनरी के अनुसार शारीरिक रोग, दर्द या सूजन के मुक्त शरीर मन तथा आत्मा के मध्य संतुलन, कल्याण एवं हितकारी स्थिति स्वास्थ्य कहलाता है **"The state of being hale and sound in body. Nind or soul especially from physical disease or pain."**

वास्तव में स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं अनुभूति होती है। बीमारी की परिभाषा एवं व्याख्या होती है स्वास्थ्य की व्याख्या नहीं हो सकती है। आरोग्य अव्याख्य है। यह एक अनुभूति एवं एहसास हैं। यही कारण है कि कई विद्वानों ने उपरोक्त स्वास्थ्य की व्याख्या पर प्रश्न भी उठाते है। विख्यात **"Taber 's cyclopedic medical dictionary "** के अनुसार विश्व स्वास्थ्य संगठन के परिभाषा की उपयोगिता को एक सीमा तक ही सही माना जा सकता है। इस वृहद 2 4 0 3 पृष्ठ के विश्व कोष के सम्पादक तथा हार्वार्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के **Clayton L Thomas M. D. M. P. H.** के अनुसार **"This definition is of limited usefulness when evoluting and individual and when one asks who determines well being, the health professional or the individual many persons enjoy a state of well-being even though they, might be classed as unhealthy**

by others" अर्थात स्वास्थ्य की उपरोक्त व्याख्या की उपयोगिता एक हद तक ही सीमित है क्योंकि किसी व्यक्ति की स्वास्थ्य का मूल्यांकन कौन करेगा। क्या उतरा मूल्यांकरण व्यवसायी चिकित्सक करेगा या वह स्वयं करेगा। प्रायः देखने में आता है क्लिनिकल या ऑब्जेक्टिव दृष्टि से सारी जांच सामान्य एवं सहीं आने पर भी रोगी रोग की शिकार करता है वह दुःखी एवं पीडित है क्या हम उसे स्वस्थ मानेंगे। ठीक इस विपटित कइ ऐसे रोगी भी आते है जिनका क्लिनिकल एवं आब्जेक्टिव दृष्टि से सारी जांच असामान्य होने के बावजूद भी रोगाी अपने को स्वस्थ मानता है क्या उसे स्वस्थ कहेंगे। कइ लोग दुसरों की तुलना में कुस्वस्थ अस्वस्थ होते हुए भी अपने जीवन का भरपूर आनन्द लेते है निरामय, निरापद आनन्द एवं मंगलमय खुशी पूर्वक सुखमय जीवन जीते है क्या उन्हें हम स्वस्थ कहेंगे ? अतः स्वास्थ्य अनुभूति एवं विभूति है इसकी कोइ भाषा परिभाषा एवं व्याख्या नहीं है।

<u>6.0 1 उद्देश्य</u> :-

इन सबका समाधान प्राकृतिक चिकित्सा में मिल जाता है भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं सभ्यता का जिस प्रकार विकास हुआ है और उस विकास क्रम में प्राकृतिक चिकित्सा का उद्भव हुआ है उसका मुख्य उद्देश्य -

(1) व्यक्ति परिवार एवं समाज के स्वास्थ्य का रक्षा करना है। आम व्यक्ति को स्वास्थ्य संरक्षण स्वास्थ्य सम्वर्द्धन एवं रोग निवारण प्रशिक्षण द्वारा स्वस्थ नागरिक का निर्माण करके राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं चरित्र का निर्माण करना है।

(2) स्वास्थ्य का सम्वर्द्धन (**Promotion of health : to have positive health**)

(3) प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं और प्रविधियों द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण (**Proctection of health by specific method and aspects**)

(4) रोग होने के पहले ही सम्यक आहार विहार विचार एवं व्यवहार परिवर्तन के द्वारा शारीरिक मानसिक एवं आधयात्मिक स्वास्थ्य का संरक्षण, सम्वर्द्धन करना।

(5) बीमार होने पर शीघ्र निदान करके निसर्गोपचार द्वारा समग्र स्वास्थ्य प्रदान करना।

(6) अशक्तता एवं विकलांगता एवं रोगी की असुविधा जनक स्थिति से रक्षा करना (**Prevention of further disability and spread**)

(7) पुनरस्वास्थ्य प्राप्त व्यक्ति को समाज में पुनरस्थापित करके उसे परिवार एवं समाज के लिए ज्यादा उपयोगी एवं प्रेरणा स्त्रोत बनाना (**Putting the relieved**

recovered or cured person back in to society as a useful member to the extent possible rehabilitation)

(8) स्वस्थ व्यक्ति को प्रत्येक तलयानि शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर और अधिक स्वस्थ साथ ही रोगों की रोगथाम तथा रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करके समाज एवं राष्ट्र के हित में ज्यादा से ज्यादा उपयोगी बनाना।

(9) शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य सही अर्थों में प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही संभव है इसके लिए ग्रामिण ब्लॉक जिला एवं राज्य स्तर पर ऐसे समुदाय, केन्द्र एवं संस्थान विकसित करना जहां सर्वांगीन स्वस्थ होने की कला एवं विज्ञान का व्यावहारिक प्रशिक्षण किया जा सके।

<u>6.2 प्राकृतिक चिकित्सा शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अन्र्तसम्बन्ध</u> :-

भारतीय मनीषियों ने प्रारम्भ से ही प्राकृतिक चिकित्सा एवं विज्ञान को प्राथमिक महत्व दिया है। स्वास्थ्य को उन्होने धर्म माना है, इसलिए प्रत्येक धर्म कर्म काण्ड के पीछे आरोग्य वानभवः दीर्धायुभवः का महान भाव व लक्ष्य छिपा हुआ है। भारतीय मनीषा को निम्न समीकरण से समझा जा सकता है

धर्म + विज्ञान = जीवन का उच्चतम विकास

धर्म - विज्ञान = अंधश्रद्धा

विज्ञान - धर्म = विनाश

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सभी प्रकार के संस्कार, प्रार्थना, साधना, उपवास, उपसना, आराध्य, पर्व, त्योहार, पूजा, जप, तप एवं कर्मकांड का आध्य ही आरोग्य रहा है। आरोग्य साधन के नियम को भी आध्यात्मिक आचरण का अंग बनाकर जीवन के विकास के अनोखे एवं अद्वितीय हमारे पुर्वजों ने किये है। ऐसे अनेक उदाहरण है। चाहे नवरात्रि की दुर्गा पूजा हो या छठ व्रत हो अथवा अन्य कोई त्योहार या व्रत सभी स्वास्थ्य संरक्षण एवं सम्वर्द्धन के अद्भूत वैद्धान्तिक प्रयोग है। नवरात्रि को ही लें। नवरात्रि में मां दुर्गा की स्थापना कर आरधना एंव साधना का है। मां दुर्गा स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शौर्य, साहस एवं शक्ति की देवी है। स्थापना करते समय जौ को बोते है इसके पीछे आरोग्य विज्ञान की गहरा चिन्तन है प्रायः नवरात्रि संक्रमण काल में आता है यानि जब गर्मी बरसात जा रही होती है सर्दी शिशिर ऋतु आ रही होती है। उसी प्रकार सरदी जा रही होती है तथा ग्रीष्म ऋतु का आगमन प्रारम्भ हो गया होता है। इन संक्रमण काल में नाना प्रकार के रोगाणु कीटाणु वायरस फंगस जन्य बीमारियां फैलती है। रोग से लडने की ताकत कमजोर हो जाती है। इन बीमारियां रोगाणुओं से जुझने एवं लडने के लिए ही शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता बढाने के लिए मां दुर्गा की स्थापना आराधना की व्यवस्था हमारे पूर्वजो ने की है। स्वास्थ्य एवं शौर्य की देवी मां दुर्गा सिंह पर आरूढ है और महिषासुर

को मार रही है। सिंह पराक्रम का तथा महि शासुरादि राक्षस बैक्टीरिया वायरस इत्यादि रोगाणु के प्रतीक है आरोग्यजन्य है।

मां दुर्गा स्थापना के समय जौ को बोते है। जौ को ही सेहत की जननी मां का अमृत तुल्य प्रसाद है नवरात्रि प्रारम्भ होने के नौ दिन पूर्व ही नौ गमले या क्यारियों में प्रतिदिन जौ को बोएं ताकि प्रथम नवरात्रि के दिन से जौ को पत्ते का रस 3 -3 घंटे के अंतराजलया 3 5.3 5 मिली. प्रसाद के रूप में लें। जौ का रस अमृत तुल्य रसायनों का सम्मिश्रण है जो हमारी रोग प्रतिरोधक एवं वातावरण अनुकूलन क्षमता को विकसित करके आरोग्य का सम्वर्द्धन करते हुए समस्त रोगों से मुक्त दीर्घायु प्रदान करता है। मां दुर्गा की अमृतमयी प्रसाद पर हिन्दुस्तान के वैज्ञानिकों नहीं अमेरिका, जापान, रूस इत्यादि देशों के वैज्ञानिकों ने रिसर्च कर इस नतीजे पर पहुंचे है। कि इस घास के रस में न्यूट्रिस नल ग्रोथ स्टीमलेटिंग फैक्टर (NGSF) पाया जाता है ज्वारे क रस में एण्टेरिया पिट्यूटरी ग्रंथि की संक्रियता बढाने से प्रोलैक्टिवदा में तथा ह्यूमेने ग्रोथ हार्मोन (एच. जी. एच.) का स्वरूप बन जाता है जिससे बच्चों का विकास एवं सामान्य स्वास्थ्य में कमाल का सुधार होता है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। इसको मूल पत्रों में मौजूद ग्रास ग्रोथ जूस फैक्टर शारीरिक मानसिक दिमागी एवं बौद्धिक विकास में अति उपयोगी है इसी प्रकार का फैक्टर यकृत एवं यीस्ट में पाया जाता है। जौ के पत्ते का रस को ग्रीन मैग्मा कहते है। इससे प्रतिरक्षी सैनिक ल्यूकोसाइट तथा टो किलर सेल्स मे वृद्धि होती हैं। जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। जौ के पत्ते के रस में पी-4 डी-1 सी-4 डी नामक खास फ्रैक्शन होता है जो क्षतिग्रस्त कोशिकाओं तथा उनको को कम समय में मरम्मत करने तक पुनः निर्माण करने के दर को बढा देता है। खास करके प्रदुषण धूम्रपान तथा फ्री रेडिकटल्स के कारण क्षतिग्रस्त हुए कोशिकाओ के डी. एन. ए. के शानदार तरीके से मरम्मत करता है। पी4 डी, प्रजनन कोशिकाओं भिती सेल्स में मौजूद एन्जाइम को सक्रिय करके कोशिकाओं के विभाजकता एंव सक्रियता को यौवनावस्था की तरह लौटा देता है। पी4 डी गैस्ट्रिव तथा अल्सर के लिए रामबाण है।

ग्रीन मैम्मा में मौजूद शक्तिशाली प्रभावशाली 2 -0 - (Glycosyl iso vitexin isoflovonoid) कैंसरकारी तत्व ग्लाइओवर (Glyoxal) तथा अन्य फ्रीरेडिकल्स के दुष्प्रभाव को नष्ट करके कैंसर से रक्षा करता है। यह एण्टी हिपेटोटॉक्सि है। तथा एण्टी इन्फामेटरी का काम करता है। इसका इस इनविट्रो तथा इनविवो दो-के कैंसर मे अत्यन्त प्रभावशाली है। प्रोस्टट तथा अन्य कैंसर में उपयोग 2 -0 -GIV सूर्य के खतरनाक किरणों के दुष्प्रभाव एथेरो स्क्लेरोसिक झूर्रिया, झांइया, एक्जिमा आदि 1 50 रोगों से मुक्त करके स्वास्थ्य प्रदान करने मे भरपूर सहायता करता है।

उसी प्रकार भारतीय परम्परा एवं संस्कृति का कार्तिक शुक्ल पक्ष षष्ठी को मनाये जाने वाला महत्वपूर्व हो या मकर संक्रान्ति मेढ सूर्योपसना अनुष्ठान एवं सूर्य स्नान से जुडा

हुआ पडे पर्व हैं। क्योंकि ठण्ड के दिनों मे सूर्य कर्क रेखा (Tropic of cancer) से गुजरता है। इसलिए किरणें चमती नहीं है सुहाती है दिन छोटे तथा रातें लम्बी होती है। 1 4 जनक से सूर्य मकर रेखा को लांघता है इसलिए इसे मकर सक्रान्ति कहते है। अतः सूर्य किरणें पृथ्वी सीधी पडनी शुरू हो जाती हैं जिससे उसकी किरणें चुभन वाली होती है। रात भी छोटी नया दिन बडे होने लगते है। भूमध्य या विषवद् रेखा के आस पास रहने वाले लोगों का सूर्य प्रकाश पर्याप्त मात्रा में बराबर मिलता है। ठण्ड के दिनों में कुछ पाश्चात्य देशों मे सूर्य की किरण कम होने से उदासी एवं डिप्रेशन के रोगियों की संख्या बढ जाती है।

सूर्य समस्त प्राणियों एवं वनस्पतियों का जीवन आधार प्राण वायु ऑक्सीजन तथा वनस्पतियों के लिए आहार का आधार है। सूर्योदय होते ही समस्त वनस्पति में मौजूद हरियाली (क्लोरोफिल तथा क्लोरोप्लास्ट) सूर्य की किरणों को ग्रहण कर अपने लिए भोजन एवं प्राणियों के लिए ऑक्सीजन निर्माण कर प्रदान करते है। जीवन के आयामी (सूर्य - वनस्पति - प्राणी) सह अस्तित्व का यह सर्वोत्तम उदाहरण है जब यही सूर्य की किरणें मनुष्य पर पडती है तो त्वचा के ठीक नीचे मौजूद न-डिहाइड्रोक्लोस्टेराल सूर्य किरणों को खींच कर कोले-कैल्सिफेरॉल (विटामिन डी3) का निर्माण करता है। कोले कैल्सिफेरॉल हड्डियों को मजबूत करता है। महिलाओं में अण्डाणु एवं पुरूषों में शुक्राणु को शक्तिशाली एवं जांबाज बनाता है। पुरूष तथा स्त्री हार्मोन को सक्रिय करके नपुंसकता एव काम शैथिल्य को दूर करता है। सूर्य स्नान द्वारा सूर्योपसना करने वालों को कर्ण जैसा धीर, वीर, दानी तेजस्वी संतान पैदा होती है। सूर्य स्नान ताजीवन हृदय रोग, रक्तचाप, ऑस्टियों पोरोसिस, कोलन रेक्टल कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर, ब्रेस्ट, ओवरी तथा यूटरस कैंसर से रक्षा करता है। रक्त वाहिनियों के अन्दर केस्ट एण्डोथेलियम में मौजूद निष्क्रिय नाइट्रिक ऑक्साइड सिंथेज एन्जाइम की सक्रियता को बढा कर रक्त वाहिनियों को क्षतिग्रस्त होने से बचाता है रक्त वाहिनियों को अन्दर से चिकना समतल बनाकर तथा उन्हें विस्फरित करके रक्त प्रवाह को शानदार रखता है जिससे रक्तचाप एवं दिल की बीमारी से रक्षा होती है। इस प्रकार सूर्य उपासना तथा सूर्य स्नान जैव रासायनिक प्रक्रिया को नियंत्रित नियमित एवं नियोजित करके बीमारियों के रोकथाम तथा उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

छठ पर्व से सूर्योपासना द्वारा अनुष्ठान का प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक से डेढ घंटा तक सूर्य स्नान लें पुनः 1 4 जनवरी से पृथ्वी की गति बदलने से सूर्य स्नान की अवधि कम करते हुए ग्रीष्म ऋतु प्रातः काल ही सूर्य स्नान ही लें। 2 1 मार्च तथा 2 3 सितम्बर को रात दिन बराबर होते है। तथा 2 1 जून सबसे बडा दिन तथा 2 2 दिसम्बर सबसे छोटा दिन होता है। छठ पर्व का अनुष्ठान में सूर्य का अर्ध्य चढाया जाता है। जल चढाते समय जलसीकर पुंज का निर्माण होता है जो हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरण ए तथा बी का फिल्टर कर के स्वास्थ्यप्रद किरणें शरीर पर पडती है।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय संस्कृति की समस्त धार्मिक प्रक्रियायें निसर्गोविचार आरोग्य विज्ञान आधारित है जिन्हें प्रयोगशाला की कसौटी पर कसने पर अशरक्षः

प्रमाणित होती है। सूर्य की किरणें पिनियल ग्रंथी को सक्रिय करके जीवन में उत्साह आनन्द उल्लास एवं कर्म योग में प्रवृत्त करने वाला हैप्पी हार्मोन सेरोटोलिन के स्त्राव को बहाकर चिन्ता तनाव उदासी एवं अवसाद को दूर करता है। सूर्य दिमाग के सुप्राचिास्मेटिक न्यूक्लियस को सक्रिय करके शरीर के मेटाबॉलिज्म को उन्नत करता है। शरीर के जैविक घडी (बायोलॉजिकल एवं सरकेडियन क्लॉक) को नियन्त्रित करता है। जिससे भोजन का पाचन, अवशोशण एवं सात्म्य की क्रिया सुसंचालित होती है दिन में हमारा सारा संस्थान सूर्य के कारण ही सक्रिय रहता है और रात को सुस्त हो जाता है अतः रात्रि को 9 बजे के बाद खाना खाने शरीर की मेटा बॉलिज्म अस्त व्यस्त होकर मोटापा, मधुमेह, आर्थराई दिल तथा मैटाबोलिक सिन्ड्रोम बीमारियों होती है।

6.2 .2 – प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य सुरक्षा के साथ रोगों की रोकथाम :-

हमारी इन समस्त परम्पराओं का एक ही लक्ष्य रहा है स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा सम्वर्द्धन करना तथा रोगी तथा रोग होने के पहले व्यक्ति के विकार को निकाल बाहर करके स्वास्थ्य प्रदान करना रहा है ”स्वस्थ्ज्ञ स्वास्थ्य रक्षणमातुरस्य विकारप्रगमनं च।“

आज आदमी की तन तथा मन की स्थिति यह है कि बीमारी होने के बाद वह चेतता है यह कहना भी गलत है वह फिर भी चेतता नहीं है। डाक्टर वैद्य, हकीम, के पास जाना है दवा इन्जेक्शन लेकर रोग को दबा देता है। काम चलाने लायक हो जाता है। थोडी राहत मिलना शुरू होती है। किन्तु कुछ दिनों के बाद ही राहत शामत बन कर शरीर पर टूट पडती है। इसी मनोवृति की आम प्रवृति के कारण लोगों के लिए स्वास्थ्य एक जटिल समस्या का रूप धारण करती जा रही है। आम आदमी रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनीशक्ति इतनी दीन हीन कमजोर निर्बल एवं असमर्थ होती जा रही है। कि लोग मामूली काम से बीमार हो रहे है। चुस्ती एवं तंदुरस्ती के बदले आलस्य थकान बीमारी मामूली हालत बन गयी है। कभी जुकाम तो कभी खांसी व ज्चर तो कभी सर का दर्द आज तो कभी दस्त या हर हमेशा बीमार रहते-रहते बीमारी हमारी स्वाभाविक स्थिति हो गयी है जैसे हम बीमार होने के लिए ही पैदा हुए है।

जुकाम हो गया तो सोचते है कि ठण्ड लग गया ठण्ड पानी से नहा लिय इसलिए खांसी हो गयी गर्मी ज्यादा भी इसलिए ज्चर हो गया बरसात का मौसम है इसलिए फोडा फुंसी निकल आया है यानि बीमार होने पर कभी भी हम अपने को दोषी एवं करता नहीं समझते है सारा दोष मौसम कीटाणु भाग्य या भगवान के मथ्थे मढ देते है। मिथ्या रोप दुसरा पर थोपने में हम माहिर है। लेकिन ध्यान रखें कि हर घटना के पीछे कारण एवं कार्य का सम्बन्ध होता है। एक ही मौसम, एक ही भोजन, एक ही वातावरण, मे कुछ लोग बीमार होते है कुछ लोग नहीं होते है कारण एवं कार्य का सम्बन्ध समझे बिना स्वस्थ रहना मुश्किल हैं जिस प्रकार जैसे-जैसे ज्ञान एवं विज्ञान का प्रचार एवं प्रसार होता है वैसे-वैसे भूत प्रेतादि कुछ रोगों के कारण होते है यह भ्रम मिटता जा रहा है। जहां अज्ञानता है वहां अभी भी बहुत सारे रोगों का कारण भूत प्रेतादि बुरी हवा एवं आत्मा को रोग का कारण मानते है। इसी प्रकार जैसे-जैसे प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार-प्रसार

होगा रोग के मूल कारण आहार विहार विचार एवं व्यवहार में आमूल चूल सुधार होगा तभी लोग सही अर्थों में तंदुरूस्ती को अनुभव कर सकेंगे। अभी तो लोगों ने बीमारी को ही तंदुरूस्ती समझ लिया है।

आरोग्य को समझने एवं अनुभव के लिए स्वयं को जिम्मेदारी एवं उत्तरदायीत्व लेना होगा, रोग एवं निरोग का कारण कोइ दुसरा हो ही नहीं सकता है। हम पेट को पेट न समझ कर उसे ठूस ठूस कर ज्यादा खाये, देर से पचने वाली चीजें हलवा, मठरी, पराठा पुरी आदि खांए।

6.3 प्राकृतिक चिकित्सा एवं शारीरिक स्वास्थ्य :-

प्राकृतिक चिकित्सा में किसी प्रकार की कोइ औषधि नहीं दी जाती है। जिन पंचमहाभूतों से शरीर का सृजन हुआ है। उन्हीं पंचमहाभूतों का रचनात्मक प्रयोग करके शरीर का स्वास्थ्य प्रदान किया जाता है। बाहरी रासायनिक कृत्रिम संश्लेषित तत्वों का प्रयोग नहीं करने से शरीर की कुदरती संरचना एवं शारीरिक क्रिया विज्ञान के अन्दर किसी प्रकार की विकृति पैदा नहीं होती है। वास्तव में हमारी शरीर प्रकृति की प्रयोगशाला में सृजित हुआ है अतः शरीर के लिए वहीं चीजें स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण में उपयोगी है जो चीजें प्राकृतिक है। जितनी भी दवाइयां या इंजेक्शन है उनसे स्वास्थ्य तो मिलता नहीं है रोग ठीक होने के भ्रम में उनके दुष्प्रभाव से होने वाले अनेक रोग के चंगुल मे व्यक्ति फंस जाता है शरीर दर्द, सिर दर्द ज्वर आदि अनेक रोगों यानि बात बेबात, पैरासिटामॉल दवा का प्रयोग होता है इस लिए किसी डाक्टर के परामर्श लेने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती है। क्यों कि लोग जानते है कि डॉक्टर भी यही तथा ऐसे ही कोई दवा लिए फिर डॉक्टर के लिए फिर डॉक्टर के फीस के रूप में पैसा क्यों खर्च करें।

पैरासिटामॉल सर्वाधिक निरापद औषधि समझी एंव मानी जाने के बावजूद भी यह इतना खतरनाक है कि इसके दुष्प्रभाव से विश्व में लाखों लोग लीवर के क्षतिग्रस्त होने से लेकर लीवर सिरोरिस एवं लीवर कैंसर जैसे मारक रोगों से जूझ रहे है कई लोग अपनी जान गंवा चूके है। दोडती भागती आपा धापी की बदहवास जिन्दगी में लोग जल्दी स्वास्थ्य पाने की लालच में लोग अनाप-शनाप दवाइयां खाकर रोग को और बढा रहे है। सेल्फ मेडिकेशन फितरत एवं फैशन बन उन अभागे रोगियों का इन्तजार जिन पर इन दवाइयों का लाखों डाक्टरों को रहता है जिनिपिंग एवं रोडेन्ट आदि मान कर अन्धाधुन्ध प्रयोग दिया जाता है। इन सबकी सच्चाइ को उजागर किया है कॉरपोरेट क्राइम इन द फॉर्म स्युटिकल इण्डस्ट्री लिमिट्रस मेडिसिन बिटर पिल्स तथा थैलिडोमाइड एण्ड द पाव आफ ड्रग कम्पनीज आदि दर्जनों पुस्तकों ने।

आम रोगों में आम लोगों द्वारा आरोग्य उपलब्धि हेतु आम औषधियां प्रयोग लाइ जाती है। उनके भी बडे खतरनाक दुष्प्रभाव होते है। कब्ज होने पर दस्तावर दवाएं (लेक्जेटिव) जैसे डल्कोलैक्स, लूजीसिरप या बाइसोलैक्स आदि दी या ली जाती है। इसके साइड इफेक्टस से डिहाइड्रेशन, पेअ का पर्यावरण प्रदुषित होना, पेट के पर्यावरण शुद्ध रखने

वाले फायदे मंद बैक्टीरियों की कमी होना, पेट दर्द, पेट की सामान्य पेरिस्टालटिक वर्मी फॉर्म, पेंडूलम मूवमेन्ट एंव सेगमेन्टल कान्ट्रेक्शन का अस्त व्यस्त एवं पस्त हो जाना, अन्त में आंतो की गति मंद होकर सामान्य कब्ज (**Constipation**) भयंकर मलबन्ध में बदल जाता है जिस पर कोइ दवा काम नहीं करती हैं दीर्घकाल तक इन दस्तावर दवाओं के प्रयोग से लक्जेटिव कालाइटिस, गुर्दे की पथरी, मांस पेशियों तथा दिल के रोग आदि अनेक रोग हो जाते है।

प्राकृतिक चिकित्सा में पर्याप्त मात्र मे जल पीना, पेट का गरम ठण्डा सेक कभी-कभी एनिमा, कवि स्नान बल, नाशपाती, अलसी, इसबगोल, मुन्नाका, खजूर पालक आदि फाइबर रेशे वाले आहार, दही, जौ जई का दलिया मोटे आटे की रोटी इत्यादि अनेक तरीके हैं जिनसे कब्ज आसानी से दूर होते है। ये सभी नैसर्गिक है इसलिए इनका कोइ दुष्प्रभाव नहीं हैं।

बात-बात में हर प्रकार के दर्द के लिए नन एटेरॉयड एण्टीइन्फलामेट ड्रग्स के नाम पर आइबीप्रूफेन, एस्प्रीन आदि का प्रयोग सिर कमर घुटने चोट लगने जले-कटे, कुचलने पर दर्द की स्थिति में तथा पेट दर्द तथा लम्बे समय तक इस्तेमाल करने से पेट मे रक्त स्त्राव भयंकर सूजन, हाइब्लड प्रेशर, किडनी एवं लीवर डैमेज, स्ट्रोक एवं सिरदर्द हो सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में हर प्रकार के दर्द चोट जले कटे कुचलने पर ठण्डी बर्फ की पट्टी सिर कमर, घुटने आंख, कान, फोडा आदि किसी प्रकार के दर्द मे गरम ठण्डा क्रमशः से 3 :2 मिनट का संक आहार में दर्द नाशक आहार हल्दी, लहसुन, अंकुरित मेथी फलादार रसाहार आदि का प्रयोग निरापद है।

खांसी, सर्दी, जुकाम, गले की खराश, सुखी खांसी, छाती में जकडन बलगम आदि में आम आदमी भी विज्ञापन के चक्कर में बेनेड्रिल, कोरेक्र फिसेडिल सिरप आदि का प्रयोग करते है जिनके पार्श्व दुष्प्रभाव (साइडइफेक्ट) तन्द्रा भंग, अवसाद, चिडचिडापन, डर का दौरा, मतली, एकाग्रता, एवं ध्यान केन्द्रित करने में कमी थर्राहट, अकर्मण्यता, दौरे पडना, उच्च रक्तचाप अनियमित दिल की धडकन, थॉयरॉयड समस्या आदि अनेक जटिल समस्या पैदा होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में गले छाती पीठ का अजवाइन, यूक्लीप्टस अदरक, प्याज, लहसुन आदि का लोकल स्टीम, या गरम ठण्डा कम्प्रेश लपेट हॉट फुट बाथ, स्टीम बाथ देते है। अदरक + तुलसी + हल्दी का एक-2 चम्मच रस अथवा 5 लौंग या 1 0 काली मिर्च पावडर शहद के साथ लेना शीघ्र आराम देता है। ये अत्यन्त निरापद है।

बैक्टीरिया, फंगी तथा अन्य परजीवी रोगाणुओं से सम्बन्धित बीमारियों मे आम एण्टीबायोटिक दवाएं एमॉक्सिलिन, सोप्रोफलॉक्सासिन एम्पिलीसिन आदि को खुद खरीद कर फांक लेते है। इनके दुष्प्रभाव से डायरिया, त्वचा संक्रमण सभी प्रकार की एलर्जी,

रोग प्रतिरोधक क्षमता की भयंकर कमी, गुर्दे, फेफडे, यकृत तथा दिल की बीमारियां होती है इन अंगो के क्षतिग्रस्त होने की संभावना बढ जाती है गर्भस्थ शिशु विकलांग होते है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार आम रोगाणुओं एवं कीटाणुओं से लडने जूझने एवं मारने की शरीर में भरपूर ताकत एवं प्रतिरोधक प्रतिरक्षात्मक प्रणाली होती है जिसके अर्न्तगत जाबांज किलर सेल्स, इंटरफेरॉन जैसे रसायन प्राकृतिक आहार, लहसुन हल्दी जूस नेचूरल एण्टीबायोटिक्स दस्त बैक्टीरियाओं को ताकत देने वाले आहार दही, कांजी, अंकुरित एवं खमीर वाले प्रोबायोटिक्स वाले आहार का प्रयोग करें। बासी जूठे बाजार के कटे खुले क्षतिग्रस्त फल सब्जियां तले-भूने चाट पकौडे कचौडी फल फूड आदि नहीं ले।

उपरोक्त सभी प्रकार की मामूली सी लगने वाली दवाइयां लगातार खाते रहने से लती एवं व्यसनी बना देते है। रोग प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट कर देती है। दवाओं की बुराइ करना हमारा मकसद नहीं है। बल्कि लोगों को जागरूक करना ध्येय है क्योंकि स्वास्थ्य दवाओं में नहीं बल्कि सम्यक जीवन शैली में सन्निहित है। शरीर को स्वस्थ रखने के कुछ नियम है। प्राकृतिक विधान है कुदरती कानून है उसका पालन करने से शरीर में रस रक्त मांस मज्जा मेदा अस्थि वीर्यादि शक्तिशाली होते है नियम को तोडने यानि गलत खान पान रहन सहन चिन्तन मनन से शरीर में जरूरत से ज्यादा विकार पैदा होता है। प्रकृति के नियमों के अनुसार शरीर हर हमेशा अपने को साफ सुथरा स्वस्थ एवं सशक्त रखना चाहता है। चलते शरीर के अन्दर बनने वाले सामान्य गन्दगी बाहर फेंक दी जाती है। सामान्य अवस्था में जो हम खाते है उसका 8 0 प्रतिशत हिस्सा शरीर का हिस्सा बन जाता है 2 0 प्रतिशत शरीर का सजातीय नही होने से वह विजात पदार्थ के रूप में पाखाना पेशाब पसीना एवं प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। गन्दगी के रूप में विजातीय पदार्थ को शरीर की बरदाश्त करने की एक क्षमता होती हैं। सहनीय क्षमता से जब गन्दगी ज्यादा जमा हो जाती है। तो शरीर की स्वास्थ्य दायी शक्तियां दुसरे ढंग से सफाइ करने में जुट जाती है। विकार को जलाने के लिए दिमाग में मौजूद ताप नियंत्रक केन्द्र तापमान को बढा कर रोगाणुओं कीटाणुओं व विजातीय पदार्थ को भस्म करने लगता है। कभी विकार को निकालने के लिए दिमाग का वमन केन्द्र सक्रिय होकर पेट की सफाइ के लिए उल्टी पैदा करता है। अतिसार व दस्त पैदा कर आंतो की सफाइ करता है। जुकाम के द्वारा फेफडा एवं नाक के साइनस की सफाइ होती है। ज्वर के द्वारा शरीर से पसीना के रूप में गन्दगी बाहर फेंक दी जाती है। वास्तव में जितने भी नये एवं तेजी से निकलने वाले एक्यूट डिजीज जिन्हें जुकाम ज्वर पतले दस्त फोडा फुन्सी खांसी दर्द इत्यादि रोगों के नाम प्रसिद्ध है वास्तव में ये सभी शरीर द्वारा स्वतः स्वस्थ होने हेतु किये गये स्वचालित प्रयास एवं चेष्टा है।

प्रकृति विधान के अनुसार जो भी हम आहार लेते है। उन्हें रक्त मांस मज्जा अस्थि आदि का हिस्सा बन जाना चाहिए जो नहीं बन पाती है वही विजातीय विकार है जिन्हें बाहर निकल जाना चाहिए शरीर की स्वचालित स्वास्थ्य दायी शक्तियां शरीर की साफ सफाइ मे सतत लगी रहती है। क्योंकि इसी मे शरीर की मलाई छिपी है। बराबर साफ सफाइ होते रहने से स्वास्थ्य भी संरक्षित होता रहता है। यदि सफाइ नहीं हो तो यही

विजातीय पदार्थ रक्त संचार एवं स्नायु प्रवाह में बाधा उत्पन्न करती है। शरीर के अलग-अलग अंगों में जमा हो रोगी बना देती है। उनमें उत्तेजना, सूजन, दर्द, गांठ, घाव आदि पैदा कर देती है। अतः शरीर से विजातीय विकार का निकल जाना बहुत जरूरी है। हमारा जीवन अप्राकृतिक कृत्रिम होने से विकार सहजता से निकल नहीं पाता है। शरीर से विकार निकालने वाली शक्तियां कमजोर हो गयी है। देर तक जगने, खाने देरी से उठने आदि से शरीर की जैविक घडी भी अपसेट हो गयी है। धीरे-2 गहरी लम्बी सी सांस लेना एवं छोडना भूल गये है। जिससे फेफडे की अच्छी तरह सफाइ नहीं होती है। वातानुकूलित एवं एयर कूल कमरों में रहने तथा पर्याप्त मात्रा से परिश्रम व्यायाम नहीं करने से शरीर से पर्याप्त मात्रा में पसीना नहीं निकलता है चमरी द्वारा सफाइ का काम परिशाधित एवं परिष्कृत आहार लेने से पेट साफ नहीं होता है। आंते नि श्ठल हो जाती है पर्याप्त मात्रा में जल पीने से पेशाब बदबूदार होता है गुर्दे द्वारा खून की सफाइ अच्छी तरह नहीं हो पाती है। प्रकृति प्रदत्त शरीर के सफाइ के रास्ते कुदरत के नियम का पालन नहीं करने प्रकृति से दूर भागने से कमजोर हो गये हे फिर स्वस्थ कैसे प्राप्त होगा ?

स्वास्थ्य के लिए विकार का निकलना अतिआवश्यक है आयुर्वेद के अनुसार भी यही विकार त्रिदोष खात यानि नर्वस सिस्टम पित्त यानि पाचक एवं रक्त संवहन संस्थान कफ अर्थात ओज जीवनी शक्ति तथा विष निष्कासक संस्थान जठराग्नि सप्तघात मलो अंगो मे विकृति एवं असतुंलन पैदा करके आरोग्य को नष्ट कर देता है। अतः आयुर्वेद में विजातीय विकार रहित होकर त्रिदोष आदि धातु मलनिष्कासन की प्रक्रिया में संतुलन का नाम ही स्वास्थ्य है। इनमें सम्यकत्व के साथ आत्मा मन एवं समस्त इन्द्रिय प्रसन्न आनन्दित एवं सन्तुष्ट रहे यही स्थिति ही स्वास्थ्य है।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमरकक्रियः।

प्रसन्नामेन्द्रिमनाः स्वस्थ इत्यामिधीयते।।

आयुर्वेदिक रस रसायन एवं धातु वाली दवाइयों से भी स्वास्थ्य नही मिलता है। अधिकांश धात्विक दवाइयां गुर्दे, लीवर आदि को क्षतिग्रस्त करती है होम्योपैथिक दवाइओं के सम्बन्ध महान होम्योपैथिक चिकित्सक डॉ केन्ट का कहना है कि ये मीठी गोलियां जो ठीक कर सकती है वे मार भी सकती है अतः दवाइयों से स्वास्थ्य प्राप्ति मृग मरिचिका ही है। मात्र प्राकृतिक चिकित्सा ही सही ढंग से शरीर को हष्ट पुष्ट बना कर स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है शरीर एक स्वाचालित यंत्र है जैसे सतत चलते रहने से यंत्र पुर्जे घिसते रहते है। टूट फूट होती रहती है उसी प्रकार शरीर में निरन्तर टूट फूट विध्वंस तथा मरम्मत एवं सृजन का निरंतर चलता रहता है। इस कार्य को प्राकृतिक चिकित्सा एवं प्राकृतिक जीवन के प्रातः चर्चा दिन चर्या ऋतुचर्या का पालन करते हुए विजातीय पदार्थ बढाने वाले का असात्म्य आहार एवं विहार विचार एवं व्यवहार का त्याग तथा हर जगह स्वच्छता एवं पवित्रता का ध्यान रखने से अहित कर आचरण एवं व्यवहार जैसे थ्रिल क्षणिक और अस्वभाविक आनन्द के लिए शराब, गांझा, भांग आदि मादक पदार्थो का सेवन न करें।

शक्ति से न अधिक और न कम यानि संतुलित श्रम करें। भोग विलास में उश्रंखलता नहीं करें। विश्राम तथा निद्रा में भी न अधिक न कम सम्यक विश्राम करे आहार के मामले भी सभी प्रकार के पोषक तत्वों से भरपूर संतुलित आहार तथा प्राकृतिक चिकित्सा के अन्य मूल भूत सूत्रों को अपनायें। खाने के समय पानी न पीये खाने के साथ पानी पीने से पाचक रस की पचाने की क्षमता काम हो जाती है जिससे पेट फुलना, भूख नहीं लगना, पेट में सूजन आदि रोग हो जाते है खूब चबा चबा कर जब तक कि ठोस भोजन द्रव न बन जाये तब तक चबायें फिर उसे खायें। चबाने से मुंह मे लार रस पैदा होता है जिसमें मौजूद तापलिन एवं एमाइलेज नामक एन्जाइम भोजन को पचाने में सहायता करता है। लार रस में मौजूद सिक्रेटरी ल्यूकोसाइडस प्रोटीन इन्हवीटर्स एडस जैसे खतरनाक विषाणुओं से लोहा लेता है। इसमें उपस्थित एण्टी कार्सिनो जिन्स फैक्टर कैंसर से बचाता है एपिडर्मल ग्रोथ फैक्टर तथा हिल्टेटिन हीलिंग क्रिया को तेज करता है। बाइकार्बोनेट क्लोराइडस, फॉस्फेट यूरिया, यूरिक एसिड आदि इसके क्षारत्व को बनाये है। आइ जी ए रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाये रखता हैं लाइ तो जाइम रोग को नाश करता है। लार रस में मौजूद म्यूसिन तथा म्यूकस चबाने पर भोजन का चिकना बनाता है ताकि पाचन संस्थान को क्षति नही पहुंचे। इसमे मौजूद दर्दनाशक रसायन भी होता। चबाने से स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता बढती है तनाव दूर होता है। इस प्रकार से प्राकृतिक चिकित्सा के असंख्य सरगर्मित वैज्ञानिक स्वर्णिम सूत्र है जिनका पालन करने से शारीरिक स्वास्थ्य ता जीवन संरक्षित एवं सम्वर्दित होता रहता है। रोगों से बचाव होता रहता है। खाने के समय तनाव, क्रोध, इर्ष्या, द्वेषा, घृणा, नैराश्य के भाव से मुक्त रहें। खाते समय प्रसन्नचित्त रहे। भोजन करना पवित्रतम अनुष्ठान है अतः इसकी पवित्रता को बनाये रखे। खाने वाला खाने बनाने वाला खिलाने वाला रसोइ घर, आहार आदि समां कुछ शुद्धतम एवं पावन पवित्र होना चाहिए। पूर्ण एकाग्र होकर भोजन करें। कोइ कार्य करना तो है ही तो क्यों प्रसन्नचित होकर मुस्कराते हुए किया जाये जैसे जीवन तो जीना है ही कितना भी पीडा दुःख दर्द झंझानवट बाधाएं एवं मुश्किलें क्यों न आये क्यों न मुस्करा कर झेला जाए। जिया जाएं सेवा या नौकरी तो करनी है ही क्यों न मुस्करा कर किया जाये खाना तो है ही क्यों न मुस्करा कर खाया जाये। मुस्कराना यानि प्रसन्नचित्त रहना। जीवन में इस समीकरण को उतारें कर्म + मुस्कराहट + साक्षी भाव - अहंकार = कर्मयोग कोई भी कार्य प्रभू को समर्पित करके करें जीवन में गलती नहीं होगी। कोइ भी कार्य प्रभू का प्रभू के द्वारा तथा प्रभू के लिए है। इस भाव से कार्य करने से जीवन सम्यक एवं सार्थक बन जाता है। रात्रि को सोने, के समय तथा प्रातः काल उठने के समय परम प्यारे प्रभू को सुन्दर सशक्त एवं स्वस्थ जीवन के लिए धन्यवाद दे। प्रातः जल्दी ब्रह्ममूर्त में 4 :3 0 बजे उठे तथा रात्रि को 9 -1 0 बजे तक सो जाये। यह जैविक घडी की मांग है।

6.4 मानसिक स्वास्थ्य में प्राकृतिक चिकित्सा का योगदान :-

प्राकृतिक चिकित्सा में सभी रोगों को कारण शरीर में विकार संचित होने से शारीरिक रोग मन में विकार संचित होने से मानसिक रोग आत्मा मे विकार जमा होने से

आध्यात्मिक रोग होते है। ये तीनो प्रकार के विकार विजातीय होते है जो तन के मन के तथा आत्मा के हिस्सा नहीं बन पाते है। जब तक विजातीय पदार्थ शरीर में सीमा के अन्दर रहते है शरीर का स्वास्थ्य ठीक रहता है मन के बरदाश्त करने की सीमा के अन्दर रहते है। मन भी स्वस्थ शान्त, अनुद्विग्न रहता है। पावन आत्मा की सजगता रहती है तो वह सत चित आनन्द स्वरूप परमानन्द एवं परम स्वास्थ्य में लव लीन रहती है। तन मन तथा आत्मा में इकत्रित जमा विकार एक दूसरे का प्रभावित करते रहते है। काम क्रोध, इर्ष्या, घृणा, कुठादि संचित मन के विकार मन के साथ तन एवं आत्मा को भी दुष्प्रभावित करते है। चाय, चीनी, कॉफी, शराब, तम्बाकू, नशीली दवाइयां फास्ट फूड जंक फूड नमकीन आदि आहार श्रम एवं व्यायाम का अभाव अपर्याप्त विश्राम एवं नींद नियत समय पर न सोना न उठना आदि आहार विहार सम्बन्धित गडबडी एवं असंतुलन से शरीर में विजातीय टॉक्सिक मैटर, मॉरबिड मैटर, टॉक्सिन्स पॉइजन्स मैटर, फॉरेन मैटर आदि शरीर के विकार शरीर के साथ मन एवं आत्मा को अपने चंगुल में लेकर पतनोन्मुख करते है। मोह माया मत्सरादि आत्मा के विकार मन तथा तन को जहरीला बना कर रूग्ण एवं विक्षिप्त कर देते है। स्वास्थ्य संरक्षण सम्वर्द्धन तथा रोग निवारण में भी एक दूसरे को प्रभावित करते है। इन विकारों से मुक्त होते है। तनम न एवं आत्मा स्वास्थ्य पथ को प्रशस्त करती हुई आरोग्य, उल्लास एवं आनन्दोंत्सव में सतत सदा बोर रहती है। तन में विजातीय विकार जमा होने का मुख्य स्थान पेट है उसी प्रकार और वही से रक्त संचार द्वारा शरीर के विभिन्न संस्थानों का दुष्प्रभावित कर संस्थान के निरोमित को समाप्त कर देता है उसी प्रकार मन में विकार जमा होने का मुख्य स्थान दिमाग है। दिमाग के वे मुख्य भाग जो मन को स्वस्थ रखते है।

दिमाग का प्री फ्रन्टल कॉर्टेक्स (**PFC prefrontal cortex**) :- दिमाग ही नहीं बल्कि मन का सी. इ. ओ. (**CEO**) है। जो ललाट से लेकर तिहाइ हिस्सा दिमाग का सामने वाला या पीएफ सी पूरे शरीर दिमाग तथा मन का मुख्य नियंत्रक है। ध्यान निर्णय (**Judgement**) लेने योजना बनाने (**Planning**) विभिन्न आंतो को नियंत्रण करने (**Impulse control**) अनुसरण करने (**Follow**) कार्य समाप्ति तक सततता निरन्तर कर्तव्य पालन (**Follow through continue (anaction of task) to it end**) दुसरे के भावनाओं एवं सुख दुःख को समझना एवं साझेदारी करने की योग्यता (**Empathy**) संवेदना (**Sympathy**) आदि मुख्य कार्य भी प्री फ्रन्टल कार्टेक्स द्वारा नियंत्रित होते है। पी एफ सी सक्रियता कम होने से एकाग्रता की कमी ए. डी. एच. डी. व्यग्रता, उग्रता, एकाएक क्रोधित हो जाना एवं आवेग वशीभूत हो जाना (**Impulsivity**) स्पष्ट लक्ष्य का अभाव (**Lack of clear**) तथा किसी भी कार्य में मनन ही लगना, कार्य को टालना, दीर्घ सूत्री आदि की स्थिति पैदा होती है शराब, धूम्रपान नशीली दवाइयां तम्बाकू पान मसाला कॉफी कैफिन युक्त आहार पी एफ सी की सक्रियता कम हो जाती है यही कारण है नशीली इन चीजों से प्रयोग से से लोग मूर्खता पूर्ण हरकत करने लगते है। पी एफ सी द्वारा ही सावधानी बरती जाती है।

भविष्य में संख्याओं की सूचना (Forethought and ofrecast) मिलती है। पैरायतल लोबा (Parietal lobes) दिमाग के पीछे का उपरी भाग (Toward top part of the brain) के पास होता है जिसमें संवेदनाओं की किया कायाप विधि व्यवहार (Sensor processing) तथा दिशा बोध (Direction sense) का केन्द्र स्थित सही जगह सही दिशा सही राह बनाने वाला दिमाग का यह केन्द्र रात्रि अंधेरे मे भी कौन चीज कहां है दिशा सूचक (navigating) का काम करता है। एल्जीमर्स रोग में सर्वप्रथम पैरायटक लोब ही क्षतिग्रस्त होता है। इटिंग डिस ऑर्ड एनोरिक्सिया नर्वोसा शरीर ऐंठन संलक्षण (Body distortion syndron) तथा ग्रेस्टमान्स सिण्ड्रोम (Grest mann श्d syndrome) अपने अंगुलियों दायें बेसाइड पहचान लिखने तथा अंक तथा सामान्य सरल जोड घटाव की क्षमता में कमी तथा हाथ की शक्ति ठीक होने के बावजूद भी लिखने की सामर्थ्य मे कमी भाषा सम्बन्धित दोष (Agruphia and dysgraphia) लेफट पेरायतन लोब के क्षति ग्रस्त होने से हो जाता है।

दिमाग के पश्च हिस्से में ऑसिपिटल लोब्स (Occipital lobes) स्थिति है जो विजन तथा दृश्य क्रिया कलाप (Visual processing) का केन्द्र सेरेबेलम (CB) दिमाग के पीछे के तल भाग (bacc bottom par if the brain) में स्थित है जो शरीरिक क्रिया कलापों में सामजस्य (Physical coordination) बिठाने विचार सामन्जस्य (Thought coordination) तथा गति सामन्जस्य (Processing speed) को नियमित नियंत्रित एवं नियोजित है। पी एफ सी तथा सेरेबेलमर (Cerebillum) में गहरा से है। निर्णय लेने तथा विभिन्न आवेग एवं संवेगों को नियंत्रण करने में भूमिका निभाता है। सेरेबेलम में गडबडी होने से शारीरिक सामग्ज सीखने में कठिनाइ तथा किसी भी काम को करने में कठिनाइ (Slow processing) होती है। अल्कोहल सेरेबेलम पर सीधे प्रहार करना संतुलन वाले समवर्गीकरण वाले व्यायाम (Coordination exercise) ....कॉर्टेक्स की क्षमता का बढाते है।

टेम्पोरल लोब कनपटी के ठीक नीचे अन्दर आंखों के पीछे स्थित है। भाषा अल्पावधि का याददाश्त (Short term memory) मूड की स्थिरता के शील स्वभाव तथा प्रकृति (Mood stebility and tember issue) से टेम्पोरल लोब का सम्वथ्य है। क्या सही है (What pathwayo) का ज्ञान जैसे किसी व्यक्ति नाम, चीज स्थान की पहचान एवं प्रमाणित (Recognize) करना टेम्पों रल लोब का काम है। टेम्पोरल लोब में समस्या पैदा होने से नाम स्मरण, मानसिक अवस्था की अस्थिरता

(**mood instability**) तथा स्वभाव प्रकृति एवं व्यवहार सम्बन्धित समस्यायें पैदा होती है।

एण्टेरियर सिंगुरेट गायरस (**ACE anterior cingulated gyrus**) दिमाग कर गिपर शिफ्टर या गति परिवर्तक का काम करता है। यह फ्रन्टल लोब के गहराई में लम्बवत खाई संरचना है जो हमारे ध्यान में परिवर्तन एवं बदलाव लाता है। यह व्यवस्था एवं समयानुसार का अनुकूल तथा लचीला बनाता है। जब इस क्षेत्र में सक्रियता बढ जाती है तो व्यक्ति नकरात्मक सोच एवं विचारों के चंगुल में फंस जाता है। उसका कार्य विध्वंस्य एवं नकरात्मक होने लगता है। चिन्ता दृश्चिन्ता इर्ष्या कुठना घमण्डी असंतोष घृणा विरोध के भाव तथा व्यर्थ के तर्क कुतर्कवादी आदि के भाव प्रबल हो जाते है। मनोबाध्यता प्रेतबाधा तथा बाध्यकारी एवं दबाव पूर्ण व्यवहार से लडना है एवं जूझता है संघर्ष करता है कभी-कभी "**ACG**" सक्रिय व्यक्ति भूख सम्बन्धित रोग एनोरेक्सिया नवोसि तथा ब्लूमिया नर्वोसा से ग्रस्त हो जाता है।

डीप लिम्बिक सिस्टम (**Deep limbic system**) दिमाग के केन्द्र यानि मध्य मस्तिष्क के पास स्थित है जो व्यक्ति के भावनात्मक प्रकृति (**Emotional tone**) निर्धारित करता है यह केन्द्र को जितना कम सक्रिय होगा उतना ही व्यक्ति रचनात्मक एवं विधायक विचार एवं सृजल शील, आत्मविश्वासी एवं आशावादी होगा। इसकी ज्यादा सक्रियता से नकरात्मक सोच, आत्मगौरव, स्वाभिमान, आत्मसंयम प्रेरण तथा आत्माभिमान का अभाव, अकर्मण्यता स्वयं को दोशी, पापी, नीच एवं हीन भावना से ग्रस्त, असमर्थ असहाय दीन हीन का भाव पैदा होता है। लिम्बिक सिस्टम में गडबडी होने से मूड डिसआर्डर्स होते है।

डीपलिम्बिक सिस्टम के चारों तरफ बंसल गैंगलिया (न्यूक्लियस एक्यूमबेन्स) स्थित है जिसका सीधा सम्बन्ध समग्र सोच, विचार, अनुभूति तथा गति से है। यह व्यक्ति दृश्यिता स्तर को भी नियमित नियंत्रित करता है। सेटिंग करता है। इसकी अतिसक्रियता से व्यक्ति दृश्यिता से जूझता एवं संघर्ष करता है। शारीरिक तनाव दबाव से उत्पन्न सिरदर्द, पेटदर्द मांसपेशीय, खिंचाव, निष्क्रियता अकर्मण्यता, प्रेरणा का अभाव आदि लक्षणों से मनुष्य घिर जाता है। यह केन्द्र सुख संवेदन सम्मोहन अति आनन्द के भाव से जुडा है। कूकीज, केब्स, कोकिन तथा अन्य फास्ट फूड एवं नारकोटिक्स इस केन्द्र को प्रभावित करते है। रट्रज में तथा न्यूयार्क यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने खोज किया है खुशी एवं आनन्द की सोच एवं चिन्तन से दिमाग की नेगेटिव एवं विध्वंसक विचार एवं इच्छाएं बदलन लगती है। विधायक सोच एवं खुशी के भाव से रिवार्ड सेन्टर एवं प्लेजर सर्किट सक्रिय होने लगती है। नशीले पदार्थो से मुक्ति मिलती है। अल्बर्ट आंइस्टीन कॉलेज ऑफ मेडिसिन न्यूयार्क के न्यूरोसाइटिस्ट लुसीब्राउन ने खोज किया है कि न्यूक्लियस एक्यूमबेन्स, वेन्ट्रल टेगमेन्ट एरिया (**VTA circuit**) होते है। आंसू के बून्द के आकार का वी. टी. ए. ज्यादा सक्रिय हो जाता है यहीं पर रिवाई सेन्टर को सक्रिय करने वाला डोपामिन का स्त्राव बढ जाता है। न्यूलियस एक्यूमबेन्स आदमी को लती बना देता है। प्याद या

वैवाहिक सम्बन्ध टूटने पर दिवानापन पैदा कर देता है। दिमाग के क्षतिग्रस्त करके मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को खराब करने वाले कारक दुर्घटनाजन्य दिमागी इनजुरी, मारिजुआना, कोकिन एम्फिटेमिन मेथाएम्फिटेमिन, गांजा, मांग, हीरोइन, इन्हेलेटस आदि नशीली दवाइयां ऑक्सीकॉन्टिन विकोडिन जेनेक्स तम्बाकू पान मसाला अल्कोहल, धूम्रपान, और कैफिन का अत्यधिक सेवन पर्यावरण टॉक्सिस मोटापा, पायरायड, एस्ट्रोजन प्रोजेस्टरॉन डी एच इ ए या कॉर्टिसोल आदि हार्मोन के असंतुलन, कुपोषण शरीर का जीर्ण इन्फलामेंशन रक्त प्रवाह की कमी जीर्ण तनाव एवं दबाव, नींद मे खलल, अनिद्रा अत्यधिक टी. वी. हिंसक विडियो गेम्स, निर्जलीकरण (**dehydration**) व्यायाम प्राणायाम का अभाव, नकरात्मक सोच, अत्यधिक टेक्टिंग तथा सोशल नेटवर्किंग आदि अनेक कारण है जिससे दिमाग के नर्व सेल्स क्षतिग्रस्त होते है तथा मानसिक स्वास्थ्य खराब होता है। एक सरल वैज्ञानिक उदाहरण से समझे।

ज्ब पी एफ सी ज्यादा सक्रिय एवं शक्तिशाली होता है तो आनन्ददायी प्रेरणाप्रदर (डंजपअंजपअम) हार्मोन डोपामिन तथा बेसल गैगलिया तथा डीप लिम्बिक सिस्टम मे शानदार संतुलन होता है। जिससे इमोशनल सर्किट बेहतरीन ढंग से कार्य करता है। हर परिस्थिति को संभालता है। नशे वाली चीजें तीव्र खाने से पी एफ सी की सक्रियता कम हो जाती है जिससे अनियंत्रित तीव्र आवेग को वश में करना मुश्किल हो जाता है। जिसमें व्यवहार संबंधी विकृतियां पैदा होती है। नशा दिमाग पर नकारात्मक प्रभाव डालकर दिमाग को पत्थर की तरह कठोर बना देता है। सोचने की क्षमता खत्म हो जाती है। भला बुरा निर्णय करने की क्षमता कमजोर हो जाती है। व्यवहार सम्बन्धी समस्या पैदा हो जाती है। जो लोग नशा नहीं करते है उनका दिमाग हर चीज को अपने नियंत्रण में रखता है। इच्छा शक्ति तीव्र लाल रंग उत्कट अभिलाषा एवं प्रचण्ड इच्छा (**will power and craving**) के मुख्य केन्द्र प्री फ्रन्टम कार्टेक्स है जो निर्णय एवं आवेग नियंत्रण नियमन करता है। यह दिमाग के आगे का तीन हिस्सा है। दूसरा बेसल गैंगलिया का हिस्सा न्यूक्लियस एक्यूमबेन्स है जो दिमाग की गहराइ में स्थित है यही हमारा व्यवहार, प्रेरणा, अत्यन्त शक्तिशाली संवेग, तीव्र सेक्स की इच्छा किसी भी कार्य के लिए व्यग्रता, अतिउत्साह, उन्माद पागलपन पूर्ण आवेश का नियंत्रण व नियोजन होता है। अभिप्रेरणा एवं लक्ष्य एवं उधेश्य प्राप्ति हेतु संचालन का कार्य यही से होता है। तीसरा भावनात्मक याददाश्त केन्द्र द्वीप लिम्बिक सिस्टम है जो हमारे व्यवहार को नियंत्रक (**Triggers of behaviour**) का कार्य करता है। अचेतन मन अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसका सीधा सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से है मनश्चिकित्सा की आधार शिला है। अचेतन मन है।

डॉ फ्रायड के अनुसार व्यक्ति अपनी शैशवकालिन कामुक वृत्तियों को समाज द्वारा असंगत पाये जाने के कारण अन्दर ठकेल देता है। इसी से अचेतन मन का सृजन होता है।

इसमें दमित, उपक्षित तथा समाज द्वारा तिरस्कृत, बहिस्कृत, विचारों का जमाव हो जाता है। इसलिए चेतन मन को फ्रायड ने अशौच, कुग्य विकृत, विध्वंसक विचारों भावनाओं कुंठाओं और वृत्तियों का गोदाम बनाना है।

डॉ सी. जे. युंग 1 9 0 5 में फ्रायड को गुरूमानकर मनोविज्ञान पर काफी उत्साह के साथ कार्य करते रहे। जब फ्रायड ने कामुकता अनैतिक वासनाएं और काम इच्छाओं के दमन को ही अचेतन माना और सेक्स पर ज्यादा बल देने के कारण सन 1 9 1 3 में युंग अलग होकर काम करने लगे। पुराने खोज किया कि मानव जीवन की इच्छा (**will of life**) पुरी करने के लिए प्रयत्न करता है पुरी न होने वाली जीवन इच्छा ही अचेतन मन है। एक अन्य मनोवैज्ञानिक एडलर के अनुसार बाल्यावस्था से ही व्यक्ति में अधिकार आधिपत्य प्रभाव शासन एवं शक्ति की इच्छा (**will of power**) तथा हीनता तथा न्यूनता का भाव (**Feeling of inderiority**) होती है जिससे मुक्त होने के लिए वह प्रभत्व जमाना चाहता है लेकिन सारी इच्छाएं पुरी नहीं होती है। अपूर्ण इच्छाएं ही दमित होकर अचेतन मन बन जाती है। इस प्रकार अचेतन मन दमित इच्छाओं का भण्डार है इसमें विरोधी आवेग बिना द्वन्द्व के रह सकती है ये स्वच्छन्द तथाा अराजक स्थिति में अचेतन तल पर रहती है। इसलिए इन पर निषेध का प्रभाव नहीं पडता है। अचेतन न तो तार्किक है न नैतिक और न अनैतिक है अचेतन हमेशा एवं सुख संवेदनात्मक वृतियों द्वारा संचालित होता हैं दमित अतृप्त इच्छाएं एवं वासनाएं हर संभव अपनी कामना एवं इच्छा पुरी कर लेना चाहती है। परन्तु सामाजिक प्रतिबन्धक के कारण दबी रहती है। इच्छाएं मरती नहीं दबी रहती है। योग ध्यान के द्वारा दमित इच्छाओं को रूपान्तरित किया जा सकता है। प्रतिबन्धक हटने पर सामाजिक बीमारियां बलात्कार, हत्या, चोरी आदि अनाचार दुराचार एवं व्यभिचार पैदा होती है दबाने पर मनोवैज्ञानिक, मनः स्वायविक एवं मनो लैंगिक ग्रंथियां मानसिक तथा स्वायविक बीमारियां पैदा होती है। इन सबका मूल कारण अज्ञानता, प्रमाद, असावधानी, मूल तथा अनवधानता है। इसे ही आयुर्वेद में चरक ने प्रज्ञापराध कहा है यही रोग का मूल कारण है - ”प्रज्ञापराधो हि मूलं रोगाणाम्“

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, द्वेष, कुंठा, घृणा, मोह, माया, मत्सर, (**Enuy, jealousy, hostility, angery fears, frushation**) हिंसा प्रतिहिंसा, निराशा, उदासी, दुश्चिन्ता, मनोविदलता, मनोबाध्यता, विभ्रम आदि समस्त मानसिक बीमारियों का मूल कारण प्रज्ञापराध ही है। ये सभी प्रज्ञापराध से ही जन्म लेते है-

इर्ष्या शोक भय क्रोध मान द्वेषादयश्च।

मनोविकासस्तेदप्युकताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः।।

इच्छा शक्ति एवं उत्कट अभिलाषा से अभिलाषा से सम्बन्धित महत्व पूर्ण स्नापविक रसायन (**Neure chemical**) पहला डॉ पामिन है जो अभिप्रेरणा परम शक्तिशाली

(**saliency**) चालक (**drive**) तथा उद्दीपन का कार्य करता हैं दुसरा सेरोटोनिन अत्यन्त प्रसन्नता, मानसिक स्थिति का नियंत्रक, चिन्ता दुश्चिन्ता कुण्ठा अवरोधक तथा परमशान्ति प्रदान करने वाला रसायन है गाबा (**GA 3 a gamma-amino but ric acid**) भी सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम से पाया जाता है जो शिथिलना, शान्ति, प्रदान करता है चौथा एण्डोर्फिन जो पिट्यूटरी में पाये जाने वाले तत्व बीटा लाइमों प्रोटीन से बनता है यही आनन्द परमानन्द की अनूभुति देता है तथा दर्द का दूर करने वाला होता है।

मन को मजबूत करने तथा मन के स्वास्थ्य के लिए दिमाग पी. एफ. सी. एसी. जी. डी. एल. एस. तथा बी. जी. केन्द्र के मध्य संतुलन होना अतिआवश्यक है। संतुलन का नाम ही स्वास्थ्य है। यही सुख शान्ति एवं प्रसन्नता है।

वायुः पित्तं कफश्चेति शारीरो दोष संग्रहः।

मानसः पुनरूद्दिष्टो रजश्च तम एव च।।

जिस प्रकार वातपित कफ शरीर के दोष है और इनमें असंतुलन पैदा होने से शारीरिक बीमारियां पैदा होती है। उसी प्रकार सतरजम मानस दोष है इनमें असंतुलन पैदा होने से मानसिक बीमारियां पैदा होती है।

आधुनिक मनोविज्ञान के पितामह सिगमण्ड फ्रायड ने मन के गतिक (**Dynamic**) पक्षों को तीन वर्ग इडम हमेशी सिर्फ सुख की इच्छा रखता है अहं परिस्थिति के अनुसार व्यावहारिकवृति है तथा अत्यहम आदर्श वृत्ति से प्रेरित है अहं हृदय तथा अत्यहम की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए संतुलन बनाकर रहता है तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है। यदि अहं सामर्थ्यवान सबल समझपूर्ण है तो व्यक्ति सामान्य एवं स्वस्थ जीवन जीता है। अह ंके दुर्बल होतें ही हृदय तथा अत्यहं द्वारा प्रभावित होने रहने के कारण व्यक्ति अहं दुश्चिता से ग्रस्त होता है।

मन के स्थूलाकृतिक (**Topographical**) विभागों में चेतन (**Conscious**) अर्द्धचेतन (**sub conscious**) तथा अचेतन (**un conscious**) होते है। अभी जो कर रहे है। वह वर्तमान की स्थिति चेतन मन द्वारा से संचालित है। जानते हुए भी भूल गये है किन्तु याददाश्त पर जोड डालने से याद आ जाता है जैसे कल दिन में 2 बजे क्या कर रहे थे याद नही है तुरन्त नहीं बता सकते लेकिन याद करके बल सकते है। उसी प्रकार आप दो पुछा जाने कि 1 0 जनवरी 1 9 9 8 को दिन के 4 बजे क्या कर रहे थे बिल्कुल नहीं बता सकते है किन्तु वह स्मृति में है वह अचेतन का हिस्सा है बर्फ को पानी में डूबाने पर जिस प्रकार 9 हिस्सा पानी में रहता है उसी प्रकार कुल मन का 9 6 प्रतिशत अचेतन मन एक हिस्सा उपर यानि 1 0 प्रतिशत चेतन मन तथा बर्फ कुछ पानी के सतह पर उपर नीचे मिलाता रहता है वह अर्द्धचेतन मन होता है।

प्राचीन काल में भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन को आवश्यकताओं को कम रखने की नसीहत दी थी। ऋषि जीवन शैली थी। लोग यायातर की तरह रहते थे। पर्यटक की तरह घुमन्तु जीवन था। आज मां भारतीय संस्कार एवं संस्कृति में धुले मिले रोमा लोग पृथ्वी के हर क्षेत्र में मिलेगें। पर्यटक की तरह यत्र तत्र प्रवास के कारण सामग्री संग्रह धनसंचय की भावना नहीं थी बडे सुखी शान्त संतुष्ट जीवन यापन था समयान्तराल के समूह बनाकर रहने लगे, धीरे-2 शालीनता, संस्कृति, परम्परादि का विकास हुआ गांव नगर बसाये। ग्राम कुटीर उद्योगों के अर्न्तगत काष्ठ कला, चर्म करना, चित्रकला वस्त्र निर्माण आदि अनेक सृजनात्मक कार्य थे। जिससे दिन भर बनने वाली ग्रंथियों का विसर्जन होता है। सेक्स, इर्ष्या, क्रोध, भय, निराशा, आदि ग्रंथियों को रूपान्तरित करने का मनोवैज्ञानिक उत्पादक व्यवस्था थी। लेकिन आज उनके विलिन हो जाने के कारण सृजन की शक्ति विध्वंसक कृत्यों में रूपान्तरित होने लगी है। ग्रंथियों में बन्द ऊर्जा का सृजनात्मक उपयोग करने से ये शक्तियां विकास में वरदान साबित होती है। प्राचीन काल में दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए लोग परिश्रम करते थे लेकिन आज के सुविधायोगी जीवन ने श्रम को शर्म बना दिया है। यही कारण है आज का श्रमविरत समाज बेश्रम होकर मधुमेह मोटापा, हृदय रोग, गठियादि बेगर्म बीमारियों के चंगुल में हैं। स्वास्थ्य खो गया है। प्राकृतिक चिकित्सा सम्पर्क श्रम सम्यक आहार, सम्यक विश्राम एवं सम्यक चिन्तन को अपना मूलाधार मानती है और इसी रास्ते पर चलकर व्यक्ति मन में दमित वासनाओं इच्छाओं एवं अतृप्त कामनाओं को संतोष एवं स्वास्थ्य में रूपान्तरित कर सकता है।

संतोष परम आरोग्यां संतोषं परम सुखम।

सतु भवति दरिद्रो यस्य तष्णा विषालाः।

मनसि च सन्तुष्टे कोडर्थवान को दरिद्रः।।

दुनिया का सबसे दरिद्र एवं बीमार व्यक्ति वह है जिसके पास सिर्फ जैसा है मन के सम्यक बोधपूर्ण संतोष से निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी धनवान से ज्यादा सुखी एंव स्वस्थ रहता है। मन के संतोष से धनी एवं निर्धन क भेद नहीं रहता है क्यों संतोष सबसे बडी शक्ति साहस शौर्य एवं ऐश्वर्य है। बोधपूर्ण संतोषी व्यक्ति में कभी विकार एवं मानसिक रोग नहीं उत्पन्न होते है। वे सदा स्वस्थ रहते है।

वास्तव में स्वाभाविक रूप से प्रायः मनुष्य का अंतरतम सही होने की चाह रखता है। इसलिए वह सही सोचने सही काम करने सही व्यवहार करने की चाह रखता है। लेकिन जब हम किसी का भी पालन नही करते है तो एक प्रकार का नैतिक अपराध तथा असंतुष्टि पैदा होती है। किसी प्रकार की गलती से मानस दो तरह की प्रति क्रियायें करता है एक अपराध हीन भावना पैदा होती है दुसरा आत्मविश्वास कम होता है अच्छा काम अच्छी भावनाएं पैदा करता है। अच्छी भावनाएं संतुष्टि प्रदान करती है और यही मानसिक स्वास्थ्य है जिसका आधार मात्र सिर्फ निसर्गोपचार है।

6.5 आध्यात्मिक स्वास्थ्य में प्राकृतिक चिकित्सा का योगदान :-

स्वास्थ्य अर्थ ही आध्यात्म होता है स्वस्थ में स्थित हो जाना ही स्वास्थ्य एवं आध्यात्म है। खास्मिन तिष्ठति स्वस्थः जो अपने अन्दर स्थित हो क्या आत्मस्थ हो गया वही स्वस्थ है। यही आध्यात्म है शारीरिक स्वस्थ्य में शरीर का एक एक अंग लय ताल एवं रिदम में काम करता है तो यह शारीरिक स्वास्थ्य है हृदय की गति को हृदय कालय बोलते है। मन के तीनों भाग चेतन अर्द्धचेतन एवं अचेतन के मध्य समन्वय मानसिक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य यानि आत्मा का स्वास्थ्य यानि आत्म विकास है। जहां तन की व्याधि मन का आधि मिटकर आत्मा समाधि में लीन होने की स्थिति में होनी है इसे आध्यात्मिक स्वास्थ्य कहते है। परम जीवन, परम स्वास्थ्य की प्राप्ति ही आध्यात्मिक स्वास्थ्य है।

प्राकृतिक चिकित्सा का मूल मंत्र है कि रोग के कारण हम स्वयं है दूसरा कोइ कारण नहीं हो सकता है उसी प्रकार आध्यात्म विज्ञान का भी यही दर्शन है-

सुखस्य दुःखस्य न कोषि दाता परोददातीति कुबुद्धिरेषाः।

अहं करोभीति वृथाभिमानः स्वकर्म सुत्रात ग्रंथितो हिलोकः।।

दुसरा कोइ सुख दुःख तथा रोग आरोग्य को देने वाला नहीं है ऐसा जो सोचता है वह कुबुद्धि वाला अज्ञानी है अपने-2 कर्मों के कारण कोइ सुखी दुःखी रोगी अथवा निरोगी है। इन सबके लिए हम स्वयं उत्तरदायी है।

हमारी बुद्धि समता में स्थित हो जाती है यही समाधि है। यही आध्यात्मिक स्वास्थ्य है समता में स्थित रहना ही स्वभाव है।

स्वास्थ्य है अपने स्वभाव में स्थित हो जाना प्रकृति के नियमों के अनुसार जो चलता है वही अपने स्वभाव में स्थित रहता है और यही स्वास्थ्य है स्वभावो अध्यात्मुंच्यते यही आध्यात्म है। व्यक्ति अपने स्वभाव में स्थित होने के लिए सम्यक आहार, सम्यक विहार सम्यक विचार एवं सम्यक विश्राम आवश्यक होता है।

काम क्रोध इर्ष्या द्वेष आदि हमारा स्वभाव नहीं हैं। स्वाभाव वह है जो सहज हो यानि हम लेकर पैदा हुए है जैसे प्रेम करूणा, त्याग, हमारा सहज स्वभाव है। प्रेम करूणा त्याग स्नेह आदि दिव्य गुणों के साथ हम चौबीस घंटे रह सकते है। लेकिन काम क्रोध इर्ष्या द्वेष में हम 2 4 घंटे नहीं रह सकते है। हम बीमार हो जाते है इसलिए यह हमारा स्वभाव नहीं है स्वभाव ही स्वास्थ है स्वभाव ही प्रकृति है इसलिए स्वास्थ्य के लिए प्राकृतिक आहार खाइये, प्राकृतिक सार्थक सोच विकसित करें प्राकृतिक जैविक घडी के अनुसार जीवन जीये तथा प्राकृतिक हो जाये - **(But naturally, live naturally, think naturally and be naturally)** आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए योगासन, प्राणायाम, ध्यान, प्रार्थना, उपासना, अनुष्ठान, व्रत,

आदि अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार अवश्य करें। इससे प्राण ऊर्जा का सम्वर्द्धन होकर आध्यात्मिक आरोग्य प्राप्त होता है सप्ताह में एक दिन सिर्फ पानी या फलाहार पर उपवास अवश्य करें इससे नमन एवं आत्मा की शुद्धि होती है।

6.6 बोधात्मक प्रश्न :-

1 . शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते है? इसका विवेचन कीजिए।

2 . निम्न पर एक लेख द्वारा वर्णन करें :-

- प्राकृतिक चिकित्सा एवं शारीरिक स्वास्थ्य
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं मानसिक स्वास्थ्य
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य

6.7

1 . प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग - डा. नागेन्द्र कुमार नीरज

2 . जल चिकित्सा - डा. नागेन्द्र कुमार नीरज

3 . आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य - आचार्य बाराकृष्ण

4 . प्राणायाम रहस्य - स्वामी रामदेव

5. आयुर्वेदीय पंच कर्म विज्ञान - वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे

6. प्राण शक्ति उपचार, प्राचीन विज्ञान व कला - चौ. कोक सुई

7 . मानव के समग्र विकास में पंचकोश साधना - अर्जुन सिंह

8 . जीवनी शक्ति कैसे जगायें - डा. चन्द्र दीप सिंह

मानव साधना मण्डल पांचली मेरठ

इकाई - 7 :

प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ एवं संबंध

7 .0 इकाई संरचना

7 .1 - इकाई का उधेश्य

7 .2 - प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ एवं संबंध

7 .3 - पंच कोष

7 .4 - विभिन्न चक्र

7 .5 - प्राण ऊर्जा प्रतिरोधक क्षमता एवं प्राकृतिक चिकित्सा का संबंध एवं महत्व

7 .6 - बोधात्मक प्रश्न

7 .7 - सन्दर्भ ग्रन्थ

7 .1 उधेश्य :-

शरीर मन से सामाजिक व पारिवारिक कार्यों को करने के लिए जिस भी शक्ति की आवश्यकता होती है, उस शक्ति को ही प्राण कहा जाता है। यही प्राण जन्म से ही हमें प्रभु से प्राप्त हो जाता है। इसी प्राण शक्ति को दिन-प्रतिदिन के कार्य कलापों में इसकी जितनी मितव्यता बरती जाए उतना ही जीवन वर्षों तक ठीक-ठाक चलता रहता है। इसलिए इस इकाई का अध्ययन भी हम प्राण की पहचान उसका अर्थ तथा उसको किन चक्रों तथा कोषों का ज्ञान करने से समझना है। प्राण हमें दैनिक जीवन की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रतिरोधक क्षमता का सुदृढ होने में क्या भूमिका निभाता है, इसका विवेचन भी इसमें किया जाएगा। आइये हम इन सभी पहलुओं की सूक्ष्मता समझने हेतु विस्तार से अध्ययन करें -

7 .2 प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ एवं सम्बन्ध

आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही प्राण ऊर्जा है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य पूजा, अर्चना, मौन चीन की कीकुंगर (आन्तरिक शक्ति बढाने की कला), ध्यान, सदाचार, शुभविचार, विधायक चिन्तन, अर्चना, उपासना, साधना, सामयिक, सद्अनुष्ठान, संकल्प, उपवास, व्रत आदि विभिन्न प्रक्रियाओं के प्रयोग से बढाया जा सकता है। प्राण ऊर्जा का प्रयोग वैदिक काल से होता आ रहा है। हमारे ऋषि मुनि संत महात्मा आर्शिवाद एवं वरदान के रूप में प्राण ऊर्जा का प्रयोग करते आ रहे है। प्राण ऊर्जा के द्वारा आरोग्य प्राप्त करने का प्रयोग दुनिया के हर कोने में हजारों सालों से होता जा रहा है। बौद्ध काल के अनेक बौद्ध

भिक्षुक ध्यान द्वारा प्राण ऊर्जा का सम्वर्द्धन करके लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करते थे। बौद्ध अनुयायिओं द्वारा दुर सुदुर देशों तक इसका खुब प्रचार प्रसार हुआ।

वास्तव में भौतिक सुख सुविधाओं की होड में जीवन ऊर्जा ज्यादा नष्ट होती है। अतृप्त वासनाएं, कामनाएं एवं इच्छाएं मानव जीवन में उत्तेजना पैदा करती है। जिससे समस्त इन्द्रियों की भूख बढ जाती है और उन इन्द्रियों की भूख को मिटाने के लिए इन पर इस तेजस्वी ऊर्जा की खपत अत्यधिक करनी पडती है। जितनी हम सुख सुविधाओं को बढायेंगे, भौतिक समृद्धि प्राप्त करेंगे उतनी ही हमारा ऊर्जा का खर्च भी बढती चला जाता है, हम ऊर्जा हीन होते चले जाते है। धीरे-धीरे हम निर्जिव सा शक्ति हीन महसूस करने लगते है। मानव जरूरत से ज्यादा भौतिक सम्पदा सुख सुविधा के साधन जुटाने में ही अपना सारा जीवन एवं प्राण ऊर्जा को लगा देता है। प्राण ऊर्जा शक्ति हीन होकर उसे वह उपयोग भी नहीं कर पाता है। अन्त में वह प्राण ऊर्जा के अभाव में दीनहीन एवं शक्ति हीन हो जाता है।

प्राण ऊर्जा को विभिन्न धार्मिक मान्यताओं आत्म विज्ञानियों, दिव्यदर्शियों, आयुर्विज्ञानियों ने विभिन्न नामों से निरूपित किया है। पायथागोरस ने न्यूमा (**Neuma**) हिप्पोक्रेटस मेडिकाट्रिक्स नेचुरेआ (**Medicatrix naturea**) गैलन ने मैग्नेटिज्म हैनिमन ने डाइनेमिस (**Dynami**) या वायटल फोर्स पैरोसेलसस आर्चियस विल्हेमरिक ने ओरगोन डी.डी. पामर ने इनेट, चीनी आयुर्विज्ञानियों ने **CH** जापानियों ने **Ki** ग्रीक भाषा में प्राणात्मा, हिन्दुओं ने प्राण अमेरिकनों ओरेण्डो (**Orendo**) पोलीनेशियन्स ने मना (**Mana**) हीब्रू मे रूढ्ढ या जीवन की सांस कहा जाता है।

<u>प्राण ऊर्जा या प्राण शक्ति के सम्वर्द्धन एवं संरक्षण उपाय</u> :-

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव का सम्पूर्ण जैविक शरीर दो भागों से सृजित है। प्रथम भौतिक या पार्थिव शरीर दुसरा सूक्ष्म शरीर। पार्थिक भौतिक (**Physical body**) भौतिक या पार्थिव शरीर - जो शरीर प्रत्यक्ष दिखता है, जिसे हम छु सकते है। जिससे देख सकते है। जिसमें शरीर के सारे जागतिक व्यावहारिक व्यापार व कार्य कर सकते है। भौतिक या पार्थिक शरीर पंच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से सृजित है। भौतिक या पार्थिक शरीर के अर्न्तगत पांच कर्मेन्द्रिय हस्त पाद, गुदा, उपस्थ एवं वाणी तथा पांच ज्ञानेन्द्रिय कान, आंख, नाक, जीहवा, त्वचा आते है।

ये मिलकर भौतिक शरीर का निर्माण करते है। विभिन्न संस्थान जैसे (1) बाह्य संस्थान (**Integumentary system**) (2) कंकाल तंत्र (**Skeletan system**) (3) पेशी तंत्र (**Muscular system**) (4) पाचन तंत्र (**Digestive system**) (5) परिसंचरण तंत्र (**Circulutary system**) (6) लिम्फैटिक सिस्टम (7) श्वसन तंत्र (**Respiratary system**) (8) तंत्रिका तंत्र

(**Nervous system**) (9) उत्सर्जी तंत्र (**Excretary system**) (1 0) अंतःस्त्रावी तंत्र (**Endocrine system**) (1 1) त्वचीय तंत्र (**Cutaneous system**) (1 2) प्रजनन तंत्र (**Reproductive system**) (1 3) ज्ञानेन्द्रिय संस्थान (**Sensory system – (i) sense if sight, (ii) sense if hearing, (iii) sense of touch, sense if smell, senser-taste**) आदि भौतिक पार्थिव शरीर पार्थिव पदार्थों से बना है अतः इनकी शुद्धि एवं स्वास्थ्य संरक्षण एवं सम्वर्द्धन प्राकृतिक योग चिकित्सा के पंचभूतात्मक पार्थिव प्रविधियों द्वारा ही संभव है। ”शीर्यते इतिशरीरंम“ यानि जो निरन्तर विघटित हो रहा है। वह शरीर है। जैन दर्शन में इस ”पुद्गल“ यानि प्रतिक्षण जो गल (नष्ट हो) रहा है वह शरीर है वहां गया है।

7 .3 पंच कोष :- शरीर का सृजन अन्नमय कोष से हुआ है। पृथ्वी से उत्पन्न अनाज, फल, सब्जी आदि आहार से ही शरीर के समस्त संस्थानों के अवयवों का निर्माण हुआ है। समस्त प्राणियों का भोज्य एवं भोक्ता अन्न ही है। शरीर का स्वास्थ्य आहार पर ही निर्भर करता है। अन्नमय कोष का अर्थ है पंचभूतात्मक विविध आहार पंचभूतात्मक शरीर की खोल चोला या म्यान का निर्माण करता है। आहार जितना शुद्ध, पावन आरोग्य वर्द्धक एवं ऊर्जावान होगा भौतिक शरीर की खोली अन्नमय कोष उतना ही शक्तिशाली एवं स्वस्थ होगा। पार्थिव भौतिक शरीर दृश्य होता है। दिखाई देता है।

(2) सूक्ष्म शरीर या ऊर्जा शरीर (**Energic body**)

प्राणमय कोष मनोमय कोष विज्ञानमय कोष आनन्द कोष

(Vital sheath)(Astral sheath)(Wisdom sheath)(Delight sheath)

(Reanimating(Mental body)(Enlishlend body)(Celestial body)

or life restoring body)

(1) पार्थिव शरीर (**Physical body**)कारण शरीर (**Causual body**)

अन्नमय कोषआनन्दमय कोष (**Bliss sheath**)

(Terresterial sheath earthen sheath)(Surocreme being body)

(2) सूक्ष्मशरीर या ऊर्जा शरीर (**Energic body**) :- भारतीय दर्शन में पार्थिव शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर तीन प्रकार के शरीर माने गये है। पार्थिव शरीर अन्नमय कोष (**Terrresterial or earthen sheath**) से सूक्ष्म शरीर या ऊर्जा शरीर (**Energic body**) के प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय तथा आनन्द कोष से तथा कारण शरीर आनन्दमय कोष से सृजित है। अलग-अलग कोषों के अनुरूप सूक्ष्म शरीर का वर्णन :-

प्राणमय कोष (**Vital sheath**) :- प्राणमय कोष सूक्ष्म सत्ता का अस्तित्व है। प्राणमय कोष को शक्तिशाली बनाने के लिए प्राण यानि वायु का सम्पर्क सेवन का विधान है। इसके लिए भारतीय मनीषियों ने प्राणायाम की व्यवस्था दी है। प्राणायाम का अर्थ ही होता प्राण+आयाम यानि प्राण का विस्तार देना। प्राण वायु ही जीवन आधार है। यही जीवनी शक्ति है। जीवनी शक्ति अदृश्य होते हुए भी दृश्य सत्ता शरीर के स्वास्थ्य का मुख्य स्त्रोत है। अथर्ववेद में वायु को ही प्राण कहा गया है।

प्राणमाहुमाहुर्मातरश्विनं वातो ह प्राण उच्चते।

प्राण ह भूत भव्यं च प्राणे सबं प्रतिष्ठितम।।

प्राण ही मातश्विा है, वायु को ही प्राण कहते है, अतः भविष्य वर्तमान सभी कुछ प्राण मे ही प्रतिष्ठित है।

कोषीत की उपनिषद में भी आया है

"भावद् हिमन शरीरे प्राणोवसति ताबदायूः"

अर्थात जब तक शरीर में प्राण रूपी वायु उपस्थित है तब तक ही जीवन है तब तक ही यह शरीर है।

वायु के भेद

योगियों ने वायु (प्राण) के दो भेद किये है

प्रथम मुख्य प्राण (वायु) तथा उनके सहायक उप प्राण मुख्य प्राण वायु के पांच क्षेत्र, प्रदेश (विभाग) एवं मंत्री है

हृदि प्राणो गुर्दऽपान समानो नाभिमण्डले।

उदानः कण्ठदेशस्यो व्यानः सर्वशरीर रगः।।

(1) प्राण - यह प्रधान वायु हृदय में निवास करता है। यह कण्ठ से लेकर डायफ्राम तक यानि हृदय, कण्ठ, नासिका, सभी क्षेत्रों का देखभाल करता है। यह फेफडों को शुद्ध, दिल को हष्ट-पुष्ट तथा कंठ को स्वस्थ सुरीला बनाता है। थूकना, छींकना, हिचकी, खांसी, जुकाम, गला बैठना (स्वरमंग) मूर्च्छा, भ्रमादि आदि उपद्रव प्राण वायु के अस्त व्यस्त एवं भ्रस्ट होने से होता है।

(2) अपान - इस वायु का कार्य क्षेत्र नाभि से नीचे गुदा द्वार यानि बडी आंत, अण्डकोष, मूत्र लनेन्द्रिय, नाभि एवं वरित प्रदेश तक फैला हुआ है। अपान वायु जब अच्छी तरह कार्य नहीं करता है आलसी सुस्त या भ्रष्ट होने पर मल, मूत्र, शुक्र, आर्तव, गर्भ सम्बन्धित उपद्रव होते है। यह मुख्य विष निष्कासक शोधक वायु है।

(3) सम्पन्न - डायफ्राम से नाभि तक के आस पास का पुरा क्षेत्र यानि आमाशय पक्वाशय, उदर, यकृत, अग्नायशय, यकृत, छोटी आंत, प्लीहा आदि विभाग समान के जिम्मे है। समान वायु के विकृति से अजीर्ण, अतिसार, रस रक्तादि धातुओं के दोष अग्निमांद्य आदि उपद्रव होते है।

(4) उदान - यह शरीर के उपरीक्षेत्र श्वास करके कंठ से मस्तिष्क तक का क्षेत्र आंख, नाक, कान, वाणी, स्वरयंत्र यानि बल उत्पाद प्रेरणा संचालक है। इसमें विकृति आने पर संबंधित उर्ध्वजन्तुगत विकार पैदा होते है।

(5) व्यान - शरीर के समस्त अवयवों में व्याप्त होकर समस्त स्त्रोतों का संचालन नियमन नियंत्रण करता है इसमें विकृति आने पर थकान, ज्वर, उठने-बैठने, पसीना, त्वचा, आक्षेप, पलक झपकाने से समझाने विकार उत्पन्न होते है।

शरीर के विभिन्न विभाग मंत्रालय एवं क्षेत्र मुख्य प्राणों जिम्मे दिये गये है। उनके कार्यों का सुसंचालित करने के लिए उनके पांच निजी सहायक (पी. ए.) भी प्रदान किये गये ताकि स्वास्थ्य सतत बना रहे। पांच सहायक उपप्राण निम्न हैं -

प्राणोऽपानः समानश्चोदान व्यानौ तथैवच।

नागः कूर्मश्च कृंकलोदेवदत्तो धंनजयः।।

प्राण का सहायक नाम उपप्राण है जो शरीर का शुद्धि करण करता है कूर्म नेत्रो के झपकाने एवं खोलने में व्यान की सहायता करता है कृक्ल भूख प्यास, देवदत्त, जंभाई तथा धंनजय पोषण एव मृत्युपरांत शरीर का विघटन के काम में सहायता करते है। प्राणायाम के द्वारा इन समस्त प्राणों की अनुभूति होती है तथा प्राण ऊर्जा का सम्वर्द्धन होता है।

मनोमय कोष (**Astral sheath**)

मनोमय कोष, प्राणमय कोष से सूक्ष्म से (**Subtle**) होता है मन धातु से मन से शब्द बना होता है जिसका अर्थ मनन करना होता है जो मनन करता है वही मनुष्य है। मनस या मन वह साधन तथा उपकरण है जो किसी भी अच्छे बुरे कर्म के लिए जिम्मेदार है। शरीर के समस्त इन्द्रियां मन के द्वारा ही संचालित होती है। मन निर्जिव होते हुए भी चेतन तत्व से जुडकर सुख दुःख आदि संवेदनाओं का ज्ञान कराता है मन का स्थान दिल तथा दिमाग को माना गया है। सत्व, रजस तथा तमस मन के गुण है इन तीनों की उपस्थिति कर्मों बेग सभी व्यक्तियों में होती है। सत्व प्रकाश रजस सक्रियता तथा तमस आलस्य प्रमाद अंधेरे का सूचक है। सात्विक प्रकृति का व्यक्ति सुख राहिल एवं प्रमादी होता है। मन्यते बुध्यते अनेन इतिमनः अर्थात सोचना चिन्तन करना आदि मन के कार्य है। मन द्वारा ही ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय सक्रिय होती है। मन के द्वारा ही ये नियन्त्रित होती है।

मन का उद्भव सात्विक अहंकार से हुई है अपने समस्त इन्द्रियों के विषयों के बाहरी संवेदना से अन्दर की ओर लौटाने (प्रत्याहार) धारणा एवं ध्यान के द्वारा मनोमन कोष से परिचित होने में सहयोग मिलता है। म नही मनुष्य के बंधन तथा मोक्ष (मोक्ष का क्षय) का कारण है ।

मनएवमनुष्याणां कारणंः बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयासंक्तं मुक्तै निर्विष्यं स्मृतम।।

मन की विषयों की ओर प्रवृति होती है तो सांसारिक एवं निवृति होने पर आध्यात्मिक मन की विषयों की ओर प्रवृति होती है। सांसारिक बन्धन दुःखों एवं रोग भण्डार होता है आध्यात्मिक जगत सतचित आनन्द का आगार होता है। मनोमय कोष को देखने में सक्षम व्यक्ति प्रवृति से निवृति की ओर यात्रा करता है। स्थूल से सूक्ष्मता की यात्रा विज्ञानमय कोष में प्रवेश करता है। मन के व्यापार को ही चित्र की वृतियां कही गयी है। चित्तवृतियों को मन की सजगता एवं एकाग्रता पूर्वक ही निग्रह किया जा सकता है। मन की सजगता होने पर पांचो ज्ञानेन्द्रिय चक्षु स्त्रोत - घ्राणरसनात्वक तथा पांचो कर्मेन्द्रियों हस्त-पाद वायु उपस्थ वाक का सम्पूर्ण व्यापार विरूद्ध यानि अवरूद्ध होकर रूक जाता हैं और यहीं चित्र वृद्धि निरोधक यानि योग है। (1) मुढावस्था (2) क्षिप्तावस्था (3) विक्षिप्तावस्था (4) एकाग्रवस्था (5) निरूद्धावस्था पांच अवस्थाएं चित्त की होती है।

जब किसी में सत्व एवं रज बिल्कुल दबा हुआ तथा नम सक्रिय एवं प्रधान होता है तो मनुष्य की प्रवृति काम, क्रोध, मोह, लोभ में होती है। अज्ञानता एवं मुर्च्छा के कारण नामसिक प्रवृतियां प्रबल होती है। यह मूढावस्था है। रजोगुण की प्रधानता वालों में नम एवं सत्व दबे हुए होते है जिससे इनमें राग द्वेष, तमोगुण सत्व गुण को दबाने पर अधर्म क्रोधादि जब सत्व तम को दबा देता है ज्ञान धर्म आदि में रजोगुणी की प्रवृति होती है। राग-वितराग, ज्ञान अज्ञान एश्वर्य अनैश्यवर्य धर्म अधर्म के मध्य घडी के पेण्डूलम की तरह रजोगुणी का चित्त अस्थिर रहता है। यह चित्त की क्षिप्तावस्था है।

जब रज तथा तम दबे हुए तथा सत्वगुण प्रधान होता है। ऐसे लोगों का विवरागमय क्रोध मोह से मुक्त होते है। उनकी प्रवृति धर्म, ज्ञान वैराग्य एवं एश्वर्य में होती है। परन्तु रजोगुण चित्त को विक्षिप्त करता रहता है। यह स्थिति विक्षिप्तावस्था कहलाता है। उपर्युक्त तीनों स्थितियां सामान्य एवं स्वाभाविक नहीं है क्यों इससे न योग सधता है न योग सधता है न पदार्थ मिलता है न परमात्मा।

जब एक ही विषय में चित्तवृतियों प्रवाह सतत बहता रहे उसे ही एकाग्रता एवं सजगता कहते है। वर्तमान के प्रतिसतत सजगता ही एकाग्रता है जो स्वाभाविक स्थिति है। रज तथा तम का धुंधलनापन खत्म हो जाता है। चमकते हुए स्फटित की भांति सतचित में आनन्द का प्रार्दुभाव होता है। यह स्थिति विवके ख्याति एवं सम्प्रभात समाधि है।

विवेक ख्याति भी चितकी वृद्धि होती है इस वृति का भी जब निरोध हो जाता है सारी मन की ग्रंथिया संस्कार निरोहित हो जाते है समस्त वृत्तियों अविद्यादि पांचो क्लेशों अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश (मरने का भय) समेत तक माशय जन्मादि के बीज नष्ट हो गई हो है वह स्थिति निरूद्धावस्था होती है। यही योग का परम लक्ष्य है।

जैसे-जैसे चित्त पवित्र होता जाता है वैसे-वैसे हम विज्ञानमय एवं आनन्द कोष में प्रवेश करते है। और उस आवरण को देखने की क्षमता की बढती जाती है। प्राण ऊर्जा सक्रिय एवं जाग्रत होती है।

विज्ञानमय कोष (Wisdom sheath – enlightened body)

मनोमय कोष से सूक्ष्म विज्ञानमय कोष है जहां व्यक्ति की बुद्धि, चित्त तथा रसरूप गंध, स्पर्श, शब्द द्वारा दिव्य सूक्ष्मतर ज्ञान प्रज्ञान का बोध होता है। विज्ञानमय कोष से आत्मा का परम स्वरूप आच्छादित है। अहंकार एवं बुद्धि से आवृत्त आनन्द कोष है। आनन्द कोष को चारों तरफ से छोटे हुए है विज्ञानमय कोष। विज्ञानमय कोष भोगत्व, सुखित्व आदि अभिमान विज्ञानमय कोष के गुण है। मनीषा, मेघा, धृति, घी-मति, मन आदि बुद्धि वाची शब्द है जो विज्ञानमय कोष को अलंकृत करते हैं। वेदों में (ऋग्वेद में 3 3 , सामवेद में 7 3 तथा अर्थवेद में 2 7 बार) घी का प्रयोग हुआ है। मति भी कइ मंत्रों में प्रयुक्त हुआ है। ये सभी ज्ञान की प्राय मिव्यता को प्रतिपादित करते है। क्योंकि ज्ञान की यज्ञाग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है। "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मासात्कुरूते" तथा (गीता 4 .3 7) ज्ञान रूपी नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-सागर से अच्छी तरह तर जायेगा - "सर्वं ज्ञानप्लवनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि" (गीता 4 .3 6) इसलिए ज्ञान के समान पावन पवित्र करने वाला निःसन्देह दूसरा कोई साधन नहीं है। "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (गीता 4 .3 8) अतः कर्मो में समावृष्टि समस्त दोष एवं विकार को ज्ञान दूर करता है। पवित्र चित्त एवं पावन मन से मनोमय कोष की साधना करते हुए सतत शान्ति की प्राप्ति से प्रसन्न मन अमंग शांति की कामना की पूर्ति पवित्र एवं प्रखर बुद्धि करती है।

वास्तव में बुद्धि जागतिक ज्ञान विज्ञान का बोध कराती है। धृति, धारण, रिजनिंग, निर्णयात्मक, ज्ञान मूल्यांकन तर्क के विवेक स्मरण मेघा मति मनीषा प्रज्ञान आदि शक्ति का केन्द्र बिन्दु बुद्धि ही है। इसका निवास स्थान मस्तिष्क के उपरी हिस्सा ब्रहमरन्ध्र (हिप्पोकैम्पस एरिया) है जो सूर्य के सदृश तेजोमय प्रकाश पुंज है। ज्ञान पिपासा इस ज्योति पुंज को बुझने नहीं देती है। सतत विकासशील पुनरूउदभवन गुणों से युक्त है। सत्व रजस तमस के कमोबेश के कारण बुद्धि का मन के द्वारा हृदय से सतत सम्बन्ध बना रहता है। चित्त में उठने वाले संस्कार से मन चगमगा उठता है उसकी किरणें में बुद्धि में पहुंच कर संस्कारों को स्थूल रूप देती है। तथा मन की सहायता से इन्द्रियों को कर्म में संलग्न करती है। इस प्रकार यतो बुद्धिस्ततः शांतिः जहां बुद्धि है शांति है सुख है।

बुद्धि का प्रखर तेजस्वी एवं शुद्ध तम रूप ऋतुम्परा प्रज्ञा है जो स्थित प्रश्न पुरूषों में स्वतः प्रकट होती है। जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार कराती है प्रकृति पुरूष का मेट मिटाकर जीवन मृत्यु के पाश से मुक्त करती देती है। हर समस्या का समाधान कर समाधिस्थ करती है।

बुद्धि के साथ अहं यानि मैं मेरा ममत्व जुडा है अहं का विराट समष्टि रू‍ अहं ब्रहमाहिम तत्वमसि आयम आत्मब्रहम है। अहं हृदय में विद्यमान आनन्दमय कोष और कारण शरीर में निवास करता है। चित्त तथा प्राण से गहरा सम्बन्ध है चित्त के संस्कार को बुद्धि तक तथा बुद्धि से नवीन संस्कार को चित्त तक पहुंचाने का काम करता है। अहं की उत्पति महत तत्व तथा पंचभूतों ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों तथा मन की उत्पति अहं से होते है। अहं भी त्रिगणात्मक है। सात्विक अहं प्राण तथा चित्त को निश्चित शान्त कर आत्म बोध एवं साक्षात्कार में सहभागी है। वही राजसी अहं प्रत्येक ज्ञान एवं कर्म में समत्व भाव पैदा ”ममेदम“ को दृढ बनाता है चित्त तथा प्राण उद्विग्न गामी बनाता है। तमस अहं अज्ञान के अंधेरे में बुद्धि एवं ज्ञान को कुंठित करके कुमार्ग गामी बनाती है। एक ओर अहं के कारण राग द्वेष आसक्ति घमण्ड पैदा होता है। दुसरी ओर आत्मसाक्षात्कार कर मुक्त कराता है।

चित्त भी महत तत्व से उद्भूत है जो हृदयाकाश में शिशु के अंगुठे के आकार के रिक्त स्थान में चित्त का निवास स्थान है चित्त में ही चैतन्य जीवात्मा निवास करती है। चित्त से ही जीवात्मा का ज्ञान होता है। चित्त के द्वारा जीवात्मा ज्ञान एवं कर्म का योग करता है । चित्त ही समस्त संस्कारों वासनाओं कामानाओं स्मृति प्राणशक्ति का उत्पादक एवं योक्ता है। आत्मा के संयोग से ज्योर्तिमय चैतन्य बना रहता है। मुख्य रूप से चित्त जीवात्मा से जुडा है किन्तु गौण रूप से अहंकार प्राण बुद्धि मन तथा इन्द्रियों से भी संबंध रखता है। चित्त भी त्रिगुणात्मक है।

चित्त तथा जीवात्मा का स्व-स्वामीभाव तथा योग्य योग्तास्भाव सम्बन्ध है। चित्त के द्वारा आनन्दमय कोष में प्रवेश हो सकता है। चित्त सदा क्रियाशील है। यह बुद्धि स्मृति एवं संस्कारों का केन्द्रहै। बन्ध एवं मोक्ष का कारण चित्त ही है। संस्कारों का निरोध कर

अहंकार के द्वारा चित्त ही आत्म साक्षात्कार कराता है। विज्ञानमय कोष की साधना प्राण ऊर्जा का प्रबलता से संरक्षण एवं सम्वर्द्धन करता है।

आनन्द कोष (Delight sheath-celesteal body)

विज्ञानमय कोष (**Wisdom sheath enlightened body**) की साधना से आनन्द कोष से परिचित होने का मौका मिलता है। इस स्थिति में आशक्ति विहिन प्रेम प्रसन्नता आनन्द का अहसास होता है। सुन्दर पुष्प के उपवन में प्रवेश करने के पूर्व काफी दुर से ही पुष्पों की सुगन्ध आनी शुरू हो जाती है। चित्र मुदिता तथा आनन्द से भर जाता है। उसी प्रकार आनन्द मय कोष के पूर्व आनन्द कोष की साधना से आनन्दमय चिन्मय कोष की सुगन्ध एवं सौन्दर्य का भान होने लगता है। जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित होकर संयम में होता है। तब आनन्द कोष के समस्त पदार्थों का अलग-अलग ज्ञान होने लगता है। और वह आनन्द मय कोष की यात्रा पर निकल जाता है। प्राण ऊर्जा अवस्था में अद्वितीय बोध के साथ प्रकट होता है।

आनन्द मय कोष (Bliss sheath supereme beingbody)

इसे वैदिक वैज्ञानिकों ने आनन्दमय कोष हिरण्यकोष, देवकोष या देवराजन कहा गया है। यही कारण शरीर या लिंग शरीर का हिरण्यमय कोष होता है। जो हृदय ग्रह्य के हृदय कोष में तीन ओर सृजित त्रिकोण स्थान में सतचित आनन्द स्वरूप आत्मा स्थित है। सांसारिक व्यापार को मूर्त रूप देने वाले ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय आदि के देव यही विराजमान है। निर्विकल्प एवं निर्बीज समाधि के बाद साधक आनन्दमय कोष के साथ सदैव आनन्द स्वरू‌प में स्थित हो जाता है। वेद का हिरण्यकोष उपनिषद् (कंठ) का ”अंगुण्ठ पर्व मात्र पुरूष“ अथवा यों कहें कि समस्त समस्याओं से मुक्त दुःखेष्वनुद्विग्न मनाः सुखेसुविगत स्पृहः। वितरागमय क्रोध स्थित घी मुनिरूचते ”गीता 2 /1 56“ सुख दुःख से विरक्त स्थित प्रश्न समाधि की स्थिति है। सविकल्प निर्विकल्प विचार एवं निर्विचार यदि समाधि की स्थिति में ये चारों स्थितियां रहती है। तो इसे सबीज या से प्रज्ञात समाधि (यानि चित्त के अवलम्बन की जरूरत) कहते है। निर्विचार निर्बीज के अंतिम अवस्था में अतिचेतना (सुपर कन्सस) ब्रहमाण्डीय चेतना से सम्बद्ध होकर ”ऋतुभरांप्रज्ञा“ अवस्था उपलब्ध होता है। इस स्थिति में मन बुद्धि अहंकार प्रकृति पुरूष विवेक अर्थात जडत्व का लय होकर सिर्फ नियामक चेतन तत्व ”पुरूष“ का बोध होता है। निर्विचार के परिपक्व एवं निर्मल रूप हो जाना अध्यात्म प्रसाद है यही परम सत्य ऋवम्मरा प्रज्ञावस्था होती है। समस्त संस्कार बीजों का पूर्णतया क्षय हो जाने पर अनासक्त घी आत्मदर्शन आत्मज्ञान रूपी मेघ से सतत आनन्द बरखता है यही धर्म मेघ समाधि है। इस अवस्था में अविद्यादि क्लेश कर्म संस्कार से पूर्णतया निवृति हो जाती है यही असंप्रज्ञात समाधि है यही आनन्दमय कोष (**Bliss sheath**) संयुक्त आनन्दमय देह (**Supereme being body**) होता है परिस्थिति में इस अवस्था से आनन्द भरता है बरसाता है। इस अवस्था में प्राण ऊर्जा के असीम स्त्रोत से जुडाव होता है।

चारों तरफ प्राण ऊर्जा की अनन्त धारा प्रवाहित होती है। ....
....
....
....

नासिका स्वर एक सूर्यनाडी बायां (इडा) स्वर चन्द्र (नाडी) एवं इन दोनों स्वरों के साधना द्वारा पिंगला नाडी एवं कुण्डलिनी ऊर्जा को उर्ध्वमुखी बनाकर सहस चक्र में स्थित होने का विज्ञान दृढयोग है।

सावधानी - अशक्त, बूढे, बच्चे, शिशु को ज्यादा प्राण ऊर्जा का उपयोग नहीं करें। बच्चों के चक्र छोटे तथा अशक्त एवं बूढे लोगों के संकुचित होते है सघनता से अर्जित करने से खिंचाव पैदा होता है चक्र अर्जित नहीं करें इसका दुष्प्रभाव ब्लड प्रेशर दिल एवं दिमाग पर होता है। दुबार अर्जित करने से पहले आराम कराने बाद में 1 5-2 0 मिनट तक ही ऊर्जा दें। इसकी प्लीहर चक्र भी अर्पित नहीं करें अन्यथा बेहोशी हो सकती है। सौर नालिका चक्र (ऊर्जा केन्द्र) या अन्य कोई भी अंग ज्यादा अर्जित होने पर उस झाड बुहार द्वारा बाहर निकाले या अन्य अंगों के तरफ वितरित कर दें। उच्च्व रक्त चाप वालों को प्लीहा चक्र एवं सौर जालिका चक्र अर्जित नहीं करें, अधिक अर्जित होने पर झाड बुहार अवश्य करें। लम्बे समय तक हृदय चक्र को सीधे एवं सघन अर्जित नहीं करें। पीठ के पीछे अर्जित करें ताकि दिल के साथ अन्य अंगों में ऊर्जा वितरित हो जायेगी। गर्भवती महिलाऐं को अर्जित नहीं करें। आंखों को भी सीधे अर्जित नहीं करें। आंखों के सिर के पीछे अर्जित करें।

उपचार देते समय (रोगी तथा उपचार) सिल्क चमडा, रबर, प्लास्टिक, सिंथेटिक कपडे या सामग्री उपयोग न करें।

<u>7 .4 विभिन्न चक्र</u> - प्राण ऊर्जा उपचार के प्रमुख ग्यारह चक्र (**Gmportane-plexus if bioplusmic energy therapy**)

(1)मूलाधार चक्र (**Coccy and pelvic plexus**) - रीढ के सबसे निचले हिस्से कॉक्सिजेस (**Coccyges or coccyxes**) क्षेत्र में स्थित है। जो भौतिक पार्थिव शरीर को ऊर्जा देता है सशक्त बनाता है प्राणिक ऊर्जा उपचार पद्धति के अनुसार यह चक्र मांसपेशियों, हड्डियों का कंकाल, एड्रिनल, मेरूदण्ड, शुद्ध रक्त के निर्माण, आंतरिक अंगों को नियंत्रण, ऊर्जा एवं ताप संचरण, सेक्स अंगों, शिशु एवं बच्चों के विकास एवं मानव मन व तन को तेजस्वी व ओजस्वी बनाता है इसमें गडबडी से जोडों में दर्द व सूजन, रक्त विकार, कैंसर, ल्यूकेनिया, हड्डियों का टूटना, एलर्जी, जख्म देरी से भरना, जीवनी शक्ति की कमी, शारीरिक विकास में रूकावट आदि होते है। मानसिक रोग होते है।

यह कंकाल जब तक सक्रिय रहता है तो व्यक्ति सशक्त स्वस्थ सक्रिय हष्ट-पुष्ट कम सक्रिय होने पर कमजोर एवं नाजुक बने रहते है। रोग प्रतिरोधक जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है। बुढापे संबधी रोग होते है। बुढे लोगों में इसकी सक्रियता कम होती है। जिस प्रकार पेड का मूलाधार जड मजबूत होने पर हरा-भरा शक्तिशाली एवं दीर्घजीवी होती है। वही काम मनुष्य में मूलाधार चक्र करता है इसलिए इसे मूल या जड चक्र भी कहते है।

(2) काम चक्र (**Urino gerital or sex plexus**) - मूत्र जननांग क्षेत्र में स्थित होने से जननांग जैडर मानव सृजन का केन्द्र है इसमें खराबी आने से सेक्स, शिशु सृजन, मूत्र संबंधी समस्यायें होती है। भृकुटि, कंठ तथा मूलाधार चक्र काम चक्र से संबंधित है। अतः इनमें खराबी आने से काम चक्र भी अस्त व्यस्त होते है।

(3) कटि चक्र (**Lumbar, lumber loin plexus**) - नाभि के ठीक पीछे पीठ में स्थित है। यह भी एडिनल, किडनी को ऊर्जा प्रदान करता है, रक्त चाप को नियंत्रित व नियोजित करता है। इसे सूक्ष्म प्राण ऊर्जा का पम्पिंग स्टेशन कहते है क्योंकि यही से ऊपर के अंगों में भी ऊर्जा प्रसारित होती है।

(4) नाभि चक्र (**Umbilical plexus**) - नाभि में स्थित है। यह छोटी आंत, बडी आंत एवं एपेंडिक्स को अर्जित कर नियमन एवं नियंत्रण होता है। पेट संबंधित रोग, प्रसव, ओज की कमी आदि रोग नाभि चक्र के गडबडी से होता है। नाभि चक्र सिथेंटिक प्राण ऊर्जा (**Synthetic bioplus matic energy**) बनाता है जो ओजस्वी प्राण ऊर्जा से अलग है इसे भी ”की“ (**KI**) कहते है। खराब मौसम में इस ऊर्जा की कमी होती है।

(5) प्लीहा चक्र (**Splemic plexus**) - आमाशय के बायीं ओर अगले सौर जालिका तथा नाभि चक्र के बायीं तरफ मध्य में अग्र प्लीहा चक्र तथा पिछला प्लीहा चक्र अग्र प्लीहा चक्र के पीछे पीठ में स्थित है। दोनों प्लीहा चक्र वायु प्राण ऊर्जा एवं वायु प्राण गोसिका का प्रवेश द्वारा है जो बडे चक्रों तथा शरीर द्वारा पचित अवशोषित एवं सात्म्य प्राण ऊर्जा को समस्त अंगों को ऊर्जा प्रवाहित करता है।

(6) सौर जालिका चक्र (**Solar network plexus**) - छाती के नीचे पसलियां के मध्य आगें की ओर स्थित अग्र और जालिका चक्र तथा पीछे पीठ के पास स्थित पश्य और जालिका चक्र होता है। इन दोनों को मिलाकर सौर जालिका चक्र कहते है। जो डायफ्राम, फेफडे, हृदय, अग्न्याशय आमाशय यकृत, अपेंडिक्स तथा शरीर के अन्य अंगों को अर्जित कर नियंत्रित एवं नियमितत करता है। रक्त को प्रभावित करता है। सूक्ष्म ऊर्जा इसी से प्रवाहित होकर ऊपर की ओर जाती है। सफाइ करने के बाद ही इसे अर्जित करें अन्यथा उपद्रव हो सकते हैं। सौर जालिका को घनीभूत ऊर्जा शीघ्र दूर करना

चाहिए अन्यथा शरीर में गर्मी बढ जाती है। इस चक्र में गडबडी में होने से उपर्युक्त अंग संबंधित रोग होते है। कॉलेस्टरॉल वृद्धि, मधुमेह, अल्सर, गठियादि हृदय रोग होते है।

(7) हृदय चक्र (**Cardiac plexus**) - छाती के मध्य में अग्र हृदय चक्र स्थित है जो हृदय, रक्त संचार तथा चापमस ग्रंथि को नियंत्रित करता है भावनात्मक तनाव के प्रति सौर जालिक चक्र संवेदनशील होता है जिससे अग्र हृदय चक्र प्रभावित होता है दोनों हृदय चक्र के कार्य अर्न्त सम्बन्धित होते है। (क्योंकि दोनों जीवद्रव्य दोनों नाडियों द्वारा जुडे हुए है इसलिए) हृदय के ठीक पीछे पीठ की तरफ पश्च हृदय चक्र स्थित है जो फेफडों तथा थायरस ग्रंथियों को अर्जित करता है। इसमें गडबडी होने से दमारोग होता है।

अग्र हृदय चक्र को ज्यादा देर तक अर्जित नहीं करें क्यों धनापन बढ जाता है और वही स्थिर हो जाता है जबकि पश्च हृदय चक्र में धनीभूत ऊर्जा आसानी से फेफडों और शरीर के अन्य भागों में संचरित हो जाती है।

(8) कंठ चक्र (**Carotid plexus**) - कंठ के बीच स्थित है। थायरॉयड पैरा थायरॉयड गला तथा लिम्फैटिक तंत्र को नियंत्रित करता है। शरीर में ऑक्सीजन कार्बनडाइ ऑक्साइड तथा हाइड्रोजन आयन को संतुलित करता है। इसका संबंध काम चक्र से भी है। गडबडी होने से, धेधा, गला में खराश, आवाज बन्द होना दमादि रोग होते है।

(9) भृकुटि चक्र (**Supra chiasmatic plexus**) - भौहों के मध्य में स्थित है जो पीयूष ग्रंथि अन्तः स्त्रावी बाहय स्त्रावी स्नाय स्त्रावी (न्यूरोक्राइन) तथा कुछ हद तक मस्तिष्क एवं पुरे शरीर को अर्जित करता है इसलिए इसे मुख्य चक्र कहा जाता है ये सभी बडे छोटे चक्रों को नियंत्रित एवं संचालित करता है अतः इसे अर्जित करने से सारा शरीर अर्जित हो जाता है इस चक्र के अर्जित होने से सभी चक्र प्रकाशित होकर सारे शरीर को अर्जित करते है। इसे प्रार्थना ध्यान साधना द्वारा उपचारक ऊंगली या हथेली से ब्रहम चक्र ललाट चक्र चा भृकुटी चक्र को स्पर्श करते है। प्राण शक्ति का प्रवाह तेज होने से कुछ स्वास्थ्य साधक मूर्च्छित हो सकते है। भृकुटी चक्र में गडबडी होने से एलर्जी, कैसर, दमा तथा स्त्रावी ग्रंथियों से सम्बन्धित बीमारी होती है।

(1 0) ललाट चक्र (**Medulla plexus**) - ललाट के बीच स्थित पिनियस ग्रन्थि तथा तंत्रिका तंत्र हृदय रक्त संचार, लार, निगलना याद्दाश्त आदि को नियंत्रित एवं अर्जित करता है। गडबडी से लकवा, मृगी, स्मरण शक्ति संबंधित रोग होते है। इस चक्र को अर्जित करने से सारे संस्थान में प्राण ऊर्जा का संचार होता है।

(1 1) ब्रहम चक्र (**Crown plexus or cerebral plexus**) - सिर के तालू पर स्थित है। यह पिट्यूटरी, पिनिपल, मस्तिष्क तथा शरीर के समस्त संस्थान को नियंत्रित एवं अर्जित करता है यह चक्र कीप चा अंतःरिसीय ब्लेक होल की तरह है जहां

से प्राण ऊर्जा शरीर में प्रवेश कर सारे शरीर में प्रवाहित होती है। अतः हर रोग में इसे अर्जित करने से साथ होता है। इसमें खराबी होने से मस्तिष्कीय शारीरिक तथा मानसिक रोग होते है।

प्राणिक उपचार मे रोगाक्रान्त अंग को सीधे या उसके नजदीकी चक्रों या दुर के चक्रों को अर्जित किया जाता है। उपचारक के अनुभव गम्प ज्ञान ज्यादा प्रभावशाली होते है। पुरें शरीर को अर्जित करने मे सौर जालिका को धैर्य एवं आराम से अर्जित करें। मध्य में होने से सौर जालिका प्रभाव अंगों को प्राण ऊर्जा का संचार करता है।

प्राणिक शक्ति या ऊर्जा की तरह योग विज्ञान में भी ऊर्जा के अनेक चक्रों का वर्णन आया है। वास्तव में ये चक्र ऊर्जा के सूक्ष्म जैव आण्विक केन्द्र (**Bioatomic energy centre**) है। योगी इन केन्द्रों को जाग्रत करके ऊर्जा के अजात्य स्त्रोत जुड जाते थे। पशु मानव से असुर मानव असुर मानव से मानव से देव मानव देवमानव से महामानव की मात्रा मृत्यु से अमरत्व की यात्रा असत्य से सत्य की यात्रा विविध बन्धनों एवं मोह माया मत्सर से मुक्त मोक्ष (मोह का क्षय) की यात्रा कामिनी, कंचन, फिर्ति एवं काया से मुक्त परम ऐश्वर्य एवं परम प्रभत्व की मात्रा, पशुत्व से देवत्व की यात्रा इन ऊर्जा के केन्द्रों या चक्रों के जाग्रत होने से होती है।

दुनिया का सबसे पुराना जीवन विज्ञान का महाशास्त्र वेद के अनुसार -

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पुरयोध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गों ज्योतिषावृतः।। (अथर्व 1 0 -2 -3 1)

भावार्थ - शरीर को देवो की नगरी से निरूपित किया जाता है इस नगरी में 60 0 से 1 0 0 0 प्राण ऊर्जा प्रत्येक प्राणी में परमात्मा ने प्रमुखता ने दिया है। उस प्राण ऊर्जा को जाग्रत करना महत्वपूर्ण है। सभी इस प्राण ऊर्जा को जाग्रत कर सकते है। प्राण ऊर्जा को प्राप्त करने में सर्वाधिक अवरोधक आदमी का घमंड एवं अहंकार है। जब आदमी अहं शून्य एवं अहंकार मुक्त होता है। जो अस्तित्व से सतत बरसाही ऊर्जा को ग्रहण करने की क्षमता बढ जाती है। प्राण ऊर्जा बढाने के लिए सुबह शाम एक-एक घंटे चक्रों का ध्यान करें। प्राण ऊर्जा से आरोग्य एवं जीवन का सृजन होता है। इसलिए प्राण ऊर्जा को सृजनात्मक कॉस्मिक या ब्रहम ऊर्जा भी कहते है। कॉस्मिक एनर्जी से ही सारी सृष्टि एवं ब्रहमाण्ड का सृजन हुआ है। हम भी ब्रहम स्वरूप है। ईश्वर अंग जीव अविनाशीय है। हमारे अन्दर वही डिवाइन कॉस्मिक एनर्जी है वह एनर्जी 9 0 % प्रसुप्त पडी हुइ है। जाग्रत 1 0 % एनर्जी के कारण संसार के सारे व्यापार के चल रहे है।

योग विज्ञान के अनुसार ऊर्जा का अनन्त स्त्रोत मूलाधार मे प्रसुप्त अवस्था में पडी हुई है। मात्र इसका 1 0 प्रतिशत वह भी मात्र अधोमुखी ऊर्जा संचार के कारण व्यक्ति काम वासना इच्छा के वशीभूत हो कर बच्चा जन्माने से लेकर हर प्रकार के काम में प्रवृत है। फ्रायड के अनुसार हर काम के पीछे काम (सेक्स) की खास की भूमिका है। और यही

कारण है कि खेल से लेकर हर प्रवृति में सेक्स (काम) का बाला बाला है। मूलाधार में बंधी प्रसुप्त ऊर्जा को उर्ध्वमुखी कर दिया जाये तो मनुष्य में छिपी अनेक संभावनाएं उद्भाटित होनी है। योग विज्ञान में अधोमुखी ऊर्जा को उर्ध्वमुखी करने के अनेक प्रयोग है। कपाल भाति का प्रयोग एक सहज एवं सरल प्रयोग है। इससे जीवन का रूपान्तरण किया जा सकता है। अधोगामी ऊर्जा उर्ध्वगामी होने लगती है। कपाल भाति का प्रयोग भलीभांति हो जाने के कुछ दिनों के बाद एक प्रयोग करें सांस बाहर फेंके निकालें। नाभि को भीतर खीचे। जितना गहराई से पेट को अन्दर खीचोंगे सांसे को पूर्णतया बाहर निकाल कर फेंको ऐसा करने से नाभि के अन्दर वैक्यूम शून्यता पैदा होती है। उस शून्यता को भरने के लिए मूलाधार की सूप्त ऊर्जा जाग्रत होकर नाभि की तरफ खींच जाती है। इसे और सक्रिय करने के खडे होकर एडी से गुदा द्वार के मध्य में चोट करते हुए सांस को बाहर फेंके तथा पेट व नाभि को भीतर खींचे। प्रतिदिन प्रारम्भ में 50 से 1 0 0 बार करें। धीरे-धीरे बढाने कर 2 0 0 बार करें यह प्रयोग खाली पेट ही करे। गुदा द्वार के मध्य में स्थित मूलाधार पर चोट करते समय सांस को बाहर फेंकते समय आन्तिरिक ऊर्जा को ऊपर को खींचे आकर्षित करें। शून्यत पैदा करने एवं आन्तिरिक बल से आकर्षित करने से मूलाधार शक्ति उर्ध्वामुखी होकर उर्ध्वगमन करेगी। और स्वाधिष्ठान में पहुंचेगी। स्वाधिष्ठान सेक्स केन्द्र है। प्रायः लोग सेक्स के बाद ऊर्जा अधोगामी होने के बाद उदासी एवं विषाद का अनुभव करते है। लेकिन वही ऊर्जा नाभि के मध्य गमन करती है। तो हर्ष एवं उल्लास का अनुभव करते है। मूलाधार एंव स्वाधिष्ठान की ऊर्जा अधोगामी होने के कारण ही आदमी की सुख सुविधा की आकांक्षाएं बढती जाती है। वह उसे पूरा करता है उससे क्षणिक कुछ घंटो, दिनों, महिनों तक ही सुख का अहसास होता है। फिर उसे उपलब्धियों से बोरियत महसूस होने लगती हैं। फिर वह उसे या इच्छाओं एंव वासनाओं को पूरा करने वह समस्त व्याधियों से मुक्त उर्ध्वरेत ओजस्वी एवं तेजस्वी पथ प्रशस्त करता है उर्ध्व मुखी होने में लग जाता है लेकिन वह कभी तृप्त नहीं होती है लेकिन यही ऊर्जा मानव को विकास की एक नूतन आयाम देती है। नई दृष्टि देती है सांस तेजी से बाहर फेंको रेचक करो नाभि में वैक्यूम निर्वात पैदा होगा, ऊर्जा उर्ध्वगमन करेगी शून्य निर्वात नाभि को भरने के लिए। स्वाधिष्ठान चक्र को भेदती हुई ऊर्जा नाभि चक्र यानि मणिपुर चक्र की ओर आ जाती है। पेंदा बन्द हो गया तो ऊर्जा भरने लगती है इकट्ठी होने लगती है फिर वही ऊर्जा नाभि या मणिपुर चक्र से ऊपर की यात्रा पर निकल पडती है। हृदय एक नई संवेदनात्मक ऊर्जा से भर जाता है। अनाहत हृदय केन्द्र जाग्रत होने से मनुष्य सही अर्थों में प्रेम से भर जाता है। भाव दशा बदल जाती है। आस-पास का वातावरण प्रेममय हो जाता है। अनाहत केन्द्र जाग्रत व्यक्ति जहां भी जाता है वहां की हवा फिजा सभी कुछ बदल जाती है। अनाहत हृदय शाश्वत प्रेम का केन्द्र है जो बन्द पडा हुआ है व ऊर्जा वहां पहुचते ही हृदय केन्द्र खुल जाता है। 1 2 परपुडियों वाला छत-कमल खिल जाता है। जिसकी सुगन्ध आस-पास चारों तरफ फैलने लगती है। इस प्रेम के प्रभा मंडल के जद व सीमा में आने वाला हर प्राणी प्रेममय शान्त हो जाती है ऊर्जा बढती जाती है। शाश्वत अनन्त प्रेम का आजस्त स्त्रोत खुल जाता है। ऊर्जा उर्ध्व यात्रा करती हुई कंठ विशुद्ध चक्र को खोलती है। विशुद्ध चक्र के खुलते ही व्यक्ति विशुद्ध परम पवित्र सत्य निष्ठ हो जाता है। ऐसे व्यक्ति की

वाणी में मधुरता, सौन्दर्य आकर्षण पैदा हो जाता है। वाणी काव्यात्मक प्रेममय हो जाती है। तृप्ति प्रदान करती है। मौन रहने पर भी मनुष्य के आस-पास के वातावरण में स्वर रहित संगीत बहता है जो अणु परमाणु को तृप्त कर दिग-दिगन्त तक फैलने लगती है। ऊर्जा कंठ में पहुंचकर विशुद्ध चक्र का जाग्रत करती है तो कृष्ण की गीता, महावीर की वाणी, बुद्ध का धम्मपद मुहम्मद का कुरान, वाल्मिकी का रामायण का गान निसृत होता है भरता है बरसता है। बल पूर्वक लिखान हो जाता है जैसे वेद की वाणी उतरी है। कंठ वही है लेकिन ऊर्जा आवृत्त जाग्रत विशुद्ध चक्र से परमात्मा ही अभिव्यक्त होता है उस समय बरसी वाणी प्रभू की अभिव्यंजना होती है।

कंठ या विशुद्ध चक्र ऊर्जा से ओत प्रोत हो जाती है। डूब जाती सराबोर हो जाती है। तो ऊर्जा तीसरे नेत्र भूमध्य (**Drgan of clairvoyance or thierdey**) पर पहुंचती है तभी हम जगत को सही देखने में समर्थ होते है। दृष्टि बदल जाती सृष्टि बदल जाती है। मूलाधार में बन्द ऊर्जा के अधोगामी होने के कारण मोह माया मत्सर, कामिनी किसी कंचन दिखाई देता है लेकिन यही ऊर्जा उर्ध्वगामी समस्त चक्रों को भेदन करती हुई तीसरे नेत्र आज्ञा चक्र यानि (**Suprachias-matic nucleus**) पर पहुंचती है तो व्यक्ति के सारा जगत ही परमात्मा दिखने लगता है। समस्त आकार में निराकार अमरत्व शाश्वत आत्म तत्व दिखाई पडने लगती है। नजर बदल जाती है। नजारे बदल जाते है। सोच बदलती है। सितारे बदल जाते है। ऊर्जा प्रवाह बदल जाती है। किनारे बदल जाते है। त्रिनेत्र यानि भौहों के मध्य मे ऊर्जा प्रादुर्भाव होते ही व्यक्ति सही अर्थों से अथन को देख है। सत्य देखकर दर्शन कर के दार्शनिक विचारक नहीं होता है। कांट, हीगल, अर्थर, स्कोपनहॉअर, प्लेटों, बर्टेड रसेल, एरिस्टोटल आदि विचारक है किन्तु बुद्ध महावीर शंकर, कपिल, भारद्वाज, मैत्रेयी कणाद सही अर्थों में दार्शनिक है। दार्शनिक सत्य को देखता है विचारक सत्य अंधेरे में टटोलता हैं तीसरी आंख खुलते ही आदमी की सारी मनोवृति या शान्त हो जाती है। सत्य अनुभव में आने लगता है। मन वचन कर्म में प्रमाणिकता आ जाती है व्यक्ति सही अर्थों में अपना तथा अपने चित्तवृत्तियों का मालिक बन जाता है। स्वामी बन जाता है। योगियों में वही स्वामी है। जिसकी त्रिनेत्र आज्ञा चक्र जाग्रत हो गयी है। वही आज्ञा देने में समर्थ हो जाता हैं। उसकी आज्ञा प्रकृति भी मानती है।

फिर ऊर्जा उर्ध्वगमन करके सहास्त्रार को स्पर्श करती है। ऊर्जा ऊपर उठकर यह क्रांति यह विस्फोट घटित होता है। सहस्त्रार यानि सहात्र परंपुडियो वाला कमल खिल जाता है। समष्टि महोत्सव बनाती है। बुद्धत्व घटता है जिनत्व का प्रादुर्भाव होता है। समत्व उद्घाटित होता है। कृष्णत्व जागता है। शिवत्व उद्भार्षित होता है। सही अर्थों में मनुष्यत्व प्रकट हो जाता है।

इन सभी चक्रों का जागरण तभी होता है। जब हम अहं शून्य हों। एक बार राधाजी ने बांसुरी से पूछा अरी सुन रे बांसुरी तेरे में क्या खूबी है जो कृष्ण तुझे होठों से लगाये रहते है। तुझे कभी छोडते नहीं है। हम सभी गोपियां उन्हें इतना प्यार करती है। तडपती

है फिर भी कान्हा हमें इतना नहीं चाहते जितना तुम्हें चाहते है क्या राज है इसका बता तो सही। बांसुरी ने सीधे सहज जवाब दिया इसमें न कोइ रहस्य है न कोइ राज है। कोइ खूबी हो न हो मैं कैसी कुरूप हूं। मेरे अन्दर मेरे सीने में कितने जख्म है। फिर भी मेरे प्यारे प्रभू का प्रेम मिला है कारण कि मैं अन्दर से शून्य खाली हो गयी हूं जो भी अन्दर से खाली शून्य हो जाता है प्रभू का प्रेम बरस जाता है उससे ईश्वरीय संगीत झरने लगता है। यही वह महान ऊर्जा है जो अहं शून्यता होने पर हर किसी के अन्दर मूलाधार से सहस्त्रार तक बहना शुरू हो जाता है। इस ऊर्जा का उपयोग दूसरों के दुःख रोग शोक पीडा को दूर करने में भी कर सकते है। लेकिन इसके लिए दुःखी एवं रोगी प्राणी में इस रोग की क्षमता भी होनी चाहिए। मेरी हीलिंग कर दो मैं जानू की आप होता है। इस प्रकार अहंकार पूर्ण चुनौती देने वाला तथा हीलर के अहंकारों को बढाने वाला मै करके दिखा दूंगा ऐसी सोच हींलिग में असफलता प्रदान करती है। प्राण ऊर्जा से हीलिंग करते समय सद्भाव, सहानुभूति, स्नेह, सौहार्द एवं मैत्रीपूर्ण भाव एवं वातावरण होने पर ही सफलता मिलती है। हीलिंग के लिए स्वच्छ वातायन युक्त कमरा या वातावरण हो, प्रातः कालीन शान्त समय हो प्रार्थना पूर्ण पर्यावरण हो, करूणा का भाव हो स्वंय हीलर को भी आसन प्राणायाम ध्यान द्वारा ऊर्जा से ओत-प्रोत होना आवश्यक है। प्रभु से प्रार्थना करें - मेरे प्यारे प्रभु मेरा कुछ नही सब तेरा है हम बांस की पोली पोंगरी बांसुरी की तरह है तुम्हारी ऊर्जा इससे बढेगी और उस ऊर्जा से रोगियों का रोग दूर होगा। रूग्ण अंग के पास हथेलियों को डेढ दो इंच की दूरी पर रखते हुए अनुभव करें व भावना से भरे प्रभु की दिव्य ऊर्जा रोगी के शरीर में जा रही है जितना गहरा भाव होगा रोगी को उतना ही लाभ होगा। हमेशा अहंकार शून्य रहे दिव्य परमात्मा ऊर्जा आपसे प्रवाहित होकर रोगी में प्रवाहित हो रही, आप कुछ भी नहीं है बल्कि सिर्फ माध्यम है रोगी के प्रति धन्यवाद दें उसने आपको सौभाग्य प्रदान किया है सेवा का मौका दिया है। हीलर कभी घमंड नहीं करे कि उसने ठीक किया है या उसने उपकार किया है बल्कि प्रभु एवं रोगी की कृपा से आप को शानदार शुद्ध अवसर मिला है। प्यारे परमात्मा के माध्यम होने का। उपचार देने के बाद भी प्रार्थना एवं ध्यान करके शरीर को ऊर्जावान बनायें अन्यथा रोगी की नकारात्मक रूग्ण ऊर्जा हीलर को रूग्ण बना सकती है। इसी भाव से दुरस्थ रोगों के चित्र, उसका स्पर्शित वस्त्र के साथ प्रयोग करके रोगी का उपचार कर सकते है। 1 5 मिनट तक इस प्रकार का उपचार पर्याप्त है। दुरस्थ उपचार देते समय रोगों को एक निश्चित समय निर्धारित करके बता देना चाहिए ताकि वह सम्प्रेषित उपचारात्मक प्राण ऊर्जा को भलि भांति ग्रहण करके की स्थिति में ज्ञानादि करके ध्यान एवं प्रार्थना भाव में लीन रहे।

7 .5 प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता तथा प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व एवं संबंध -

प्राण ऊर्जा बढाने के लिए दीर्घ श्वसन प्राणायाम 1 से 8 तक गिनते हुए सांस भरे हुए 9 -1 0 तक गिनते हुए सांस रोके 1 से 8 तक सांस निकाले तथा 9 - 1 0 तक रोके इस प्रकार लयात्मक दृष्टि से सांस से प्राण ऊर्जा सारे शरीर में तेजी से फैल जाती है सांस निकालते समय पेट हल्का सिकुडेगा तथा लेने समय पेट फूलेगा। यह क्रिया

अत्यन्त सहजता, गहरा धीमें-धीमें एवं लम्बा होगा हाथों को ऊपर उठाकर या छाती के बगल में रखकर ब्रहमाण्ड से आप सांसों तथा हाथ के चक्रों के द्वारा प्राण ऊर्जा ग्रहण कर रहे है। यह बोध एवं अनुभव करें।

भूमि से प्राण ऊर्जा प्राप्त करने के लिए को साधु सन्यासी नंगे पैर ही रहते है। यात्राएं करते है। खास करके जैन साध्वी सन्यासी साधु नंगे पैर ही रहते है। तथा सूर्यास्त के बाद एवं सूर्योदय के पूर्व यात्रा नहीं करते है। दिगम्बर जैन साधु तो नंगे पैर एवं नंगे बदन रहते हुए सूर्य,वायु आकाश, पृथ्वी से भरपूर ऊर्जा ग्रहण करते है। सूर्योदय के पश्चात एवं सूर्यास्त के पूर्व पेड पौधे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा सूर्य की रोशनी में भरपूर आक्सीजन प्रदान करते है। साथ ही आक्सीजन + सूर्य रोशनी से आविष्ट होकर प्राण ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाती है।

चीन की पद्धति की-कुंग (क्विगांग) में भू-प्राण ऊर्जा को प्राप्त करने की पद्धति प्रचलित है। भौतिक शरीर में पृथ्वी तत्व की प्रधानता होने के कारण उसकी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य भू प्राणशक्ति अपेक्षाकृत ज्यादा प्रभावशाली है। हड्डी या अन्य अंगों की टूट फूट जल्दी ठीक होती है। जूते-चप्पल उतार दें। हाथ के अंगूठे से तलवे के मध्य में मुलायम नमे हिस्से को हाथ के अंगूठे से दबायें। तलवे पर ध्यान एकाग्र कर उपरोक्त प्राण ऊर्जा श्वसन प्रक्रिया 1 0 बार करें। इससे पैर में मौजूद एक-एक छोर चक्र की भू-प्राण शक्ति की ग्रहण शीलता बढ जाती है। दोनो पैर कुर्सी पर बैठकर या खडे रह कर नंगे पैर घास पर चलते हुए भी यह प्रयोग कर सकते है।

पेडों से प्राण शक्ति प्राप्त करने के लिए हाथों को प्राण वायु शक्ति से आविष्ट एवं अर्जित करने के लिए हाथ के चक्रों पर ध्यान एकाग्र करें तथा उपरोक्त वायु ऊर्जा के लिए प्राण शक्ति श्वसन प्रक्रिया करें । फिर स्वस्थ पेड के पास खडे हो कर हथेलियों को प्राण ऊर्जा ग्रहण याचक मुद्रा (हाथों की कटोरी) में पेड से अतिरिक्त प्राण ऊर्जा ग्रहण के लिए प्रेम भाव से याचना करें। उससे या चक्र प्रेम भाव से स्वीकृती ले। उसके समीप रखें। बीच-बीच में हाथ के चक्रों पर श्वसन प्राण ऊर्जा प्राप्त करते हुए पेडों से प्राणशक्ति प्राप्त करें। दस बार करने के बाद पेड से प्राप्त प्राण ऊर्जा के लिए उसे धन्यवाद दें। इस प्रयोग के दौरान या बाद में शरीर में कम्पन्न झुरझुरी या सन्नापन महसूस हो सकता है। घबराये नहीं हाथों को अर्जित करते समय उंगलियों के पोरों पर ध्यान देने से उंगली पर मौजूद छोटे चक्र उधीप्त होते रहते है। जिससे अगुंलियां अधिक संवेदनशील बनी रहती है। संवेदनशील उंगुलियों अंगों के रोग एवं आरोग्य की स्थिति को जांच करने में ज्यादा संवेदन शील एवं सक्षम है।

सीधे जमीन पर या जमीं पर सूती, चादर, दरी, घास की चटाइ पर लेंटे। लेटने के पूर्व शरीर की हर प्रकार से झाड फुहार कर सफाइ करें। जिससे धरती की प्राण ऊर्जा शीघ्रता से भरेगी। वायु मंडल के अपेक्षा भूमि के पास 5-1 0 गुना ज्यादा मात्रा में प्राण ऊर्जा होती है। उस ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए समुद्र झील या नदी में तैंर ले फिर भूप्राण ऊर्जा को अपने अंदर भरने के लिए जमीन के नीचे शरीर को गाडा भी जा सकता है।

प्राण ऊर्जा के विभिन्न चक्रों मे जब ऊर्जा आती है घडी की दिशा में घुमते है जब उल्टी दिशा में घुमते है प्राण ऊर्जा बाहर निकलती है। घडी की दिशा में घुमने से चक्र ऊर्जा को सोंखते है। प्रक्षेपित करते समय उल्टी दिशा में घूमते है। सामान्य स्थिति में ऊर्जा के संतुलन के लिए समान अनुपात में दोनों तरफ तेजी से घूमते है। जब हाथ चक्र मुख्य रूप में प्राण ऊर्जा प्रक्षेपित करता है। सामान्य 1 8 0 ° **dh vis{kk rsth ls 360°** पर घडी की उल्टी दिशा में घुमता है और (फिर कुछ क्षण रूक कर प्राण शक्ति ग्रहण करने के लिए) घडी की दिशाएं 1 8 0 ° पर घूमने लगता है। इस प्रकार प्राण ऊर्जा का प्रक्षेपण एवं ग्रहण की क्रिया सतत नहीं होती है। तेजी से घुमने पर प्रक्षेपण तेजी से होता है। जब हाथ चक्र प्राण ऊर्जा को अवशोषित करता है। घडी की दिशा में 3 60 डिग्री पर तथा विपरित दिशा में 1 8 0 ° चक्कर लगाता है। प्रक्षेपण एवं ग्रहण चक्कर के ढंग के अपेक्षा चक्र की गति पर निर्भर करता है।

जल आहार औषधि तेल, घी, लोशन, पट्टी आदि सभी जो प्राण ऊर्जा से आविष्ट कर अर्जित किया जा सकता है। ठण्डा पानी बहुत ज्यादा ऊर्जा सोखता है। गर्म पानी ऊर्जा को कम मात्रा मे सोंखता है।

जापानी जलआयुर्विज्ञानी मसास एमीटो (**Masaru emoto**) ने तीन पुस्तकें द मैसेज फ्रॉम वाटर, द हिडेन मैसेज इन वाटर तथा द ट्रुपावर ऑफ वाटर, लिखी है। जिसमें बताया है कि प्राणियों का शरीर जल ही है क्योंकि निषेचित अंडे में 9 6% जन्माजात शिशु में 8 0 % यूवा वस्था में 7 0 से 7 5% जल ही होता है। जल जीवन का स्त्रोत है। जल पीने के समय सच्चे दिल से हाथ में जल को लेकर प्रार्थना करेंगे उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखने से मैत्री प्रेम करूणा भाव (**Love and grantitude**) से उसके क्रिस्टल के मध्य लयबद्ध संरचनात्मक परिवर्तन होता है जैसे किसी राज मुकुट में हीरे मोती नीलम पन्नादि रत्न जडे हुए हो। जिसकी बेहतरीन फोटोग्राफ मसास एमोटों ने उन पुस्तकों सैकडों की संख्या मे प्रस्तुति किये है। जो आहार खाते है जिस धरती पर चलते है। जिस बिस्तर सोते है जो चप्पल जूते पहनते है जिससे मिलते है उन सबके प्रति प्रेम एवं कृतज्ञता का भाव रखने से वे सभी चीजे हमारे लिए आरोग्य आनन्द उत्साह उत्सवदायी बन जाती है तथा हमारे अन्दर प्राणी ऊर्जा सम्वर्द्धन होता है प्रेम एवं कृतज्ञ आविष्ट जल जीवन शक्ति सम्वर्द्धित करके नया जीवन देता है। प्रेम एवं कृतज्ञता से अर्जित जल दिल दिमाग शरीर मन तथा जीवन को बदल देता है। जल से संवाद स्थापित करें और देखें कि आपके जीवन में महा रूपान्तरण प्रारम्भ हो जाता है। इसीलिए मसास एमोटो का कहना है कि **"We must pay respect if water and feel love and gratitude and receive vibrations with a positive attitude then. Water changes, you change and I change Be cause both you and I are water."**

प्राण ऊर्जा एवं जीवनी शक्ति एक दुसरे के पर्याय है। इसी शक्ति या ऊर्जा के द्वारा जीवन के समस्त कार्य सम्पादित होते है। जिस ऊर्जा से दिल धडकना है सांस चलती है नाडी स्पंदित होता है खून दौडता है अहंकार, मन, बुद्धि, इन्द्रियां तथा शरीर के समस्त अंग कार्य करने में समर्थ होते है वही प्राण ऊर्जा एवं जीवनी शक्ति है। तन के तल पर गरिष्ठ भोजन को पचाने मल निष्कासन तथा विविध शारीरिक कर्मों के द्वारा मन के स्तर पर दुश्चिन्ता, इर्ष्या द्वेष, स्वार्थ, घृणा, बुद्धि के तल मय क्रोध अपमान तथा अहं के तल पर वियोग की पीडा, इन्द्रियों के स्तर भर उनकी विषय वासना के द्वारा प्राण ऊर्जा एवं जीवनी शक्ति की व्यर्थ में लोग अपव्यय करते है।

शरीर मरण धर्मा है परम सत्य है उससे कैसा अपनत्व? उससे परे ईश्वर अंश जीव अविनाशी चेतन अमल सहज सुख राशि अन्दर बैठा हुआ है। उसी से अपनत्व हो सकता है और उससे कभी वियोग होता नहीं है। अतः रोना कैसा, सगे सम्बन्धियों के प्रति कर्तव्य है उसे पूरा कर देता है यह बोध अहं से मुक्त परम प्राण ऊर्जा जीवनी शक्ति से सराबोर कर देता है। हर परिस्थिति में रोगों, विषय परिस्थितियों से लोहा लेने की ताकत देता है।

जीवनी शक्ति से ही भोजन का पाचन, अवशोषण एवं सात्म्य क्रिया है। इनसे उत्पन्न अवशिष्ट पदार्थ का निष्कासन एवं सफाई का काम भी जीवनी शक्ति ही करती है। जीवनी शक्ति ही रोग प्रतिरोध क्षमता को संचालित एवं नियंत्रित करती है। जीवनी शक्ति का सीधा सम्बन्ध गहरी नींद तथा ध्यान एवं परिपूर्ण सम्पक विश्राम से है।

ज्वर, सर्दी जुकाम, खांसी, दस्त, दर्द, फोडा, उल्टी उबकाई आदि तीव्र एंव बेचैनी पैदा करने वाली सभी सलक्षण रोग प्रति रोधक क्षमता की प्रतिकार शक्ति को परिलसित करते है पुनः आरोग्य प्राप्ति का शरीर की यह रचनात्मक प्रक्रिया है। त्वचा हमारे शरीर का सबसे महान एवं विषाल सुरक्षा प्रहरी है। रोग कूप मुंह, नाक, गला, योनि द्वार, आंत पेट, यकृत, प्लीहा आदि अंग अपने को रोगाणुओं से बचाने के लिए अनेक प्रकार के स्त्राव पैदा करते है। इनकी अंगों की साफ-सफाइ होने पर सदैव सक्रिय रहते है। किसी कारण एवं दुर्घटना वश रोगाणु प्रथम सुरक्षा युक्ति अन्य सुरक्षा कवच को भेद कर खून में मिल जाते है खरबों सुरक्षा कमाण्डों ग्रेन्थुलो साइटस तथा मैक्रोफेज उन्हें नष्ट करने में संलग्न हो जाते है। इतना ही नहीं इन जहरीले रोगाणुओं का मारने के लिए शरीर की लसिका ग्रंथियां, प्लीहा भांति के जाबाज सुरक्षा प्रहरी एण्टी बॉडीज का निर्माण करती है। इन जहरीले विषैले रोगाणुओं में जो बच जाते है। उनका काम तमाम करने के लिए यकृत कर प्रोटीन समूह सी1 , सी2 , सी3 से लेकर सी 9 तक प्रमुख पूरक प्रतिरक्षियों को तैयार करता है। ये प्रति-रक्षी कमाल के अद्वितीय होते है। जो रोगाणुओं के सतह पर बैठे एण्टीबॉडीज से मिलकर रोगाणुओं से विस्फोट पैदा कर सकते है। अस्मघाती जाबांज पूर प्रतिरक्षियों से बचे खुचे रोगाणुओं से लडने जूझने एवं मारने के लिए लिवरा प्रोपरा इंडिन नामक प्रतिरक्षक सैनिक का निर्माण भी करती है। रोगाणुओं की मारने के लिए रक्त में ही त्वचा बी लिम्फोसाइट्स होते है। ये विभिन्न चरणों में रोगाणुओं से जूझते है। लडते है मारते है।

प्राणी तथा वनस्पति हर सजीव के अन्दर परम पिता परमात्माने रोगाणुओं से लडने, मारने, स्वयं, उपचार करने टूट-फूट की स्वयं मरम्मत करने स्वयं स्वस्थ होने स्वयं सुरक्षा करने की सेल्फ हीलिंग सिस्टम सेल्फ रिपेयरिंग सिस्टम सेल्फट्रीट मेन्ट सिस्टम सेल्फ मोनिटरिंग सिस्टम ऑटो रिवावाइज सिस्टम, ऑटो डिटॉक्सीफांइग एवं क्लिनिनिंग सिस्टम ऑटो रिवाइनल सिस्टम ऑटो डिफ्रेन्सिव मेकानिज्म ऑटो रिवार्ड सिस्टम ऑटो रीविनिंग, सिस्टम ऑटो रिवोल्यूशनरि सिस्टम सेल्फ हार्मोनियम ट्रान्समिटरी सिस्टम तथा सेल्फ क्यूरेटिव सिस्टम को सुनियोजित ढंग से फिट कर रखा है। इस प्रकार शरीर में हजारों प्रकार के पाथवेज सर्किल सिस्टम आदि कार्य कर रहे है। यह सारे सिस्टम सम्यक सुनियोजित ढंग से कार्य करते है। तभी शरीर के खरबों प्रति रक्षी सैनिकों उचित दिशा निर्देश मिलता है। इस प्रकार संचालित एवं सक्रिय होते है कि किस प्रकार शत्रु रोगाणुओं से जूझना, कैसे उन्हें धाराशायी करना उनके चाल को पहचानकर नाकाम करना है शत्रु रोगाणु कहां आक्रमण किये है उन्हें कैसे पकडा जाये नियंत्रित किया जाये इन सबका संचालन का कार्य हर सजीव के अन्दर सन्निहित है। हर व्यक्ति के अन्दर स्वास्थ्य रक्षक तथा रोग निवारक डॉक्टर बैठा हुआ है। उससे परिचित होने की आवश्यकता है।

जीवन में हमें प्रतिक्षण रोग प्रतिरोधक एवं प्रतिरक्षक प्रणाली या उस डाक्टर से परिचित होने का मौका मिलता है। जो प्राणियों एवं वनस्पतियों के जीवन की रक्षा करता है। घास या अनेक वनस्पति का काट देते है। वह पुनः हरी हो जाती है। छिपकली एवं उनके परिवार के जन्तुओं के पूंछ या पैर कट जाते है। कुछ दिनों के बाद वे पुनः उग जाते है। प्रायः दुर्घटना में लोगों की हड्डियां टूट जाती है। उसे कौन जोडता है। क्या डॉक्टर बिल्कुल नहीं डॉक्टर उसे सही स्थान पर फिट करके बिठा देता है। प्लास्टर बेण्डेज लगा देता है। जोडने का काम जीवन रक्षक सेल्फ रिपेयरिंग तथा हीलिंग सिस्टम करती है। टूटी हड्डी को जोडने के लिए उनके किनारे पर प्रकृति कर्टिलेज का एक सेतु बनाती है। जो लगभग डेढ माह में कोमल हड्डी में बदलनें लगता है जो बाद में कठोर हड्डी में बदल जाता है। इस प्रकार हड्डी इतनी भलिभांति अच्छे ढंग जुड जाती है। कि फ्रेक्चर लाइन खोजना भी मुश्किल हो जाता है। हेयर लाइन एवं कम्पाउण्ड फ्रैक्चर में फ्रैक्चर लाइन के समीप की शिराएं क्षतिग्रस्त होती है जिससे वहां खून जमा हो जाता है। जिसे क्लोटिंग या हेमाटोमा कहते है।

सावधनी हटी दुर्घटना घटी की स्थिति में रक्त स्त्राव होने लगता है उस स्थिति में शरीर की सेल्फ रिपेयरिंग ट्रीटमेंट सिस्टम सक्रिय होकर जीवन को हर संभव बचाने का काम करता है। खून की नलियों के भीतर पेशियां सिकुड कर जख्म वाली नलियों को रक्तस्त्राव को रोकने का प्रयास करती है। तब तक रक्त प्लाज्मा में मौजूद रक्त जमाने वाला तत्व फाइब्रिन का निर्माण तेज हो जाता है। फाइब्रिन के चलते एक मेशवर्क जाली बन जाती है। जिसमें प्लेटलेटस फंसकर क्षतिग्रस्त शिराओं के मुख को नरम डॉट की तरह बन्द कर देते है। थक्का बनने से वहां क्षतिग्रस्त कोशिकाओं के नवनिर्माण के लिए वहां तेजी से अनेक प्रकार के औषध रसायन एपिडमोल ग्रोथ फैक्टर, खास प्रकार के प्रोटीन साइटोकाइनेस तथा अन्य अनेक एन्जाइम तथा जटिल प्रक्रियाओं का कार्य प्रारम्भ

हो जाता है। परिणाम स्वरूप क्षतिग्रस्त कोशिकाओं का नवनिर्माण रिपेयरिंग तथा हीलिंग क्रिया तेजी से होने लगती है।

जब किसी स्नाय कोशिका के अक्ष तन्तु क्षतिग्रस्त हो जाते है। तो कुछ मैक्रोफेज उस क्षतिग्रस्त हानि करना, हिस्से को खा जाते है। और वहां नयी स्वायु कोशिका (**Column**) पुननिर्माण में सहायता करते है। दुर्घटना ग्रस्त अंगो के तरफ लाखों सुरक्षा सैनिक ग्रेन्युलोसाइट्स, एण्टीबॉडीज, कुछ खास प्रकार के रसायन वहां पहुंच कर क्षतिग्रस्त अंग की मरम्मत करके स्वास्थ्य करने में लग जाते है।

ज्वर की स्थिति में हाइपोथैलमस में स्थिति में नियंत्रण केन्द्र "थर्मोस्टेट सेन्टर" सक्रिय होकर रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए शरीर के ताप का मान बढा देते है। जुकाम, ज्वर की स्थिति में शरीर की खराब कोशिकाएं इन्टरफरॉन जैसी जादुई रसायन का निर्माण करने लगती है। जिससे शरीर में रोगाणुओं को मारने की क्षमता विकसित हो जाती है। ज्वर की स्थिति में शरीर में लौह तत्व की कमी हो जाती है, इससे भी रोगाणुओं को ऑक्सीजन की सप्लाई ठप पड जाती है, वे मरने लगती है। शरीर में जहरीले पदार्थ फ्रीरेडिकल्स को नष्ट करने के लिए शरीर स्वतः एस. ओ. डी. तथा ग्लूथिऑल जैसे एण्टीऑक्सीडेन्ट पैदा करता है। डी एन ए में कही भी किसी प्रकार से क्षतिग्रस्त होने पर शरीर का टोहीदल (**Searching team**) पता लगाकर उसे दुरूस्त कर चुस्त स्फूर्त एवं तंदुरूस्त बना देता है। जुकाम की स्थिति में जुकाम के विषाणु राइनो वायरस जो $\frac{1}{2}$ ·मी. 5 लाखवां भाग आकार के होते है नाक में प्रवेश करते ही गामा इन्टर फेरॉन का उत्पादन बढ जाता है जिससे ये वायरस मारे जाते है। बचे खुचे वायरस को मारने एवं उससे बचने के लिए म्यूकस मेम्ब्रेन फूलने वाले रसायन पैदा कर रक्त शिराओं को फैला देती है जिससे खून का दौरा नाक में तेज हो जाता है। संकुचित क्षेत्र गरम लाल होकर बन्द हो जाता है। जलन एवं संवेदना से छींक एवं खांसी के स्वायु के उधीप्त हो जाते है। दिमाग 1 0 0 से 1 50 मील प्रति घंटा के रफतार से छींक एवं खांसी की आज्ञा देता है ताकि रोगाणु को निकाल बाहर किया जाता है। यदि रोगाणु बच जाते है। उन्हे मारने के लिए शरीर की अन्य प्रतिरक्षा प्रणाली सक्रिय हो जाती है।

शरीर के जितने भी खुले अंग जैसे नाक आंख, मुंह, योनिद्वार, गुदाद्वार आदि सभी जगह से बैक्टीरिया, वायरस, फंगस आदि रोगाणुओं को नष्ट करने वाले सैकडों प्रकार के रसायन पैदा करते है। जैसे मुंह का लार रस में एण्टी फंगस एण्टीबैक्टीरिया एवं एवआइवी जैसे एण्टी वायरल फैक्टर्स एस एल पी आइ (सिक्रेटरी ल्यूकोसाइटस प्रोटीन इन्ल्हीटर्स) घाव भरने वाले इजी एफ, दर्दनाशक मार्फिन से भी शक्तिशाली "ओपियोरफिन" इधर जन्य इन्जुरी, फोडा फंसी को ठीक करने वाली स्मॉल प्रोटीन हिस्टेटिव कैंसरक तत्वों से लडने वाला कार्सिनैजिक फैक्टर (एसी एफ) रोगाणुओं से जुझने वाला इम्यू ग्लोव्युलिन ए (**Ig A**) अम्ल क्षार संतुलन बनाने वाला कार्बोनेट, क्लोराइडस, फॉस्फेट, भोजन ग्रास को चिकना बनाने वाला क्यूसिन, म्यूकस एण्टी

बैक्टीरिया लाइसोजाइम, यूरिया परिक एसिड आदि सैकडों रोगाणुरोधी रसायन पाये जाते है। सभी खुले अंगो से सुरक्षाकारक फैक्टर्स ओलेक्टिव फैक्टर्स आवश्यकता के स्त्रावित होते है।

कैन्सर को ही ने कैंसर अचानक नहीं होता है। प्रतिदिन कैंसर उत्पन्न करने वाले सैंकडों रसायन आहार तथा प्रदुषण से पाला पडता रहता है। फिर भी कैंसर से लोहा लेने वाली करिश्माइ शक्ति है। हमारी टोही कैंसर कोशिकाओं को ढूढ कर लडते-जूझते है। यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन के शोधकर्ता के अनुसार इनके मध्य प्राचीन रोमन युद्ध **"gladiatorial contest"** छिड जाता है। इस द्वन्द्व युद्ध में जो कोशिकाएं जीव जाती है उनका वर्चस्व शरीर पर होता है। हारने वाली कोशिकाओं को बायोलॉजीकल सुसाइड जैविक मृत्यु एपोपटोसिस स्वीकार करनी पडती है। स्वास्थ्य कोशिकाएं जीतने पर युद्धोत्सव मनाती है कैंसर कोशिकाओं को चारों तरफ से घेर कर उन्हें मारकर निकास बाहर कर दी जाती है कभी-कभी कैंसर कोशिका इतनी चालबाज होती है। कि शरीर की सजातीय कोशिका का भुरपौटा पहन कर तोही कोशिकाओं के नजरों में धूल झोंकने में सम्पन्न हो जाती है। बाद में ये अपना जाल इस कदर बिछा लेती है। तथा क्यूटेजेनिक उत्परिवर्तन कर स्वरूप कोशिकाओं को अपने जैसा बना लेते है। अलग-अलग अंगो में जाकर फैल जाती है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाने वाले शरीर के विभिन्न अंगों जैसे आंतों में स्वास्थ्यप्रय उपयोगी बैक्टीरिया होते है जो अनेक प्रकार के रोगाणुओं को नाश करते है। तथा उपयोगी जीवन तलों का निर्माण करते है। पेट की प्राकृतिक आन्तरिक सूक्ष्म वातावरण (**Intestinal microbiom ecotogical enviroment**) को स्वस्थ्य एवं संतुलित रखने वाले कइ प्रकार के बैक्टीरिया पाये जाते है। ऑक्जेलो बैक्टर फॉर्मिजिन्स जैसे बैक्टीरिया तो हानिकारक रसायन व पदार्थों जैसे ऑक्सेलेट, फोसफेट, फायटेट आदि को खाकर गुर्दे तथा अन्य पदार्थो को क्षतिग्रस्त होने से बचाते है।

किसी अंग के क्षतिग्रस्त होने से वहां खास प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाएं तेजी से पहुंचकर नैसर्गिक दर्दनाशी एवं सूजननाशी दवा बीटा इंडोर्फिन तथा सेलेविटन के स्त्राव को बढा देती है। ये दोनो ही खास प्रकार के प्रोटीन से बनी होती है।

किसी प्रकार के कीटाणु विषाणु, मक्खी, मच्छर एवं अन्य जानवरों के सम्पर्क में रहने एवं उनके काटने से इनके अतिरिक्त कुछ खास भोजन प्रत्यारोपित अंग या परागकण जिससे शरीर स्वीकार नहीं करता है। उसे एण्टीमेन एलर्जेन कहते है। कीटाणु तथा रोगाणुओं के स्त्राव मृत्यु कोशिका भित्ति फलेजा, वायरस कैप्सुल, इनके द्वारा छोडे गये टॉक्सिन्स, कुछ लोगों के लिए टमाटर, बादाम, गेहूं, जई, पेन्सिलिन, एस्प्रिन आदि एलर्जिन एवं एण्टीजेन का काम करते है।

शरीर में एण्टीजेन के प्रवेश करते ही है उन्हें नष्ट करने के लिए एण्टीजेन के वैलेन्सी (इपीटेपा) के अनुरूप अलग-2 प्रकार के एण्टीबॉडीज का निर्माण होता है। परन्तु कुछ

एंटीजेन (पेन्सिलिन) मल्टी वैलेन्ट एवं अधिक अणुभार वाले होते है। जो एण्टीबॉडीज से प्रतिक्रिया करके प्राणघातक बन जाते है। एण्टीजेन तथा एलर्जेन को नष्ट करने के लिए उनके प्रोटीन को पहचान कर उसके विरोधी एवं विनाशक एण्टी बॉडीज का निर्माण शरीर की लिम्फायड उत्तकों की एक खास प्रकार की प्लाज्मा कोशिकाएं प्रारम्भ कर देती है।

7 .6 बोधात्मक प्रश्न

1. प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ समझाते हुए इसके संबंधों की व्याख्या कीजिए।
2. प्राण ऊर्जा बढाने हेतु विभिन्न चक्रों का उल्लेख कीजिए।
3. प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का प्राकृतिक चिकित्सा में क्या महत्व है?
4. पंचकोष की व्याख्या कीजिए।

7 .7

1. प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग - डा. नागेन्द्र कुमार नीरज
2. जल चिकित्सा - डा. नागेन्द्र कुमार नीरज
3. आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य - आचार्य बाराकृष्ण
4. प्राणायाम रहस्य - स्वामी रामदेव
5. आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान - वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे
6. प्राण शक्ति उपचार - प्राचीन विज्ञान व कला - चौ. कोक सुई
7. मानव के समग्र विकास में पंचकोश साधना - अर्जुन सिंह
8. जीवनी शक्ति कैसे जगायें - डा. चन्द्रदीप सिंह

मानव साधना मण्डल पांचली मेरठ

इकाई – 8 :

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के सूत्र एवं उपाय

8 .0 प्रस्तावना :-

शरीर के भीतर एक ऐसा चिकित्सक बैठा होता है जो आने वाली रोगों की प्रारम्भिक चिकित्सा की लडाई अकेले लडता है। जिसको हम प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति के नाम से जानते है। यह सिस्टम पूरी तरह से स्वचालित है जो रोगों के शरीर मे प्रारम्भिक लक्षणों से अपना कार्य प्रारम्भ करते हुए शरीर मे विद्यमान खरबों कोशिकाओं को दिशा निर्देश दे कर रोग से लडने हेतु खडे कर देती है। यह प्रणाली जितनी भी अधिक स्वस्थ होगी उतना ही हमारे शरीर और शरीर के अंग स्वस्थ होगें। इसलिए स्वास्थ्य के पहली आवश्यकता इस प्रतिरक्षा प्रणाली को जिसे हम स्वयं की हीलिंग पद्धति स्वयं का काम करने वाली मरम्मत प्रणाली इत्यादि के नाम से पुकारते है। यही मानव शरीर में क्षति पहुंचाने वाले बाहरी तत्वों से निपटने के लिए कुछ प्रक्रियाओं निरन्तर चलती रहती है इन्हीं प्रक्रियाओं के संचालन का कार्य जो शक्ति करती है उसी को प्रतिरोधात्मक अथवा जीवनी शक्ति कहते है जब शरीर की कोशिकायें किसी विषेष सूक्ष्म जीव के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेती है तो उसे बहुत समय तक भूलती नहीं है तो उसकी पहिचान तुरन्त कर लेने के पश्चात अपनी पहिचान की हुई कोशिकाओं के द्वारा उस बाहरी सूक्ष्म जीव से बचाव का कार्य प्रारम्भ कर देती है इस अध्याय में वर्णित प्रतिरोधात्मक क्षमता प्रतिक्रियाओं पर प्रभावकारी होने में समय अवश्य लग सकता है किन्तु आसानी से रोगकारी सूक्ष्म जीव से निपट लेती है इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते है कि यह मानव शरीर हर समय वातावरण में व्याप्त विभिन्न रोग उत्पन्न करने वाले घटकों से रक्षा करने हेतु तैयार रहता है यही सामान्यतः व्यक्ति के स्वास्थ्य से

सम्बिन्धित सुरक्षा प्रणाली बन कर सदैव आने वाले रोगों से बचाव करने का कार्य करती है उसको हम एक उदाहरण के द्वारा भली भांति समझ सकते है जैसे- वातावरण में रोगों के कीटाणु सदा ही विद्यमान रहते है और वो शरीर में किसी न किसी रूप में प्रवेश भी करते है परन्तु रोग कुछ लोगों में आते है सब नहीं यही अन्तर प्रतिरोधक क्षमता के कम या अधिक होने का है।

आइये हम इस इकाई में प्रतिरोधक क्षमता को सुदृढ बनाने के उपायों की चर्चा करें।

<u>8 .1 उद्देश्य</u> :-

- प्रतिरोधक क्षमता की शरीर में आवश्यकता का अध्ययन करना।
- प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्रों व उपायों का अध्ययन करना।
- चक्रों द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्र।

प्रतिरोधक क्षमता की स्वस्थ जीवन के लिए क्या आवश्यकता है व किस प्रकार भोजन, जल, वायु, प्राणायाम, ध्यान, व्यायाम, आसन, ब्रह्मचर्य, उपवास, विजातीय द्रव्य, सूर्य ऊर्जा, उत्तेजक, पदार्थों का निषेध आदि द्वारा प्रतिरोधक क्षमता को बढाया जा सकता है। इसका विस्तार से अध्ययन करने हेतु आगे चलते है।

<u>8 .2 प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ</u> :-

शरीर के सारे अंग संक्रीय होकर के अपने सभी कार्य सुचारू रूप से करते रहें इसके लिए दो महत्वपूर्ण बिन्दु मिलते है

1. प्राण शक्ति
2. प्रतिरोधक क्षमता

प्राण शक्ति हमें जन्म से ही ईश्वर प्रद्यति होती है जो न भौतिक है न रासायनिक है यथार्थ न हम देख सकते है न हम माप सकते है यह शरीर के भीतर विद्ययमान रहती है इसके बिना कोई भी शारीरिक क्रिया नहीं चलती है प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करने के लिए मानव की स्वंय की यम नियम की समझ आहार-विहार एवं जीवन शैली से जुडी विभिन्न क्रियाओं को समझते हुए इसे बढाया जा सकता है ये क्रियायें को समझते हुए इसे बढाया जा सकता है ये क्रियाऐं दिन प्रति दिन चलते रहने से जो शक्ति प्राप्त होती है उसको जीवनी शक्ति के नाम से जाना जाता है उदाहरण :- व्यक्ति प्रातः सोकर उठने के पश्चात एक विषेष प्रकार की शक्ति एवं ऊर्जा अपने शरीर में पाता है उसी ऊर्जा से वह अपने दिन भर के कार्यों को करते हुए रात होने पर कुछ थका हुआ शक्ति हीन महसूस करता है और सो जाता है सोते समय शारीरिक अंगों के काम कम करने से यह ऊर्जा दुबारा प्राप्त हो जाती है और सभी अंगों को आराम मिल जाता है प्राकृतिक चिकित्सा का आधार ही रोग प्रतिरोधक क्षमता ही बढाना है जो विभिन्न व्यक्तियों में अलग-2 पाई जाती है। इसी कारण कुछ लोग 1 6 घण्टे काम करने के बाद भी

ऊर्जावान दिखते है तो कुछ लोग 4 -6 घण्टे के काम के बाद ही थक कर बैठ जाते है। इसी अन्तर को देखते हुए अपनी प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के लिए निम्न बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे जिससे हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली सुदृढ होकर के स्वास्थ्य प्रदान कर सके।

<u>1 0 .3 प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्र एवं उपाय</u> :-

<u>1 . भोजन या खानपान</u> :-

रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के हेतु भोजन का विषेष महत्व है रोग प्रतिरोधक क्षमता के बारे में यह एक खास बात है कि इसका निर्माण शरीर स्वयं ही कर लेता हैं। ऐसा नहीं होता की कोई चीज खाते ही सीधे प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो गया। इसलिए पौष्टिक व सन्तुलित भोजन की मदद से शरीर में भरपूर ऊर्जा शक्ति के विकास को तथा उसके द्वारा ही प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। यह तुरन्त का परिणाम नहीं बल्कि लम्बे समय से आहार के नियमों का पालन करने पर प्राप्त होती है।

यदि खान पान सही है तो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने के लिए किसी दवा या अतिरिक्त कोशिश करने की जरूरत नहीं है। आर्युवेद भी यही मानता है कि जो खाना आपके आज में वृद्धि करता है रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने मे मददगार है। आज तब बनता है जब खाना शरीर द्वारा भलि भांति पचाया जाता है। और इसी के द्वारा किसी भी व्यक्ति की अच्छी सेहत और रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास सम्भव हो पाता है। इसके विपरीत जो खाना पचने में मुश्किल तथा आम का निर्माण करता है वह शरीर मे विजातीय द्रव्यों को उत्पन्न कर शरीर को रोगी बनाता है। तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को घटाता है।

आहार सम्बन्धी विषय पर विचार करते समय यह ध्यान रहे कि इसका चयन प्रकृति के खिलाफ न हो। अर्थात सदैव देश, काल, वातावरण आदि का विचार करते हुए ही भोजन करना चाहिए। जैसे सर्दियों में बर्फ, आइस्क्रीम, आदि ठण्डी चीजों का परहेज करना चाहिए। इसके साथ-2 कुछ आहार सम्बन्धि नियमों का भी पालन करना चाहिए। जैसे भोजन सदैव भूख से कम तथा हल्का व सुपाच्य ही होना चाहिए। भोजन के समय बात नहीं करनी चाहिए। प्रकृति से जिस रूप में हमें खाद्य पदार्थ प्राप्त हो उसी वास्तविक रूप में ही हमें इसका प्रयोग करना चाहिए। खाने में मिर्च मसालों का अत्यधिक प्रयोग करना, उन्हें बहुत अधिक पकाना या तलना, भोजन के साथ सलाद न लेना तथा समय पर भोजन न करना, जंक तथा फास्ट फूड अधिक खाना साथ ही शरीर में खनिज लवणों की पूर्ति हेतु अप्राकृतिक, दवाओं अर्थात फुड सप्लिमेटस का प्रयोग करना आदि सभी धीरे-2 हमारी प्रतिरोधी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। सभी खनिज लवण तथा पोषक तत्व हमें प्राकृतिक आहार से ही प्राप्त हो जाते है इनके लिए दवाओं की आवश्यकता नहीं होती।

सदैव ताजे फल, सब्जियां तथा खाद्य पदार्थो का ही सेवन करना चाहिए ऐसी चीजें जिनमें प्रिजरवेटिव्स मिले हो उन्हें सेवन नहीं करना चाहिए।

सदैव गलत मेल के खानपान से बचना चाहिए। जैसे मछली के साथ दूध न लें तथा दही के साथ खट्टाई न ले आदि तथा दाल, दूध, दही, सब्जियों व फलों का भरपूर मात्रा में सेवन करना चाहिए। अथवा अनाज को अंकुरित करके सेवन करते है। तो और भी अधिक प्राण शक्ति का संचार होने लगता है। इन सभी बातों का ध्यान रख कर सही खान पान तथा उसके नियमों का पालन करने पर कोई भी व्यक्ति रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर सकता है।

2 वायु :- मनुष्य पंच तत्वों का एक जीता जागता पुतला है। वह भोजन के बिना तो कुछ दिनों जीवित रह सकता है। परन्तु वायु के बिना जीवन कुछ समय के लिए भी सम्भव नहीं है। वायु को मानव जीवन का प्रमाण कहा गया है। वायु को ग्रहण कर मनुष्य, आक्सीजन प्राप्त कर रक्तशुद्ध करते है। तथा रक्त की गन्दगी को बाहर निकालने के बाद अर्थात विश्वास के दौरान कार्बन डाई आक्साइड के बाहर निकालने पर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढाने का कार्य सुचारू रूप से चला आ रहा है।

जो लोग ज्यादा देर तक बंद कमरे और बंद जगहों पर नहीं रहते तथा खुली जगहों और खुला वातावरण में रहना पसन्द करते है इनकी प्रतिरोधी क्षमता उन लोगों की तुलना में श्रेष्ठ होती है। जो ज्यादा कमरे और बंद जगहों पर रहते है। इससे शुद्ध वायु का अभाव होने पर रक्त अशुद्ध होने लगता है। जो लोग अपने शरीर को जूते-जुराब-टाई-पैन्ट-कोट, इत्यादि से पूरी तरह बन्द रखते है। तथा कपडे बहुत ही टाईट होता है। इससे वायु शरीर से वंचित रखकर प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करता है।

3 जल :- प्रतिरोधक क्षमता को बढाने तथा बनाए रखने में जल का विषेष स्थान है जल का ठीक ढंग से सेवन करने पर यदि प्रतिरोधक क्षमता को बढाया जा सकता है। तो इसके विपरीत जल का ठीक उपयोंग न करने पर प्रतिरोधक क्षमता को घटा भी सकते हे। जल का पर्याप्त सेवन करना चाहिए, पानी सदैव स्वच्छ लेने चाहिए दिन में कम से कम 8 -1 0 गिलास पानी (रोगी की आवश्यकतानुसार) पीना चाहिए। खाना खाने से पहले व बाद में तथा खाने के बीच में पानी नहीं पीना चाहिए। खाने से आधा घण्टा पहले तथा बाद में ही पानी लेना चाहिए। जल शरीर की बाह्य सफाई के साथ-2 आन्तरिक सफाई का भी कार्य करता है। जल के द्वारा भीतर जमा विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकाल दिए जाते है। ठण्डे जल के बाह्य प्रयोग से रक्त वाहिनियों के सिकुडने और फैलने की क्रिया तीव्र होती है। रक्त का संचालन शरीर में बढ जाता है। इस कारण शरीर के प्रत्येक विभाग ठीक ढंग से क्रिया करते है।

4 बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता :- किसी भी व्यक्ति की प्रतिरोधक क्षमता की नीव तो गर्भावस्था में ही पड जाती है। इसलिए माताओं को बच्चे के बेहतर विकास और इम्युनिटी के लिए तैयारी गर्भधारण के वक्त से ही शुरू कर देनी चाहिए। इस अवस्था में माताओं को पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए प्रसन्नचीत, रहते हुए दैनिक कार्यों को करना चाहिए। तनाव मुक्त रहना चाहिए, संगीत चाहिए। माता-पिता के अस्वस्थ

अथवा गलत खान-पान रहन-सहन के कारण अनियमितताएं बहुत बढ जाती है। जिसके फलस्वरूप बच्चे के जन्म के समय से ही कुछ कम प्रतिरोधक क्षमता लेकर से जीवन आगे बढाते है यदि बच्चों को शुरू से ही स्वास्थ्य नियमों का पालन सिखाया जाए तो जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है।

5 <u>निद्रा</u> :- निद्रा का हमारे जीवन में बहुत महत्व हैं। शरीर के थकने पर जब ऊर्जा का ह्यस होता है। तथा शरीर के खरबों कोशिकाओं के दल थक चुके होते है। तो उस समय निद्रा के द्वारा ही पुनः ऊर्जा प्राप्त कर शरीर में स्फुर्ति तथा शक्ति को जगाया जा सकता है। शरीर के अधिक कार्य करने अर्थात शारीरिक या मानसिक श्रम करने के उपरान्त नींद लेकर पुनः कार्य करने की क्षमता को तथा ऊर्जा को प्राप्त किया जा सकता है। नींद का अच्छा होना ही अच्छे स्वास्थ्य या अच्छी प्रतिरोधक क्षमता का प्रतीक है जब हम जागते है और कार्य करते है तो जीवनशक्ति का ह्यस होता है तथा सोते समय इसके अनुपात में बहुत ही कम जीवनी शक्ति का ह्यस होता है। नींद लेने से प्रतिरोधक क्षमता की बचत होती है। नींद अपने आप में ही बहुत बडी औषधि है यदि व्यक्ति सोते समय या नींद सही ढंग से ले तो उसमें जीवनी शक्ति प्रबल होने लगती है निद्रा सही ढंग से सम्बन्धित कुछ नियम इस प्रकार है जैसे दोपहर को न सोकर रात्रि के 2 -3 पहर में सोना चाहिए। खाना खाने के तुरन्त बाद में सोना नहीं चाहिए सोने से पहले पैरे की ठण्डे पानी से धो लेना चाहिए सोते समय सूती व ढीले वस्त्र ही पहनने चाहिए क्योंकि इससे नींद अच्छी आती है तथा रक्त संचार में कोई रूकावट नहीं होती। जहां सोना हो वहां कम व नीली रोशनी का प्रकाश होना चाहिए।

नींद स्वयं में एक महत्वपूर्ण औषधि है। आप जानते है कि बच्चा जन्म के बाद 2 0 -2 2 घन्टे सोते है जिससे वह अधिकाधिक प्रतिरोधक क्षमता को संचित करता रहता है। जिससे वह अधिकाधिक प्रतिरोधक क्षमता को संचित करता है। इसी प्रकार व्यस्क को 6-7 घण्टे की गाढी नींद लेनी चाहिए इससे शरीर में स्फुर्ति चुस्ती, मन में प्रसन्नता तथा मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होकर शरीर में प्रतिरोधक क्षमता का विकास होने लगता है। यह एक स्वभाविक क्रिया है। अतः इसका सेवन भी प्राकृतिक रूप में ही होना चाहिए। आजकल तनाव के कारण अनिद्रा जैसी समस्याओं ने कई रोगों को जन्म दे दिया है। अतः दवा खा कर सोने से नींद से होने वाले लाभ भी स्वभाविक निद्रा की तुलना में बहुत ही कम है।

6 <u>आराम</u> :- जीवनी शक्ति बढाने में आराम का बहुत महत्व है। आराम करने से शरीर की थकी हुई मांसपेशियों का तनाव कम होता है। तथा जटिल मानवीय कोशिका भी स्वस्थ रहेगी। शरीर के कार्य करने की दशा में उत्पन्न होने वाले थकान को केवल शरीर के आराम द्वारा ही दूर कर सकते है। इससे शरीर की प्रत्येक कोशिका में ऊर्जा का पुनः वास होने लगता है। तथा व्यक्ति फिर पहले की भांति ऊर्जावान हो जाता है तथा इससे उसके शरीर में निहीत प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास होता है। अत्यधिक श्रम व शरीर की क्षमता से अधिक कार्य करने से जीवनीशक्ति का ह्यस होता है इसके लिए जरूरी है

कि सदैव शारीरिक व मानसिक तनाव होने पर आराम करना स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम है।

7 <u>शरीर में विजातीय द्रव्यों का अभाव</u> :- जीवनी शक्ति को प्रभावित करने वाला यह महत्वपूर्ण कारक है। शरीर में विजातीय द्रव्यों का अतिरिक्त भाग शरीर के तंत्रो को प्रभावित करने लगता है जिससे शरीर की जीवनी शक्ति कमजोर होने लगती है जब शरीर में किन्हीं कारणों जैसे गलत खान पान की आदतों तथा इसके अतिरिक्त खाद्य पेय पदार्थों में त्याज्य अंश को बढाने वाले प्रोटीन, श्वेतसार और चिकनाई अधिक हो तथा उसको निष्कासन धनात्मक खनिज लवणों की कमी रहे तो परिणामस्वरूप ये त्याज्य एवं दुषित पदार्थ शरीर में संचित होगे तथा ऐसे रोगजनक पदार्थ उत्तकों में विघ्न डालते रहेंगे। ऐसी त्याज्य तथा विजातीय द्रव्य ारीर मे विभिन्न प्रकार के रोग होने लगते है। इस से उत्पन्न होने वाले रोग के कीटाणुओ को नष्ट करने तथा शरीर से बाहर करने में अत्यधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिससे अनावश्यक रूप में शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता का ह्रास होने लगता है। इसलिए स्वास्थ्य प्रचुर मात्रा में जीवनीशक्ति की पूर्ति, निर्बाध सामान्य जीवनदायी द्रवों का परिभ्रमण पर्याप्त आपूर्ति तथा त्याज्य पदार्थों के पूर्ण निष्कासन पर निर्भर है।

8 <u>मानसिक और भावनात्मक प्रभाव</u> :- जीवनी शक्ति का शरीर मे प्रवाह तथा वितरण को हमारी मानसिक एवं भावनात्मक स्थितियां भी अत्यधिक प्रभावित होती है। भय, क्लेश, चिंता तथा सादृश मनोभाव आदि मानसिक क्रियाएं शरीर को भी प्रभावित करती है। भय की स्थिती में व्यक्ति के मन में जो परिवर्तन आते है उसका प्रभाव शरीर पर भी दिखता है भय के कारण उसका शरीर कांपने लगता है गला सुखने लगता है शरीर से पसीना टपकने लगता है शरीर की गति रूक जाती है आदि के विनाशकारी कंपन, उत्तकों को प्रभावित कर देते है और जीवन के सूक्ष्म स्त्रोतों (कोशिकाओं) को संकुचित कर जीवनी शक्ति को क्षीण कर देते है। अधीरता, क्रोध, चिडचिडापन, तीव्र, आवेग, अति विचार आदि शरीर में अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न करते है जिससे कोशिकाओं का नाश होने लगता है। यही मानसिक और भावनात्मक प्रभाव व्यक्ति की प्रतिरोधात्मक क्षमता को प्रभावित करती है। इसलिए प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के लिए विश्वास, आशा, प्रसन्नता, सुख, प्रेम, परोपकार के मनोभाव शरीर के ऊतकां पर तनावमुक्ति, समरसता एवं जीवनदायक प्रभाव डालते है।

9 <u>विचार</u> :- विचार आदत अथवा स्वभाव शरीर को प्रभावित करते है। जैसे ईर्ष्या, द्वेष, मोह, लोभ इत्यादि। यह सभी विचार हमारे भीतर नकारात्मक ऊर्जा को जन्म देते है। तथा शरीर के भीतर की सकारात्मक ऊर्जा का नाश करते है। हमे अपने अन्दर किसी भी प्रकार से कोई भी नकारात्मक विचार को नहीं आने देना चाहिए तथा ऐसी आदतो को भी त्याग करना उचित ही है। नकारात्मक स्थिती उत्पन्न होने पर सदा सकारात्मक विचारों को ही अपनाना चाहिए। इससे साइको सोमेटिक उपचार प्रक्रिया स्वतः काम करती रहती है।

1 0 <u>ब्रह्मचर्य</u> :- प्रतिरोधक क्षमता बढाने में ब्रह्मचर्य का पालन करता एक महत्वपूर्ण उपाय है। इससे शरीर की ऊर्जा का क्षय होने से रोक कर उस ऊर्जा को शरीर के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। इन जीवनदायी शक्तियों अर्थात प्रतिरोधक शक्ति को हम शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि तथा काल्पनिक और सृजनात्मक क्षमताओं को बढाने के लिए सुरक्षित रखते है। परन्तु निश्चित रूप से मानव सभी धरातलों पर अपनी काम शक्ति पर निर्भर रहता है। अत्यधिक वीर्य का निरर्थक व्यय एवं काम जीवन सभी ओर के विकास और वृद्धि रोक देता है। यह शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास कर देता है। इस शरीर और आत्मा को हीन बनाने वाली क्रिया का त्याग करना अति आवश्यक है इसका प्रयोग तथा इस विषय की जानकारी को बढाने के लिए शिक्षकों, माता-पिताओं और चिकित्सकों को इस नाजुक मसले का उचित ढंग से समाधान करना सीखना चाहिए तथा बालकों को इसका ज्ञान देना चाहिए सभी प्रकार का मैथुन शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आज की तेज आधुनिक जीवन शैली में सम्भोग तथा यौन क्रियाएं सामान्य होती जा रही है। जिनके अति उपभोग करने से शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक व्याधियां बढने लगती है। तथा इससे अति ऊर्जा का विनाश भी होता है। अतः यह क्रियाएं केवल वंश वृद्धि करने तथा उचित समय पर आवश्यकतानुसार ही करना उचित है, ऐसा करके प्रतिरोधक क्षमता का विकास करने में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है।

1 1 <u>व्यायाम</u> :- व्यायाम स्वस्थ जीवन जीने की एक सीढी है। इसके द्वारा मानव प्रतिरोधी शक्ति में वृद्धि कर सकता है व्यायाम का अर्थ है वह शारीरिक परिश्रम जिससे उत्पन्न होने वाली थकान के बाद सुख की प्राप्ति होती है। व्यायाम का सीधा प्रभाव हमारे शरीर पर पडता है। इसमें होने वाली शरीर की विभिन्न स्थितियां शरीर के भिन्न-2 अवयवों व तंत्रो पर प्रभाव डालती है। तथा रक्त के संचार को उत्तम बनाकर शरीर में जमे हुए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालती है। तथा रोग के कारणों को दूर कर शरीर को पूर्ण रूप सडौल, कान्तिमय, बलिष्ट तथा सुन्दर बनाता है। शरीर में हल्कापन तथा स्थिरता को बढाता है। व्यायाम रोगों से दूर करता है तथा ऊर्जा का निर्माण करता है। अतः यह प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

1 2 <u>आवश्यक वचन</u> :- आवश्यक वचन का अर्थ है आवश्कता के अनुरूप ही भाषण देना अथवा बोलना। जितनी आवश्यकता हो उतना ही बोलना चाहिए क्योंकि अत्यधिक बोलने से भी ऊर्जा की अपव्यय होता है। इस ऊर्जा को बचाने के लिए जरूरी तथा आवश्यक भाषण करना प्रतिरोधक क्षमता को बचाने का उपाय है।

1 3 <u>प्राणायाम</u> :- प्राणायाम दो शब्दों योग अर्थात प्राण+आयाम से मिल कर बना है। प्राण का अर्थ है प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति और आयाम का अर्थ है विकास अथवा नियंत्रण इस प्रकार प्राणायाम को अर्थ प्रतिरोधक क्षमता का विकास करना है।

प्राणायाम की श्वसन-क्रिया फेंफडों को शक्तिशाली बनाकर उनके लचीलेपन को बढाती है जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर में प्राणवायु का अधिकाधिक संचरण होता है। जिससे सम्पूर्ण

शरीर के अंग प्रत्यंग को पुष्ट तथा निरोगी बनाया जा सकता है प्राणायाम से रक्त-परिभ्रमण की गति में तेजी आती है। इससे मस्तिष्क तरोताजा होकर अधिक क्रियाशील बन जाता है। प्राणायाम तन्त्रिकातन्त्र पर नियन्त्रण स्थापित कर स्नायुओं को सबल बनाता है जिससे अनेकों रोगों को दूर कर शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाता है तथा शरीर को स्वस्थ शरीर बनाए रखा जा सकता है तथा ऊर्जा को भी बडी मात्रा में संचित किया जा सकता है।

1 4 <u>उत्तेजक पदार्थों का निषेध</u> :- उत्तेजक पदार्थों का भी प्रभाव हमारे शरीर, स्वास्थ्य तथा प्रतिरोधक क्षमता पर पडता है। उत्तेजक पदार्थों का सेवन हमारे स्नायु संस्थान को शिथिल तथा चेतन शून्य करता है। इसलिए जब भी इस तरह के पदार्थो जैसे-कैफीन, एल्कोहल या अन्य का सेवन करने पर तनाव, थकान तथा निद्रा को दूर करने के लिए किया जाता है। यह हमारे शरीर के लिए हानिकारक होते है इसका सीधा प्रभाव हमारे शरीर तथा मस्तिष्क पर होता है। जिससे व्यक्ति की कार्यक्षमता क्षीण होने लगती है। इससे प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास भयंकर रूप से होता है। तथा इसके सेवन से बचकर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करके प्रतिरोधक क्षमता में सफलता पूर्वक वृद्धि की जा सकती है।

1 5 <u>आसन</u> :- आसन योग का तीसरा अंग है। यह शरीर पर प्रतिबल प्रभाव डालते है। तथा इसके द्वारा प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। आसनों का नियमित अभ्यास करने से शरीर लचीला बनता है तथा शरीर में रक्त संचार सुचारू हो जाता है आसनों का प्रयोग रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। क्योंकि आसनों के प्रभाव से शरीर के विजातीय द्रव्यों तथा मलों के साथ-2 विष का भी नाश किया जा सकता है। आसनों के द्वारा कार्यों को निर्मल बनाकर स्वस्थ बनाया जा सकता है। अतः इसके द्वारा भी प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत किया जा सकता है।

1 6 <u>ध्यान</u> :- वर्तमान मे तनाव एवं दबाव से ग्रस्ति जीवनी शक्ति को जगाने और उसे शक्ति प्रदाद करने हेतु डा. रॉबर्ट ने एक शोध द्वारा यह निष्कर्ष निकाला रोग के जीवाणुओं से लडने के लिए ध्यान श्वेत रक्त कोशिकाओं में तेजी से वृद्धि करता है। अष्टांग योग के द्वारा केवल ध्या नही नहीं अपितु शेष सभी अंगों के द्वारा जहां एक तरफ रोग मुक्त स्वस्थ जीवन बनता है। वही दूसरी ओर हमारे शरीर के विभिन्न अंगो का ध्यान द्वारा शिथलीकरण कर उनको तनाव मुक्त लचीला पन प्रदान करता है। इसी ध्यान की कडी में विपश्ना एक मील के पत्थर के तरह सिद्ध हुआ है। जिससे सिद्ध होता है कि मौन व्रत के साथ लम्बे समय तक शरीर को स्थिर रख कर चित्त को स्थिर बनाए रखकर ऊर्जा के संचयन मे मदद करता है जिससे शरीर के प्रतिरोधी तंत्र में भी ऊर्जा का निर्माण होने लगता है। ध्यान का पूर्णतः प्रभाव प्राप्त करने हेतु गायत्री मूत्र, ओम ध्वनी एवं प्राणायामक ा अभ्यास भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

1 7 <u>उपवास</u> :- उपवास के इतिहास के परिचित व्यक्ति इस तथ्यों को भलिभांति जानते है कि उपवास की परम्परा बहुत पुरानी है। पहलें धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में उपवास

का सहारा लिया करते थे। किन्तु उपवास का वैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षाकृत नयी वस्तु है उपवास के द्वारा शरीर में निहित मलों का बाहर कर रोग मुक्त शुद्ध शरीर को प्राप्त किया जा सकता है। उपवास में जब आहार का त्याग किया जाता है तो उस आहार को पचाने वाली ऊर्जा को बचा कर अन्य दिशाओं में मोड दिया जाता है। और विष तथा मलों को शरीर से निकालकर शरीर को स्वच्छ करने का काम प्रारम्भ हो जाता है। भोजन को पचाने में उसे और उपयोगी रस बनाने में तथा बेकार पदार्थ को बाहर निकालने में जो ऊर्जा खर्च होती है उसे रोग की स्थिती में उपवास द्वारा बचा कर सही दिशा में लगाकर रोग मुक्त हो सकते है।

एक रिपोर्ट मे कहा गया है कि सीनेटर और म्यूलरने सेटी और ब्रेथाप्ट के रक्त का परीक्षण किया और दोनों में लाल रक्त कोषाणुओं में वृध्कि पायी गई। उपवास के कई प्रकार के प्रभाव शरीर से देखने को मिलते है उपवास के प्रारम्भ में लाल रक्त कोषाणुओं की संख्या में कमी हुई किन्तु बाद मे इनमें वृध्कि होते देखा गया। जैसे-2 उपवास बढता है वैसे-2 श्वेतरक्त कोषाणुओं में कमी होती जाती है। साथ ही मोनो न्यूक्लिर कोषाणुओं की संख्या में भी कमी के साथ ही लाल रक्त कण और बहुनाभिकीय कोषाणुओं मे वृध्कि होने लगती है। रक्त की क्षरता से कमी होने लगती है हिमरवर्ड कैरिंगटनने जीवनी-शक्ति उपवास और नामक अपनी पुस्तक में रोगियों के उपवास काल में उनके शरीर का ताप सामान्य से कम रहता है। किन्तु इसका कोई दुष्प्रभाव नही पडता। उपवास से रोगी का स्वर स्वच्छ होने लगता है। चर्बी घटने लगती है। आंते साफ हो जाती है। यकृत और मूत्राशय की भी सफाई हो जाती है। उपवास रक्त शुद्ध हो जाता है तथा उसमें नई जीवनी शक्ति का संचार होने लगती है। उपवास द्वारा शरीर और मन दोनों प्रभावित होती है।

1 8 <u>धूप/सूर्य</u> :- सूर्य ऊर्जा का एक बडा स्त्रोत है। संसार के प्रत्येक प्राणी को ऊर्जा सूर्य से ही प्राप्त होती है। सूर्य की ऊर्जा के द्वारा ही पृथ्वी पर जीवन सम्भव हो पाया है अर्थात सूर्य के अभाव में जीवन की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। एक पौधे को जिसके जीवन का आधार सूर्य है यदि पौधे को धूप को हटाकर उसे अंधेरे में रख देते ही मुरझा जाता हैं यही शक्ति जो पौधो को जीवन देती है। वही मनुष्य के शरीर में निहित रक्त को लाली भी प्रदान करती है मनुष्य जो भोजन ग्रहण करता है उस भोजन के द्वारा सूर्य की ऊर्जा को ही ग्रहण कर जीवित रहने योग्य बनता है। कार्य करने की शक्ति तथा ऊर्जा मनुष्य को भी सूर्य तथा भोजन द्वारा ही प्राप्त होती है। जो बन्द व अंधेरे भरे धरे में अप्राकृतिक प्रकाश में तथा प्रकृति से दूर रहकर जीवन यापन करते है उनकी जीवनी शक्ति व धूप अथवा खेत में काम करने वाले किसानों की जीवनी शक्ति में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। शहरीकरण के कारण वहां का जीवन जीने से उस क्षेत्र के लोगों का इम्यून सिस्टम कमजोर होने लगता है जबकि ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का इम्यून सिस्टम शक्तिशाली होता है। वह जल्दी से किसी बीमारी अथवा मौसम परिवर्तन होने सामान्यता होने वाली बीमारियों का शिकार उनकी तुलना में कम होते है इसका

कारण ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों का प्रकृति से जुडा रहना है। प्रतिरोधक क्षमता बढाने हेतु प्रकृति प्रदत्त सूर्य ऊर्जा का सेवन अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

<u>च्यवनप्राश</u> :- आयुर्वेद में रसायन रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने में बेहद मददगार होते है। ऐसा पदार्थ जो एटिआक्सिडेंट प्रतिरोधक क्षमता बढाने वाला हो और स्ट्रेस को कम करता हो तो वह रसायन कहलाता है। इसलिए त्रिफला ब्रह्मारसायन यदि रसायन कहलाता है। च्यवनप्राश को सबसे बेहतर रसायन माना जाता है। इसमें 4 0 के आसपास जडी बूटियां डाली जाती है। च्यवनप्राश का नियमित सेवन करने से आईजीई का लेवल कम होता है। तथा प्राकृतिक फिलर सेल्स शरीर में पहले से ही मौजूद होते है जिनका काम शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता से बढोतरी करना होता है। च्यवनप्राश इन कोशिकाओं के काम करने की क्षमता को बढा देता है। इसे सुबह-शाम दूध के साथ हर मौसम में लिया जा सकता है।

<u>अश्वगंधा</u> :- अश्वगंधा को प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर शरीर को कमजोर करने वाले रोगों को दूर किया जा सकता है।

<u>आंवला</u> :- आंवला त्रिदोषनाशक है। आयुर्वेद में इसे बुढापे और रोगों को दूर रखने वाला रसायन माना गया है। इसे ताजा रस या मुरब्बा किसी भी रूप में ग्रहण किया जा सकता है। यह रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढाने का अचूक नुस्खा है।

<u>शिलाजीत</u> :- यह भी रोगप्रतिरोधक क्षमता के विकास में सहायक है। सर्दियों में दूध के साथ शिलाजीत का सेवन करने से हड्डियां, लीवर और प्रजनन संबंधी रोग दूर हो जाते है।

<u>गिलोय</u> :- नीम के पेड मे पान जैसे पत्तों वाली लिपटी लता की गिलोय के नाम से जाना जाता है। इससे शरीर की रोग प्रतिरोधकता क्षमता को बढाया जा सकता है। बुखार, मधुमेह, लिवर आदि से संबंधित तकलीफो से बचाव होता है।

<u>कुछ अन्य चीजें</u>

(क) <u>ग्रीन टी</u> :- ग्रीन टी में एंटिआक्सिडेंट होते है जो कई तरह के रोगों से बचाव करते है इसके द्वारा छोटी आंत में पैदा होने वाले गंदे बैक्टीरियां को पनपने से रोका जा सकता है। विषेषज्ञों का मानना है कि एक दिन मे दो से तीन बार ग्रीन टी लेकर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बेहतर बनाया जा सकता है।

(ख) <u>चिलीज</u> :- चिलीज का सेवन मेटाबालिज्म को बेहतर करता है। ये नेचरल ब्लड थिनर की तरह काम करती है। और एंडार्फिस का स्त्राव करती है। इसमें बीटा कैराटीन भी होता है जो विटामिन ए में बदल कर इंफेक्शन से लडने मे मदद करता है।

(ग) <u>दालचीनी</u> :- इसमे भी एंटिआक्सिडेंट होता है। इससे रक्त का थक्का बनाने तथा बैक्टीरिया की वृद्धि को कम करने मे मदद मिलती है।

(घ) शकरकंद :- इसका प्रयोग अल्जाइमर, पार्किसन और दिल के रोगों को रोकने में किया जाता है। इसमें प्रतिरोधक तंत्र को सशक्त बनाने की क्षमता होती है।

(ङ) अंजीर :- इसके अन्दर पौटेशियम, मैग्नीज, और एंटि-आक्सिडेंट्स होते है। यह शरीर में पी एच के स्तर को बनाए रखते है। इसमे फाइबर होता है। तथा यह ब्लड शुगर लेवल को कम करने में मदद करता है।

(च) मशरूम :- यह रक्त में **w.b.c.** का विकास करता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता की बढाता है।

(छ) लहसुन :- लहसुन हमारे इम्युन सिस्टम के लिए बेहद महत्वपूर्ण दो सेल्स को मजबूत करता है। कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस और दूसरे दुर्लभ खनिज तत्वों का भण्डार लहसुन शरीर और दिमाग दोनों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाता है। यह सर्दी, जुकाम, दर्द, सूजन और त्वचा सबंधित बीमारियां को नहीं होने देता।

(ज) मुलट्टठी :- मुलट्ठी का चूर्ण एंटिबायांटिक है। यह नियमित रूप से सेवन करने पर शरीर में प्रतिरोधी तंत्र का विकास होता है। इससे खांसी, न्यूमोनिया, कफ संबंधी विकार, श्वसन संबंधी विकार भी दूर हो जाते है।

(झ) तुलसी :- तुलसी से बहुत ही शक्ति होती है। खांसी, जुकाम, बुखार, और सांस से सम्बन्धित रोगों से लड़ने के लिए इसका प्रयोग करके रोग प्रतिरोधक क्षमता का बढाया जा सकता है।

उपरोक्त पदार्थों के सेवन द्वारा भी प्रतिरोधक क्षमता को बढाया जा सकता है।

8 .4 चक्रों द्वारा प्रतिरक्षा प्रणाली बढाने के पश्चात :-

यहां हम शरीर में विद्यमान चक्रों द्वारा शरीर के संचारण को नियन्त्रत करके उनकों सन्तुलित करते हुए शरीर को प्रतिरोधक क्षमता को शुद्ध बनाने मे प्रयोग करते है योग विज्ञान में भी अनेक चक्रों का वर्णन आया है। जिनको पढने के बाद स्वस्थ शरीर की कामना की जा सकती हैं। इन चक्रों मे पांच प्राण, पंच महाभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय।

समस्त वर्ण, एवं स्वर व विभिन्न प्रकार के प्रकाश देखने को मिलते है। इन्हीं चक्रों के खोलने तथा शुष्मना नाडी को जाग्रत करने से सभी चक्रों का एक दूसरे से जुडना ही शरीर का सन्तुलन बनाता हैं। आईए इन चक्रों अध्ययन करके प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के सूत्रों का अध्ययन करते है।

चक्र :- चक्र का शाब्दिक अर्थ समझते तो गोल पट्टियां या वृत्त के रूप में माना जाता है लेकिन योग की दृष्टि से चक्र अतिन्द्रिय शक्ति केन्द्र की ऐसी तरंगे है जो वृत्ताकार रूप से चलायमान होती है। हर चक्र की अपनी अलग तरह की तरंगे होती है। अलग तरह की गतियां होती है तथा अलग ही रंग होते है जिनको हमारे योगियों ने कमल

पंखुडियों के बीच में ही देखकर उनका अध्ययन किया इसलिए इन चक्रों को शरीर का कमल पुष्प कहा जाता है। इनकी उपमा माला के सूत्र में पिरोए कमल पुष्पों से कि जाती है। जिनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार हैः-

1. मूलाधार चक्र :- जैसा की नाम से ही स्पष्ट है। मूल का अर्थ है जड अर्थात हमारे मेरूदण्ड की जड में स्थित है। आधार का अर्थ है स्थान, जहां से मेरूदण्ड में ऊर्जा का प्रवाह आरम्भ होता है इस स्थान को योगी कुंडलिनी शक्ति का स्थान भी मानते है। यह चक्र गुदा मूल से दो उंगल ऊपर और मूत्रन्द्रिय से दो उंगल नीचे स्थित होता है इसका रंग लाल होंता है यह चक्र आरोग्या आनन्द व खुशी बढाते हुए हमारी पार्श्विक प्रवृतियों का विनाश करता है। जिससे एक ओर प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। दूसरी ओर उसका कमजोर करने के पहलुओं को नष्ट करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र :- मूलाधार चक्र से दो उंगल पेडु के पास इसका स्थान माना गया है जिसका शाब्दिक अर्थ स्वयं का स्थान से होता है जब इस चक्र में चेतना और ऊर्जा बढने लगती है तब स्वयं और अहमं की चेतना जाग्रत होने लगती है मूल रूप से जननांगों से सम्बन्धित ग्रन्थियों को प्रभावित भी करता है। इसका रंग सतरी होता है। इससे हमारी बुद्धि प्रबल होती है। जिव्हा में सरस्वती के वास का उदय होता है। और हमारे शरीर में नवनिर्माण की शक्ति का संचार होता है।

3. मणिपुर चक्र :- नाभि मूल में त्रिकोणाकार मोतियों के नगर के रूप में इसका शाब्दिक अर्थ समझा जाता है। इसे मणियों की माला भी कहा जाता है। इस चक्र सम्बन्ध आत्मीकरण, प्राण ऊर्जा और भोजन के पाचन से है। इस चक्र का रंग अरूण आभा युक्त होता है। त्रिकोणाकार चक्र रक्तवर्ण अग्नि का मुख्य स्थान है इससे वृत्तियां उभरने लगती है। जैसे लज्जा, ईर्ष्या, विषाद, कणाद, तृष्णा, मोह, घृणा और भय है। शरीर पर इसके प्रभाव स्वरूप कान्ति बढती है।

4. अनाहत चक्र :- अनाहत चक्र मणिपूर चक्र से तथा चौथे चक्र के रूप में शरीर में हृदय के स्थान पर स्थित होता है अनाहत का शाब्दिक अर्थ होता है "चोट का अभाव" इस चक्र का रंग धूसर युक्त होता है इस चक्र से कुछ वृत्तियां उत्पन्न होती है जैसे - आशा, चिन्ता, चेष्टा, ममता, पम्भ, विफलता, विवेक, अहंकार, कपटता, वितर्क और अनुपात, वायुतत्व इसके द्वारा वाकपतित्व, कवित्व, शक्ति का लाभ व जितेन्द्रियता आदि इसके लाभ बताते है। इस चक्र का ध्यान करने वाले को कभी हृदय रोग नहीं हो सकता है तथा दिव्य प्रेम, करूणा, सेवा व सहानुभुति आदि दिव्य गुणों का विकास होता है।

5. विषुद्धि चक्र :- इस चक्र का स्थान कण्ठ है। विषुद्धि का शाब्दिक अर्थ विषेष शुद्धि से लिया जाता हैं इस चक्र के द्वारा शरीर में विष को फैलने से रोका जा सकता है। इस चक्र का रंग गहरा नीला होता है। इस चक्र पर ध्यान करने व इसके जागरित होने पर व्यक्ति कवि, महाज्ञानी, शान्तचित, निरोग, शोकहीन और दीर्घजीवी हो जाता है। इस चक्र से थायराइड ग्रन्थि के रोग नही होते साथ ही गले के रोग जैसे टांसिल, चुल्लिका, उपचुल्लिका ग्रन्थियों पर भी पडता है। इसके प्रभाव से साधक ज्ञानवान, तेजस्वी, शान्तिचित और दीर्घजीवी हो जाता है।

6. <u>आज्ञा चक्र</u> :- यह चक्र दोनों भ्रुवों के मध्य भ्रकुटि के भीतर है। यह चक्र हमारे मेरूदण्ड के ऊपरी छोर पर स्थित होता हैं इस चक्र का सम्बन्ध दो महत्वपूर्ण ग्रन्थियों से होता है। पीयूष और पीनियल ग्रन्थि। इस चक्र के सक्रिय होने पर दोनों ही ग्रन्थियों की कार्य क्षमता पर पडता है। जिससे व्यक्ति अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि हो जाता है। मूलाधार चक्र से इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना पृथक-2 ऊर्ध्व प्रवाहित होकर इस स्थान पर संगम को प्राप्त करती है। इस स्थान को त्रिवेणी कहते है।

7. <u>सहसार चक्र</u> :- यह चक्र सबसे अन्तिम तथा सबसे ऊपर का चक्र है। इसका स्थान ब्रह्मताल या ब्रहमरध्र के उपर मस्तिष्क मे है। विभिन्न प्रकार के रंगो के प्रकाश से युक्त हजार दलों वाले कमल के समान इसकी आकृति है। इस स्थान को शिव और शक्ति का मिलन स्थान भी कहते है। इस चक्र के जाग्रत होने पर शक्ति परम शिव के साथ लीन होने के साथ ही विभिन्न चक्रों की शक्तियों अहंकार चित्त बुद्धि तथा मन के साथ सम्पूर्ण रूप से परमात्मा मे विलीन हो जाती है। इसके जाग्रत होने पर आत्मज्ञान का प्रकाश चित्त पर पडता है। इसमें हृदय गति रूकने से शरीर के सभी कार्य बन्द हो जाते है तथा आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है।

<u>8 .5 सारांश</u> :-

आपने उपरोक्त इकाई में शरीर की एक ऐसी शक्ति के विषय में पडा जो हमारे शरीर का एक ऐसा डॉक्टर है जो सदैव रोगों से लडने के लिए तैयार रहता है। वह किसी भी कारण से कोशिकाओं के चोटिल होने की आवस्थाओं में उसकी मरम्मत ही नहीं उसे प्रभाव शाली भी बनाता है इसी डॉक्टर की शक्ति को बढाने के लिए हम किस प्रकार की जीवन शैल, दिन चरिया, खान-पान, रहन-सहन, अच्छा वातावरण अपनाकर बहुत बढा सहयोग कर सकते है जिसके लिए क्या खायें कितना खायें कब खायें और कैसा खायें इत्यादि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। इसी प्रतिरोधक क्षमता हेतु योग की कितनी आवश्यकता है उसके महत्व को भी समझने का प्रयास किया। जिसमें मानव शरीर में विद्यमान सात चक्रों को संन्तुलित करते हुए प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ बनाने का अध्ययन भी किया मुख्य रूप से एक बात समझ में आई कि केवल जीवन शैली अपना लेने अथवा सन्तुलित या सातविक आहार ग्रहण करने या साफ सफाई रखने मात्र से काम पूरा नहीं हो जाता है अपितु इस शरीर से कितना काम लेना चाहिए। कितना सोना या व्यायाम करना चाहिए तथा कितने अन्तराल पर हमें उपवास प्राणायाम, ध्यान, स्वाध्याय इत्यादि का सहारा लेना भी उतना ही आवश्यक है क्योंकि हमारे शरीर के विभिन्न अंगों अथवा कोशिकाओं को जब तक आराम नहीं मिलता है तब तक उनमें शक्ति का संचार नहीं पनपता है उपरोक्त के द्वारा हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली एक नया जीवन प्राप्त कर सकती है।

<u>8 .6 बोधात्मक प्रश्न</u> :-

प्रश्न. 1 - प्रतिरोधक क्षमता के अर्थ व महत्व की व्याख्या करें।

प्रश्न. 2 – योग द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढाने के लिए सात चक्रों की भूमिका का वर्णन करें।

प्रश्न. 3 – जीवन शैली द्वारा प्रतिरोधक क्षमता कैसे विकसित की जा सकती है?

<u>8 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ</u> :-

- मानव के समग्न विकास मे पंचकोश साधना – अर्जुन सिंह
- योग द्वारा स्वास्थ्य – डा. राकेश प्रकाश निगम
- आदि ऊर्जा प्राण – अमृता भारती
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग – डा. नागेन्द्र कुमार नीरज
- जीवनी शक्ति कैसे जगाएं – डा. चन्द्रदीप सिंह
- प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवं व्यवहार – डा. हेनरी लिंडलार
- प्राण शक्ति उपचार – प्राचीन विज्ञान व कला

इकाई - 9 :

रोग निदान (आकृति - मल - मूत्र- पसीना एवं जिव्हा)

इकाई की संरचना

9 .1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जिसको एक सामान्य साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ समता है। तथा थोड़ी सी जानकारी से भी स्वतः उपचार कर सकता है। इसके बाद इसमें किसी प्रकार के रोग के लक्षणों के अनुसार उपचार नहीं दिया जाता अपितु शरीर में एकत्र विजातीय द्रव्यों को बाहर करने हेतु पंच महाभूत का सहारा लिया जाता है। पंच महाभूत द्वारा शरीर का शोधन कर उसे निरोगी बनाया जाता है। इसमें रोग का उपचार किया जाता है। न कि रोग के लक्षणों का दूसरी ओर अन्य चिकित्सा पद्धतियों में (आयुर्वेद को छोड़कर) रोग के लक्षणों का उपचार किया जाता है। रोग के लक्षण जिस भी अंग में पनपते है। उसी अंग के नाम से रोग का नामकरण कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए सिर दर्द **Headach** होने को कमर दर्द **Backach** को आदि नामों से पुकारा जाता है।

आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षित मानव बिना निदान के कोई भी उपचार देने को लोक सम्मत नहीं मानते इसलिए निदान को प्राकृतिक चिकित्सा में भी स्वीकारा है। परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में निदान प्रक्रिया मल, मूत्र, रक्त की जांच रसायनों द्वारा की जाती है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में मल, मूत्र, आकृति, नाखून आंखे, जीभ को देख कर किया जाता है। जो स्वयं चिकित्सक ही करता है। परन्तु रसायन द्वारा जांच का कार्य रसायन विशेषज्ञ द्वारा ही किया जाता है तथा उसकी रिपोर्ट पर डॉक्टर या चिकित्सक दवा देता है। इन्हीं मुख्य बिन्दुओं के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में निदान निर्धारण करना हम इस इकाई में करेंगें।

9 .2 उद्देश्य

9 .2 .1 आकृति द्वारा निदान का अध्ययन

9 .2 .2 चेहरे द्वारा निदान

9 .2 .3 हड्डियों द्वारा निदान

9 .2 .4 आंखों द्वारा निदान

9 .2 .5 बालों का निदान

9 .2 .6 अंगुलियों द्वारा निदान

9 .2 .7 नाखून द्वारा निदान

9 .2 .8 त्वचा द्वारा निदान

9 .2 .9 श्लेश्मा (थक) द्वारा निदान

9 .2 .1 0 जीभ द्वारा निदान

9 .2 .1 1 मल द्वारा निदान

9 .2 .1 2 पसीने द्वारा निदान

9 .2 .1 3 मूत्र द्वारा निदान

9 .3 निदान क अर्थ एवं परिभाषा

रोग की प्रारम्भिक अवस्था ही तीव्र रोग के रूप में आती है जो शरीर की जीवनीय शक्ति द्वारा जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने की प्रक्रिया शुरू होती है इस प्रारम्भिक अवस्था में लगभग निदान स्पश्ट नजर आता है जो बुखार, जुकाम, खाशी, दस्त, निमोनिया एवं टायफाइड आदि के रूप में पनपता है यदि इय अवस्था को हमद बा दे तो कालान्तर में मार्क रोग अथवा जीर्ण रोग के नाम से जाने जाते है। पंचमहाभूत का शरीर में अधिक या कम होना पाया जाता है प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का आकार स्वभाव खानपान की आदतें खाद्य पदार्थों के खाद इत्यादि भी एक दूसरे से अलग होना इन्हीं पंचमहाभूत के कारण नियमित रूप से विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालने में असमर्थ हो जाती है तो विजातीय द्रव्य एकत्र होकर रोग का रूप धारण कर देते है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा किये जाने वाले निदान प्रक्रिया में एक्सरे अल्ट्रासाउण्ड जैसी कुछ ऐसी प्रक्रियायें है जो बार बार करने से शरीर को नुकसान भी करती है। प्राकृतिक चिकित्सा में मूलभूत सिद्धान्त है कि ''निदान की कोई आवश्यकता ही नहीं है'' आधुनिक चिकित्सा पद्धति में रक्त के नमूने द्वारा की जाने वाली जांच उस के नमूने के अनुसार ही होती है और उसी के आधार पर निदार कर उपचार शुरू कर दिया जाता है । परन्तु रक्त के नमूने लेने के बाद जांच होने से लेकर चिकित्सक तक पहुंचने के बीच के समय में रक्त के अन्दर अन्दर कीटाणुओं की मात्रा एवं अन्य जटिलताऐं बढ़कर शरीर के किसी दूसरे भाग में भी कुछ लक्षण बढ़ा देती है।

ऐसी स्थिति में जांच के आधार पर किया गया उपचार अधूरा रह जाता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा की निदान प्रक्रिया रोगी के सामने रहने के कारण क्षण प्रतिक्षण चलती रहती है साथ ही इसमें रोग का मूल कारण एकमात्र विजातीय द्रव्य को ही माना जाता है। और उस का उपचार भी विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया ही है।

साधारणतया किसी समस्या के भारी। लक्षणों का अध्ययन कर उसके मूल कारकों में समझ लेना ही निदान कहलात है दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कश्टदायक लक्षणों का उभाड़ आने के कारण उत्पन्न हुई विकृति को समझना निदान कहलाता है प्राकृतिक चिकित्सा विधि में जो निदान किया जाता है निःसन्देह उसे मौलिक कारण भी स्पश्ट हो जाता है। इसे रोगी के तत्कालीन स्वास्थ्य पर उसके खान पान रहन सहन अथवा उसकी विभिन्न प्रकार की आदतों का विश्लेशण भी साथ में किया जाता है। जो रोग मुक्ति के लिए सबसे बड़े निदान का कार्य करता है। क्योंकि इस पद्धति में जीवन शैली से जुड़ी सभी आदतों में बदलाव लाना उपचार की पहली आवश्यकता है। इसमें सुधार के पश्चात

विजातीय द्रव्य को आगे बड़ने से रोकने की प्रक्रिया शुरू होती है। विजातीय द्रव्यों को शरीर में बढ़ने से रोककर शरीर में पहले से जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर करने हेतु नियमित रूप से जीवनी शक्ति करती रहती है, ओर जब जीवनी शक्ति पूर्ण रूप से जमा होने की प्रक्रिया रोक नहीं पाती उस समय प्राकृतिक चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। जो मल मूत्र पसीने, बलगम (थूक) एवं कार्बन-डाई-ऑक्साइड के रूप में स्वास द्वारा शरीर शुद्धिकरण करते हुए स्वास्थ्य प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती है। वास्तव मे रोग के निदान का अर्थ है कि रोगी को अपनी पीडा के कारणों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। इसके अभाव में रोगी का मन पूर्ण रूप से न तो रोग के लिए गंभीर हो पाता है और न ही चिकित्सक के प्रति उसका विश्वास दृढ़ हो पाता है। जिसे रोगी पर दिया जाने वाला उपचार का प्रभाव भी कम ही हो पाता है। जैसा कि गांधीजी ने लिखा है कि पंचमहाभूत चिकित्सा तब तक कार्गर साबित नहीं हो सकती। जब तक पंचमहाभूत चिकित्सा के अतिरिक्त रामनाम (महत्व) तत्व का सम्मिलित होना अति आवश्यक है। जिसके प्रभाव से रोगी का विश्वास चिकित्सक में पूर्ण रूप से आ जाता है। तथा उसमें ठीक होने की आशा के रूप में सकारात्मक विचार उत्पन्न होकर के रोगों को ठीक करने में एक विशेष भूमिका प्रदान करते है।

विजातीय द्रव्य बाहर होने से शरीर पर शुद्धि प्रक्रिया पूर्ण होने पर जो निदान प्रकृति अपनाइ गई थी उसका समझने के बाद रोगी स्वयं प्रशिक्षित हो जाता है जिसे मानसिक तौर पर समझने के पश्चात उसी जीवन शैली को अपनाकर अपने को स्वस्थ रख सकता है। आइये हम विभिन्न प्रकार के निदानों के विषय में अध्ययन करेंगे -

9 .2 .1 आकृति निदान

किसी के शरीर को देखकर ही रोग का निदान किया जा सकता है चीन में भी चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत रोग निदान के लिए रंगों को शरीर के अंगों का प्रतिनिधि माना गया है। उनके अनुसार

1 काला रंग - यह रंग गुर्द, मूत्राशय ग्रंथियों तथा काम वासना के असन्तुलन को प्रदर्शित करता है।

2 लाल रंग - लाल रंग हृदय मस्तिश्क और रक्त वाहिकाओं को दर्शाता है।

3 सफेद रंग - सफेद रंग फेफडे, त्वचा और श्वास प्रणाली को प्रदर्शित करता है।

4 पीला रंग - पीला रंग पलीहा, अग्नाशय, पेट और लिम्फेटिक प्रणाली को प्रदर्शित करता है।

5 हरा रंग - हरा रंग यकृत और नाडी संस्थान को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त रंगों के अनुसार अंग विशेष में रोग के विषय में पता लगाया जाता है इससे अनुभव की

आवश्यकता है धीरे धीरे विभिन्न प्रकार के रोगियों को प्रतिदिन देखने व परीक्षण से यह दक्षता हासिल की जा सकती है।

9 .2 .2 चेहरे द्वारा निदान

1	चहरे पर हीनता होना, पतको का झुका झुका तथा आंखों का धंसा होना	क्षय रोग और तपेदिक रोग के लक्षण
2	प्राकृतिक रूप से चेहरे का हीन लगना	छाती के रोग और जोडो के दर्द होना।
3	चेहरे पर झेप और शर्मिलापन होना	शरीर में उर्जा की कमी होना
4	चेहरे पर थकान दिखना	कब्ज तथा तनाव होना
5	होठो का नीला पड़ना	हैजा रोग तथा यकृत के विकार होना
6	गर्भवती स्त्री के चेहरे का मुरझाना	गर्भ का गिरना तथा गर्भ स्राव अवस्था का होना
7	चेहरे का सूना सूना होना	शरीर में भयंकर रोग होने की सम्भावना
8	चेहरे का लाल तथा धब्बे वाला होना	खसरा तथा रक्त विकार होना
9	चेहरे का पीला पड़ना	पीलिया रोग तथा रक्त हीनता होना
10	चेहरे व पलको का सूजना	गुर्दों की सूजन होना
11	चेहरे का फीका पड़ना	तपेदिक रोग तथा ज्वर का पाया जाना
12	चेहरे का घबराहट का दिखना	मानसिक तनाव होना
13	मुंह से बार बार सांस लेना	श्वास संबंधित रोगों का होना तथा श्वास प्रणाली में विकार उत्पन्न होना
1	कान में खुजली होना	कान के रोग की सम्भावना

14		
15	आंखों को बार बार खजलाना	हृदय व यकृत के रोग

9 .2 .3 हड्डियों के द्वारा निदान

1	हड्डियों के जोड़ों को देखने से विकृति का अनुभव करना	गठिया रोग की उपस्थिति होना
2	हड्डियों के जोड पर सूजन व दर्द	संधिवात होना
3	हड्डियों का टेढा होना	कैल्शियम की कमी का सूचक है।
4	हड्डियों का सामान्य आकार से बढ जाना	हड्डियों के साथ युरिक एसिड का जमना

9 .2 .4 आँखों के द्वारा निदान

1	आँखों का अन्दर धस जाना	श्वेत प्रदर, प्रमेह रोग, दुर्बलता रक्त स्राव का बढ़ना, स्वप्न दोश आदि
2	आँखों की सूजन	यकृत, गुर्दों व हृदय रोग के लक्षण है।
3	आँखों का उभरा हुआ लगना	सिर में रसौली होना
4	आँख की पुतलियों का फैलना	मोतिया बिन्द, मिर्गी तथा साप का काटे जाना
5	आँख की पुतलियों का सिकुड़ना	अफीम का नशा करना
6	आँखों का लाल होना	नजला, जुकाम, उच्च्व रक्तचाप, तेज बुखार, आंखों मं संक्रमण आदि
7	आँखों की झिल्ली सफेद होना	रक्त हीनता होना

8	आँखों के आगे अन्धेरा छाना	बेहोशी, सिरदर्द, चक्कर आना, रक्त संचार में अवरोध, हृदय धड़कन का बढ़ना आदि
9	आँखों के चारों ओर काले घेरे पड़ना	पेट के रोग होना
10	आँखों में दर्द होना	पित्त बढ़ना, हृदय रोग होना
11	आँखों में खुजली होना	लीवर तथा हृदय से संबंधित रोग
12	आँखों से धुंधला दिखना	खून की अशुद्धि पाई जाना
13	आँखों से एक का दो दिखना	लीवर, गुर्दों तथा पेन्क्रियाल में विकार होना तथा मधुमय रोग में शुगर बढना
14	सोने के बाद बच्चे की आँख का थोड़ा खुला रहना	लीवर में रक्त का स्राव ठीक ढंग से न होना तथा स्पलीन का खून कम बनाना
15	व्यस्क की सोने के बाद आँख खुली रह जाना	लीवर में स्पलीन के रक्त कम बनाने के कारण रक्त का संचार सही ढंग से न होना

9 .2 .5 बालों के द्वारा निदान

1	बालों का रूखा तथा शुश्क होना	गुर्दों का रोग
2	बालों का सफेद होना	नजला, जुकाम, दमा तथा श्वास संबंधित रोग
3	बल झड़ना	पिट्यूटरी की क्रियाशीलता का कम होना, सिर में रक्त का संचार कम होना
4	बालों का सड़ना तथा कमजोर होना	पाचन संस्थान की गड़बड़

9 .2 .6 अंगुलियों द्वारा निदान

1	अगुंलियों के जोड़ों में दर्द होना	संधिवात
2	अगुंलियों में विकृति	गठिया
3	अगुंलियों में पीलापन या लाली कम दिखना	रक्त अलापता

9 .2 .7 नाखूनों द्वारा निदान

1	बड़े नाखून होना	फेफड़े, हृदय और मस्तिश्क विकार
2	छोटे नाखून होना	आंतों के रोग होना तथा रक्त विकार। पैर व कमर के निचले हिस्से में दर्द आदि
3	पतले नाखून वाले	शरीर का कमजोर, दुर्बल सुस्त तथा हृदय रोग की सम्भावना
4	मुडे हुए नाखून	रीढ की हड्डी में विकार होना
5	नाखून का एक ओर कम और दुसरी और ज्यादा चौडा होना	संधिवात की सम्भावना
6	नाखूनो का झुर झुर तथा टुटना	कैल्शियम की कमी होना
7	नाखून का कांच की तरह टूटना	स्नायुविक रोग
8	नाखून पर पीले धब्बे होना	पीलिया तथा पाण्डु रोग होना
9	नाखून नुकीले तथा चपटे होना	लकवा तथा पक्षाघात
10	नाखून पर उभरी हुई धारिया	यकृत का विकार पाया जाना

9 .2 .7 त्वचा द्वारा निदान

1	त्वचा का रूखा होना	आंतों में विकार तथा शरीर में जल की कमी होना
2	त्वचा का गर्म होना	बुखार होना और शरीर में विजातीय द्रव्य का

		प्रकोप होना
3	त्वचा पर खुजली होना	छोटी तथा बड़ी आंत में खुश्की होना
4	त्वचा पर दाने तथा मुहासे होना	रक्त अशुद्धता तथा हामोर्नस का असन्तुलित होना
5	त्वचा पर काले धब्बे पड़ना	रक्त विकार तथा यकृत विकार होना
6	त्वचा पर पसीना ज्यादा आना	टी.बी. की बीमारी होना

9 .2 .7 श्लेश्का (थूक) द्वारा निदान

1	थूक का पतला होना	शरीर में पानी की अधिकता तथा सर्दी के कारण
2	थूक का बदबूदार होना	मुंह के तथा दांतों के रोग होना। इसके अतिरिक्त पाचन संस्थान में गडबड होना
3	थूक का पीपयुक्त होना	फेफड़ों में सूजन तथा फोडा होना
4	थूक का गाढा अधिक होना	पेट, गुर्दों तथा स्पलीन की कमजोरी
5	थूक चिकना होना	अपच तथा प्लीहा का विकार होना
6	थूक का हरा दिखना	पीलिया रोग या यकृत दारापित्त अधिक बनाना।
7	थूक का रंग नारंगी तथा मटमैला होना	श्लेश्मिक सन्निपात
8	थूक में झाग’-झाग आना	वात विकार होना
9	थूक के साथ रक्त के कंठा आना	टी.बी. या फेफडो के रोग
10	थूक का चिपचिपा होना	ब्रोकाइटस

9 .2 .7 जीभ के रंग तथा उस पर जमे मैल को देखकर निदान करना

1	जीभ का लाल रंग होना	शरीर में गर्मी बढ़ना तथा मत्र विकार होना
2	जीभ का काला होना	टाइफाइड रोग का होना
3	जीभ का लाली कम होना	खून की कमी होना
4	जीभ का रंग सीसे जैसा होना	फेफडे तथा पक्वाश्य के रोग तथा हैजा होना आदि
5	जीभ का खुश्क होना	पानी की कमी होना
6	जीभ पर छाले होना	पाचन विकार होना तथा मूत्र में गर्मी और कब्ज होना
7	जीभ की जड़ में सफेदी का होना	छांतों के रोग तथा पाचन संस्थान में कमजोरी होना
8	जीभ का नीला होना	हृदय रोग तथा हृदय में विकार होना
9	जीभ पर दांतों के निशान होना	लीवर में विकार होना
10	जीभ का तीखा व नुकीला होना	मस्तिश्क विकार तथा स्नायुविक तंत्र का कमजोर होना
11	जीभ का टेढा या घुम जाना	पक्षाघात के कारण
12	जीभ का लम्बा होना	मस्तिश्क रोग
13	जीभ पर काली तहका जमना	चेचक रोग तथा यकृत रोग के कारण मृत्यु की सूचना
14	जीभ का सीसे जैसा होना तथा उस पर छाले पड़ जाना	मृत्यु होने की सम्भावना होना
15	जीभ का कापना तथा लडखडाना	शारीरिक कमजोरी होना
16	जीभ सुन्न होना	स्नायु विकार होना

1 .2 .1 1 मल द्वारा निदान

मल की सही सही परिभाषा की बात की जाए तो कह सकते है कि जब एक निश्चित समय पर परवाान जाते ही मल रस्सी की तरह बंध हुआ तथा साफ रंग का होता है तो वह स्वस्थ पुरूष के लक्षण है। परन्तु अनियंत्रित तथा आधुनिक जीवन शैली के चलते मल का सही रूप में शरीर से बाहर न आना कई रोगों का सूचक है।

मल का पतला, झागदार, श्लेश्का युक्त, काला, पीला, लाल सख्त होना निश्चित रूप से बीमारियों का शरीर में होना माना जाता है। जैसे पीलिया, बावासीर, कब्ज, पेचिश, आव, अल्सर अथवा आंतों से संबंधित रोग होना।

9 .2 .1 2 पसीने द्वारा निदान -

शरीर की त्वचा पर असंख्य रोमछिद्र होते है। जिनके द्वारा शरीर के भीतर का विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है तथा हमारे शरीर में विजातीय द्रव्यों का निश्कासन स्रोत भी है। किसी व्यक्ति को पसीना कम आता है या ज्यादा अर्थात् कितना आता है, सर्दी में भी पसीना आता है अथवा गर्मी में भी नहीं आता या बिल्कुल कम आता है, बहुत अधिक मात्रा में आता है, पसीना कपड़े पर दाग छोड़ता है, पसीना बदबुदार तो नहीं है पसीने से त्वचा पर विकार तो उत्पन्न नहीं होते खुजली तो नहीं होती इत्यादि विभिन्न रोगों के सूचक है। शरीर में पसीना ज्यादा आना । शरीर की अत्यधिक उर्जा का हास होना है तथा शरीर में विजातीय द्रव्य जैसे युरिक एसिड आदि का अधिक मात्रा में होना भी हो सकता है।

9 .2 .1 3 मूत्र द्वारा निदान

किसी भी व्यक्ति द्वारा जल की जो मात्रा ली जाती है उसके अनुसार पेशाब के रूप में उसका शरीर से निकल जाना स्वास्थ्य लक्षणों का संकेत है तथा इसी के आधार पर ही हम यह जान सकते है कि उसे कौन से रोग हो सकते है अथवा किस रोग के आने के संकेत मिल रहे है।

पेशाब की मात्रा, उसका रंग, वेग, उसका गाढ़ापन, मिश्रण, गन्ध आदि द्वारा विभिन्न रोगों की जानकारी का सरलता से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जैसे पैशाब का पीला होने पर लीवर रोग अथवा पीलिया रोग की संभावना होना माना जाता है। पेशाब में जलन या दर्द होना पथरी अथवा मूत्रमार्ग में संक्रमण होना पाया जाता है। पेशाब में एल्ब्यूमिन आना, पेशाब पर चीटी आ जान, मधुमेस जैसे रोग के लक्षण हे। इसके अतिरिक्त मूत्र द्वारा रोग निदान के लिए मूत्र की जांच रासायनिक प्रयोगशालाओं में विशेषज्ञों द्वारा भी कराई जाती है। जिससे रोग का ज्ञान प्राप्त कर उसका सही सही उपचार किया जा सके।

9 .5सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि शरीर के विभिन्न अंगों पर उभरने वाले प्रभावों एवं लक्षणों को देखकर रोग का निदान कर सकते है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में किसी निदान हेतु पैसा व समय दोनों ही लगते है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया गया निदान स्वयं चिकित्सक द्वारा तथा बिना समय और धन के ही किया जा सकता है। निदान की जानकारी रोगी के ही देने से उसकी मानसिक संतुश्टि भी हो जाती है। लक्षणों का सामान्य ज्ञान इतना सरल है कि कोई भी व्यक्ति बिना किसी विशेष योग्यता के भी घर में स्वयं निदान जान कर तुरन्त चिकित्सा सहायता के लिए चिकित्सक के पास पहुंच जाता है। आधुनिक जीवन शैली से उत्पन्न होने वाले रोग ओर समय के अभाव के कारण आज जांच का समय निकालना भी कठिन हो गया है। ऐसे में इस सरल निदान का महत्व ओर अधिक बढ़ जाता है।

9 .4 बोधात्मक प्रश्न

1 निदान का अर्थ एवं महत्व को समझाते हुए मल मूत्र एवं पसीने द्वारा निदान कैसे किए जाता है।

2 आकृति निदान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

3 जिव्हा एवं नाखून द्वारा निदान के विभिन्न बिन्दुओं का विवेचन कीजिए।

9 .6संदर्भ ग्रंथ सूची

1 आकृति से रोग की पहचान - डॉ. लुई कुने

2 प्राकृतिक आर्युविज्ञान - राकेश जिन्दल

इकाई - 1 0 :

प्राकृतिक चिकित्सा उपचार विधियों का सामान्य परिचय (मालिश इत्यादि)

प्रस्तावना -

भारतवर्ष में मालिश अथवा मर्दन के विषय में आयुर्वेद में पूर्वकाल से वर्णन किया गया है वाग्यट्टाचार्य ''आयुर्वेद मनीशी ने मालिश विषय में बहुत वर्षों पूर्व वर्णन किया है। उल्टन का प्रयोग विवाह पूर्ण युवती व युवक के सौन्दर्य, स्वस्थ्य एवं मौपन को बढ़ाने लिए किया जाता रहा है। बहुत से आदिवासी क्षेत्रों में ऐसा किया जाने का प्रावधान है। मालिश प्राकृतिक चिकित्सा का अहम् अंग है।

इकाई संरचना

1 0 .1 7 संदर्भ ग्रंथ

1 0 .2 उधेश्य

प्रस्तुत इकाई संख्या 1 0 ''मालिश'' प्राकृतिक चिकित्सा का एक आवश्यक अंग है। इस इकाई मं मालिश के संबंध में विभिन्न जानकारियां दी गयी है। प्रस्तावना एवं मालिश का उधेश्य प्रारम्भ में है। आयुर्वेद में मालिश हजारों वर्शों से प्रयोग में लाई जा रही है। उसका परिचय आज इस इकाई में पढ़ सकेगें। मालिश के लिए रोगी एवं मालिश करने वाले का स्थान सहज होना चाहिए। मन का सूक्ष्म प्रभाव वातावरण पर अवश्य पड़ता है। रोगी एवं चिकित्सक (मालिश) की मन की स्थिति कैसी होनी चाहिए, इसका वर्णन भी इस इकाई में दिया गया है। मालिश की विधियां, प्रकार एवं सावधानियां भी आप इस इकाई से जान सकेंगें।

1 0 .3 आयुर्वेद एवं मालिश

आयुर्वेद शास्त्र में मालिश का बहुत स्थानों पर वर्णन है। वात व्याधि, स्थायुर्दौर्बल्य, मांसपेशियों की कमजोरी पक्षाघात, असामान्य रक्त प्रवाह, दूशित रक्त, चोट के दर्द, सर दर्द, नसों का दर्द आदि रोगों में विभिन्न तेलों द्वारा मालिश का प्रावधान है। वात नाशक तेलों के प्रयोगों द्वारा जोड़ों का दर्द, कमर दर्द, स्नायुवात दौर्बल्य, पक्षाघात में निल एरण्ड, यूके लिप्टस के तेलों को आधार बनाकर रोगों के अनुसार जड़ी बूटियों को मिलाकर तेल बनाया जाता है। पंचकर्म के पूर्व कर्म में भी स्नेहन (तेलों का प्रयोग) का विशेष महत्व है। इस स्नेहन क्रिया द्वारा विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकाला जाता है। पंच कर्म में विभिन्न अंगों की संरचना के अनुसार मालिश का विभिन्न बालकों द्वारा मर्दन का प्रावधान है। शिरोधार, शिरोवस्ति, शिरोपिच्चु, कटिवस्ति, ग्रीवा वस्ति, निरूहावसति, अनुवास्ता वस्ति, उलरावस्ति, नस्यातर्पण, कर्णतर्पण, पोटली मसाज

आदि विधियां आयुर्वेदिक पंचकर्म में प्रयोग की जाती है। आयुर्वेद में एक स्थान पर आया कि विष खाए हुए रोगियों के शरीर से विष निकालने के लिए मालिश अचूक चिकित्सा है।

1 0 .4 मालिश का स्थान

पौने तीन फीट ऊँची व 3 फुट चौड़ी व 7 फुट लम्बी मेज मालिश के लिए सर्वोत्तम है। इस प्रकार की मेज पर रोगी को लिटान भी आसान रहता है व मालिश करने वाले चिकित्सक थेरेपिस्ट के लिए भी आसान होती है। वैसे तो मसाज की टेबल शुद्ध मोटे कास्ट के तने की कटी हुई होनी चाएि परन्तु रोगी की क्षमता के अनुसार मेज गद्देदार भी ली जा सकती है। इस साधन के अभाव में मेज फाईबर का भी प्रयोग की जा सकती है। सबसे अधिक उत्तम काश्ट की मेज होती है क्योंकि काश्ट तेल को भी पी लेती है एवं शरीर को भी तेल पिलाने में सहयोगी है। फ्राँस युक्त काश्ट का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

1 0 .5 मनोस्थिति : मालिश करने व करवाने वाले की

मालिश करने वाला स्वस्थ, सफूर्त, उर्जायुक्त, शांत, प्रेम पूर्ण, संतुश्ट एवं निर्मल होना चाहिए। मालिश करने वाले की शक्ति का संचार चुम्बकीय उर्जा एवं चेतना रोगी को संप्रेशित होती है। इसलिए मसासर का स्वस्थ होना आवश्यक है। मसाजर भूखे पेट नहीं होना चाहिए। हल्का नास्ता, तरल पदार्थ का सेवन करने के पश्चात ही मसाजर को मालिश करनी चाहिए। मसाजर की सोच पवित्र होनी चाहिए।

मालिश करवाने वाले व्यक्ति अथवा रोगी की मनोस्थिति, एवं तैयारी होनी चाहिए। मालिश के लिए दिनचर्या से निश्चित समय निकालकर निश्चिंतपूर्वक मालिश करानी चाहिए। मन में व्याकुलता भय एवं चिंता नही होनी चाहिए। समर्पण भाव से लेटना चाहिए एवं मसाजर के प्रति सकारात्मक सोच होनी चाहिए। यह भाव भी होना चाए कि मालिश कराने से मुझे लाभ मिल रहा है।

मसाजर को शरीर के भीतरी अंगों की जानकारी भी होनी चाहिए। अधिक जानकारी की आवश्यकता नहीं है कम से कम इतनी जानकारी तो होनी ही चाहिए कि कौन सा अंग कमजोर है व कोन सा अंग मजबूत है। किस अंग को कितना दबाया, पीआ, मरोड़ा अथवा ऐंठा जा सकता है। साथ में यह ध्यान भी रखना आवश्यक है कि किसी अंग पर पहले से तो कोई चोट आदि तो नही है। रोगी को भी अपने पूव्र एक्सीडेंट अथवा चोट आदि को मसाजर को बता देना चाहिए।

1 0 .6 मालिश का शरीर के अंगों को लाभ

मालिश का शरीर के अंगों पर परोक्ष व अपरोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है जिससे शरीर चुस्त फुर्त एवं निरोगी होता है। मालिश का शरीर पर निम्न प्रभाव पड़ता है।

1 शरीर चुस्त - फुर्त एवं उर्जावान बनाता है।

2 शरीर की थकावट दूर होती है।

3 त्वचा कांलिमय बनती है।

4 मांसपेशियों को बल मिलता है एवं रक्त संचार सुचारू रूप से चलने लगता है।

5शरीर स्वस्थ एवं मन शांत होता है।

6मांस पेशियों, नस - नाड़ियों को सीधे पोशण मिलता है।

7 शरीर सुड़ौल एवं गठीला बनता है।

8 रक्त का संचालन समान रूप से होने लगता है।

9 रक्त विकार, स्वास, पसीना, मल-मूत्र क्रिया ठीक प्रकार से कार्य करने लगती है।

1 0 फेफड़ों, गुर्दे, आंतों, त्वचा व अन्य ग्रंथियों को शक्ति और मजबूती प्राप्त होती है।

1 1 त्वचा के रोम खुलकर साफ हो जाते है।

1 2 नव चेतना, स्फुति एवं बल प्राप्त होता है।

1 3 व्यायाम न कर पाने वालों के लिए एवं आलसी लोगों के लिए मालिश सर्वोत्तम है। मालिश वास्तव में मांस पेशियों की कसरत है।

1 4 मालिश सम्पूर्ण शरीर के लिए लाभकारी है।

1 5मालिश से विषाक्त पदार्थ। विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकालने की तैयारी करते है।

1 0 .7 मालिश की विधियाँ

मालिश करना किसी कला से कम नही है। मालिश करने वाले को नृत्य का अभ्यास करना चाहिए। यह एक प्रकार की हस्त नृत्य कला है। थोड़ी सी संगीत समझ मालिश में चार चांद लगा देती है। मालिश कला को सीखने के लिए निम्न तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है।

1 दीर्घ मर्दन - हाथ को शरीर के अंगों पर लम्बाई में फेरना दीर्घ मर्दन कहलाता है। पीठ, हाथ, पैर, उदर आदि पर तेल लगाकर हाथ को लम्बाइ में ऊपर नीचे फेरते हैं।

2 अल्प मर्दन - हाथ को थोड़ी थोड़ी दूरी पर शरीर पर चलाया अल्प मर्दन कहलाता है। रीढ़ के मणकों, जोड़ों, ग्रीवा व नितम्ब पर इस तकनीकी का प्रयोग करते है।

3 मण्डल मर्दन - गोलाई में मण्डलाकार हाथ को घुमाना मण्डलमर्दन कहलता है। पेट, कटि, कन्धे, छाती, नितम्ब, स्तन आदि पर मण्डल मर्दन का प्रयोग करते है।

4 उपलेप मर्दन - पैंच को कसने की भांति किसी अंग विशेष कर हाथ को घुमाते हैं। पिण्डलियों, जंघाओं कटि, एडी व हथेली पर इस का प्रयोग है।

5ताड़न मर्दन - मुक्का, हथेली, कोहनी, अथवा चांओी द्वारा नितम्ब, पीठ का ऊपरी भाग, पीठ, छाती पर इस प्रयोग को किया जाता है।

6चालन मर्दन - जोड़ों को मालिश के समय विभिन्न दिशा में चलाना चालन मर्दन कहलाता है। सामान्य रूव से इसे साधारण भाशा में हाथ फेरना थपथपाना, मसलना, मरोडना, घर्शण, झकोरना, स्पर्श तथा तेल लगाना, दलन, निचोड़ना, अंगूठे व अंगुलियों का दबाव, बेंकना, सहलाना दबाना, गुंथना, बोलना, लुड़काना, कम्पन देना, चुटकी भरना, पेंच मरोड़ना, जोड़ मसलना, सूतना व पीटना आदि नामों से जाना जाता है।

1 0 .8 मालिश करने की सही विधि

अंग संरचना के अनुसार ही मालिश की विभिन्न विधियों को प्रयोग में लाया जाता है। पीठ, हाथ, पैर, उदर आदि की लम्बाई अधिक होने के कारण इन भागों पर दीर्घ मालिश (मर्दन) कियो जाता है। सर्वप्रथम मालिश के लिए इन्ही अंगों से प्रारम्भ करते है। सामान्यतः मालिश हृदय की दिशा में की जानी चाहिए। परन्तु उच्च रक्त चाप की स्थिति में मालिश हृदय से विपरीत दिशा में की जानी चाहिए।

पैरों व हाथों की अंगुलियों, टखनों, कलाई, छोटे जोड़ों, ग्रीवा घुटनों की मालिश के लिए अल्प मर्दन की आवश्यकता होती है। इन अंगों पर हाथों की अंगुलियों द्वारा मधुर मर्दन किया जाता है। इन अंगों में रक्त का प्रवाह थोड़ा थीमा बहता है व स्नायु का संचार भी बाधित रहता है इसलिए इन अंगों में तेल द्वारा मालिश से रक्त का संचार सामान्य एवं स्नायु तंत्र को विकसित करने के लिए इन सुक्ष्म अंगों पर अल्प मर्दन किया जाता है हालांकि अल्प मर्दन में समय अधिक लगता है परन्तु यह अल्प मर्दन बहुत की लाभकरी मालिश की प्रक्रिया है।

पेट, कटि, कंधे, छाती, नितम्ब, स्तन आदि की मांस पेशियां रेखिए होने के बावजूदभी विभिन्न दिशओों में गठित होती है। ऐसे में मण्डल मर्दन द्वारा गोलाई में अािवा अर्धगोलाकर चापीय विधि का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में मांसपेशियां जिस प्रकार गठित होती है उसी दिशा में मालिश करना अथवा उसके विपरीत दिशा में मालिश करना उत्तम माना जाता है। इन अंगों को मांसपेशियों के अनुसार मालिश की जाती है।

नितम्ब, जांघा, पीठ की उपरी भाग, बाजु, शरीर के मजबूत अंग होते हैं इसलिए इन अंगों पर ताड़न मर्दन किया जाता है मुक्का, मुट्ठी, हथेली, चाप, चांटी, हथेली से अथवा खड़े होकर इन मांसपेशियों को ठोका, पीटा, दबाया व मसला जाता है।

पिण्डलियों एडियों, जंघाओं, घुटने के पीछे, नितम्ब, हथेली पर उपलेपन मर्दन किया जाता है। इसमें अंगुली, हथेली, अंगुली की हड्डी अथवा कोहनी द्वारा पेच की भांति इन अंगों को घुमाते है।

कमर दर्द में सम्पूर्ण रीढ की गरम तेल से मालिश लाभकारी है। रीढ़ के मनकों के दोनों और अंगूठों से मालिश की जाती है। इसमें मालिश ऊपर से नीचे करनी चाहिए। सबसे उपरी प्रथम सरवाईबल केशेरूका सेसबसे नीचे की कशेरूका पुच्छन कशेरूका तक अंगूठों को लाया जाता है। बीच बीच में लम्बर भाग के पास श्रोणी मेखला पर अंगूठे को लाकर दोनों और फिसला देते है। बीच बीच में हल्की थपथपी एवं मक्के भी लगा सकते है। मालिश द्वारा उपरी मांसपेशियों को रगड़कर गरम भी किया जाता है।

सियाअिका में मालिश पैर की अंगुलियों एवं टखनो से प्रारम्भ कर कुल्हे तक की जाती है। बीच मे घुटने के पास हाथ को रोक सकते हैं। घुटने से कुल्हें तक एवं कुल्हे से कमर तक मालिश की जाती है।

10.10 सम्पूर्ण शरीर की मालिश

सम्पूर्ण शरीर मालिश पक्षाघात, जोड़ों का दर्द, गविया, मांसपेशियों की पृश्ठता,रक्त संचालन, रक्त प्रवाह, स्नायुदौर्वल्य, कब्ज, हृदयरोग आदि से विशेष रूप से लाभकारी है। सम्पूर्ण शरीर की मालिश का वैसे तो लगभग हर व्यक्ति को लालच रहता है परन्तु उपरोक्त रोगों में यह मालिश विशेष रूप से लाभकारी है। सम्पूर्ण शरीर की मालिश करते है तो अधिक लाभकारी है। कुछ अधिक लग्जरी अस्तपाएगे में 2 से अधिक थटैलिस्ट भी मालिश करते है।

सम्पूर्ण शरीर की मसाज के लिए सबसे पहले सम्पूर्ण शरीर पर तेल लगाकर कुछ समय के लिए छोड़ देते है। इससे तेल त्वचा को अच्छी प्रकार से स्निग्ध बना देता है। सम्पूर्ण शरीर पर तेल लगाने के पश्चात् हाथों पेरों की दीर्घ मर्दन तकनीकी द्वारा मालिश करते है। सामान्यतः हाथों पैरों की मालिश नीचे से उपर की और (हृदय की ओर) की जाती है। परन्तु उच्च रक्त चाप की स्थिति में मालिश विपरीत दिशा में भी की जाती है। हाथों एवं पैरों को गोलाकार चूड़ीनुमा स्थिति में मरोड़ा जाता है। थेरेपिस्ट अपने दोनों हाथों को मालिश वाले हाथ अथवा पैर पर चुड़ीनुमा घुमाते है। जोड़ों को भी चारों और सम्भव दिशा में घुमाया जाता है। कन्धे से कुल्हे, घुटने व कोहनियों की मालिश अच्छी प्रकार करनी चाहिए।

इसके पश्चात छाती व पेट की मालिश की जाती है। मालिश जिस अंग की करते है तो यह ध्यान भी रखना आवश्यक है कि जहां पर हाथ चल रहा है उसके नीचे कौन सा शरीर का भीतरी अंग है। इस भाव के साथ मालिश करें कि शरीर के बाहर व भीतरी अंगों को लाभ मिल रहा है। अच्छे भाव एक विशेष मालिश की तकनीकी को जन्म देते है।

1 0 .1 1 एक्यूप्रेशर मसाज

शरीर में विभिन्न स्थानो पर कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु होते है जिनके दबाने से अन्य सादृश्य अंगों को लाभ मिलता है। सम्पूर्ण शरीर में उर्जा का प्रवाह 1 4 विभिन्न मेरिडियनों में होता है। इन्हीं मेरिडियनों में कुछ मुख्य बिन्दु होते है। ये मसाज के समय इन बिन्दुओं को दबाने से रोगों में लाभ मिलता है। मेरिडियन मसाज भी की जाती है। मेरिडियन मसाज में उर्जा का प्रवाह बड़ाया अथवा घटाया जाता है। कुछ विशेष बिन्दुओं को मसाज के समय दबाने से होने वाले लाभों को वर्णन यहां किया जा रहा है।

रीढ़ के दोनों और व रीढ के एक्यूप्रेशर मेरिडियनों के सैकड़ों बिन्दु होते हैं जिस पर मालिश एवं दबाव देने से बहुत से अंगो को परोक्ष रूप से लाभ मिलता है। हाथ पर एल 1 , एल 1 4 एचपी आदि मेरिडियन होते हैं जिनकी मालिश बहुत ही लाभकारी है। इसी प्रकार पैर पर भी एस पी मेरिडियन होते है। इनकी मालिश भी बहुत लाभकारी है। छाती व पेट पर भी इसी प्रकार लाभ प्राप्त होते है। कान अपने आप में सम्पूर्ण सादृश एक्यू बिन्दुओं को धारण किया गया है। कान की संरचना लगभग उसी प्रकार की होती है जैसे कि गर्भकाल में बालक गर्भाशय में उल्टा लअका होता है। दोनों कान पर सम्पूर्ण

शरीर के एक्यूबिन्दु स्थित होने के कारण कान की विभिन्न प्रकार से मालिश होती है। कान के इन बिन्दुओं के दबते व मालिश के कारण शरीर को स्वस्थ रहने में लाभ मिलता है।

सिर पर भी बहुत से एक्यूप्रेशर बिन्दु होते है। डीयू 2 0 सिर के शीर्श भाग पर स्थित है यह बिन्दु सैकड़ो एक्यू बिन्दुओं के बराबर लाभकारी है। इसकी मालिश एवं दबाव शरीर संतुलन बनाने में लाभकारी है। हाथ की हथेली, अंगुलियां एवं तलुओं पर भी बहुत से एक्यू बिन्दु होते है जो अपरोक्ष रूप से शरीर के विभिन्न अंगों से संबंधित है। हथेली एवं तलुओं की मालिश एवं बिन्दु दबाव से रोगी को स्वमेव ठीक करना है।

टखने एवं कलाई की मालिश भी लाभकारी है। रोगी स्वयं जीभ की मालिश करे। पक्षाघात, जीभ स्वाद बिगड़ना, पित्त प्रकोप, तुतलाना, हकलाना जीभ की मालिश से ठीक होने लगता है। बच्चा देर में बोलना सीखे तो जीभ की मालिश लाभकारी है।

नेत्रों के चारों और के बिन्दु दबाव एवं मालिश नेत्रा दोशों को दूर करने में लाभकारी है।

1 0 .1 2 योगासन व्यायाम एवं मालिश

योग एवं व्यायाम में बहुत से व्यासन एवं व्यायाम ऐसे है जिनसे शरीर का स्वमेव मालिश हो जाती है। इस प्रकार शरीर को स्वस्थ करने के लिए मालिश का उपयोग योग एवं व्यायाम के माध्यम से भी किया जा सकता है। योगासन अभ्यास करने से अंगों के भीतरी मालिश होती है। जब किसी भासन की स्थिति में रूका जाता है तो कुछ अंग दबते है व कुछ अंग फैलते व कुछ अंग स्वभाविक रूप से सिकुड़ते है। जब इसके विपरित योगासन किया जाता है तो दूसरे अंगों में फैलाव व सुकड़ाव आता है। इस प्रकार सुकड़ना व फैलना शरीर के अंगों में स्थित विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने का दबाव डालता है व आवश्यक पोशक पदार्थों का संख्य एवं उपाचयन को समान्य करने में लाभकारी होता है। उदाहरण के लिए आनु शिरासन में पैर फैलाकार बैठते है। बांया पैर सिकोड़कर दाऐं पैर के जंघामूल में लगाते है तथा दायां पैर सीधा रखते है। सांस को बाहर छोड़ते हुए आगे की और झूकते हैं। दोनों हाा पैर से पैरों की अंगुलियों को स्पर्श करते हुए माथे को घुटने से लगाते है। यह जानुशिरासन की पूर्व स्थिति है। इस स्थिति में शरीर के भीतर अंग दांई और यकृत, दायी वृक्क, दायां फेफड़ा आंतों की दायां भाग दबता है एवं अग्नाश्य बाया वृक्क, बायां फेफड़ा एवं आतों का बायी ओर का भाग फैलता है। इस स्थिति में कुछ अंगों में सिकुडन होती है व कुछ अंगों में फैलाव होने के कारण इन अंगों की उपापचय क्रियाएं सामान्य होती है। एवं अंगों से विजातीय द्रव्यों का निश्कासन एवं पोशक पदार्थों की संचय होता है । जब इसी अनुशिरासन को दायें पैर को फैलाकर एवं बाये पैर को सिकोड़कर करते है तो इसके विपरीत अंग फैलते व सिकुड़ते है। इसी फैलने व सिकुड़ने के कारण रक्त का प्रवाह सामान्य होकर शरीर के अंगों की मालिश द्वारा इन अंगों को लाभ प्राप्त होता है।

पवन युक्वासन की तीसरी स्थिति में जिससे सीधे लेटकर दौनों पैरों का घुटने से मोड़कर पकडते है इस स्थिति में रीद्र की मालिश बहुत अच्छी होती है। रीढ की मालिश के लिए दो आसने के मध्य एवं व्यायाम की चर्चा भी यहां कर रहे है।

एक बार पाशचिमोतानासन एवं एक बार सर्कोबासन (हलासन) में बार बार आने से भी इस व्यायाम द्वारा रीढ की बहुत अच्छी मालिश होती है।

मालिश का अर्थ जहां पर भी घर्शण पैदा हो वही मालिश है। इन भीतरी अंगों को फैलाने व सिकोड़ने में प्राकृतिक घर्शण पैदा होता है। इस प्रकार योग,व्यायाम एवं प्राणायाम द्वारा भी मालिश का लाभ प्राप्त होता है।

1 0 .1 3 मालिश के प्रकार

यहां मानिश के प्रकार से तात्पर्य है कि मालिश के द्रव्य एवं विधियां। मालिश के विभिन्न द्रव्यों से की जाती है। रोग की स्थिति, ॠतु एवं मौसम की स्थिति के अनुसार विभिन्न द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार मालिश के भी विभिन्न प्रकार है।

1 सूखी मालिश - साधारणतः सूखी मालिश दो प्रकार से की जा सकती है। हाथ, हथेली द्वारा साधारण घर्शण बिना किसी द्रव्य के किया जाता है। दूसरे प्रकार है किसी सूखे तौलिये अथवा कपड़े द्वारा भी मालिश की जा सकती है। सूखी मालिश सामान्य रक्त संचार के लिए होती है। आलस्य, सुस्ती, निःमन रक्त चाप, भूख न लगना, अपच, गैस, शरीर का दर्द में सूखी मालिश लाभकारी है। तैलीय त्वचा के सूखी मालिश अति लाभकारी है।

2 जलीय मालिश - जलीय मालिश भी दो प्रकार से की जाती है। हाथ पर जल लेकर रोगी के शरीर को इसी पानी द्वारा रगड़ा जाता है। जल के सूखने पर बार बार हाथ को जल में गीला करके मालिश की जाती है। खुश्क त्वचा में जलीय मालिश की जाती है।

जल को शरीर के भाग को आंशिक अविा गले से नीचे डुबोकर भी अंगों की मालिश की जाती है। टप स्थान मे चेडू संस्थान की जलीय मालिश कपड़े के द्वारा रगड़कर की जाती है। इससे आंते मूलायम होती है। शरीर के पेडू संस्थान के अंग गुदे, आंतों, मुत्राशय, यकृत, तिल्ली, अग्नाश्य को लाभ मिलता है।

पूर्णटब स्थान में शरीर की जलीय मालिश पूरे शरीर की करना लाभकारी है। आजकल इलैक्ट्रानिक मशीनरी युग में जेट स्नान, जकुजी, बलपूल स्नान, सर्कलुर जेट का प्रयोग किया जाता है। रीढ़ की मालिश के लिए स्पाइनल बाध टब का रूपान्तरित यंत्र स्पाइलन जेट स्प्रे से रीढ की मालिश अच्छी प्रकार से हो जाती है। टब स्नान देने से पूर्च भी पेडू के भाग को अच्छी प्रकार से रगड़ा जाता है।

3 जलीय तेल से मालिश - तेल के अणु मोटे होने के कारण शरीर के त्वचा रेन्डो में नही पहुंच पाते तेल को नव बल के साथ मिलाया जाता है तो यह बलीय तेल हो जाता

है। हालांकि जल तेल के साथ पूर्णतः नही मिल सकता परन्तु जल इस जल व तेल के साथ पूर्णतः नही मिल सकता परन्तु जब इस जल व तेल की मालिश शरीर पर होती है तो ये शरीर के ताप एवं मालिश की रगड़ के कारण तेल के अणुओं के साथ मिलकर पतला तेल बन जाता है। इसे वैज्ञानिक भाशा में इमलसीफिकेशन कहते है। वसा के पाचन के पश्चात वसीय अमल ऑल रस व अग्नाश्य रस के साथ मिलकर पतले वसीय कणों में परिवर्तित हो जाता है, जिससे वसा का अवशोशण रक्त वाहिनियों में आसान हो जाता है। जलीय तेल द्वारा त्वचा मुलायम बनती है। किसी भी तेल की जलीय प्रयोग सम्भव है परन्तु वायु नाशक गरम तेल से पहले से ही पतले एवं आसानी से त्वचा में अवशोशित हो जाते हैं के साथ जल का प्रयोग उत्तम नही है।

4 घृत मालिश - गाय का शुद्ध देशी घी मालिश के लिए बहुत उत्तम माना गया है। घी खाने से भी उत्तम घी की मालिश है। सर्दियों में अथवा खुश्क त्वचा पर भी घी की मालिश का प्रयोग किया जाता है।

5ठंडे पानी से मालिश - शरीर को शक्ति प्रदान करने के लिए, रक्त संचार एवं विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में लाभकारी है। ठंडे जल को कपड़े से मालिश रक्त में लाल रक्ताणुओं की संख्या भी बढ़ती है जीवनी शक्ति का भी विकास होता है। गर्मियों में व लू के दिनों में ठंडे कपड़े की मालिश अत्यन्त लाभकारी है। ज्वर में यह ठंडा वस्त्र स्थान बहुत लाभकारी है।

6गरम पानी की मालिश - गरम पानी में तौलिया भिगोकर शरीर की मालिश की जाती है। इस गरम पानी का कपड़े द्वारा रगड़ स्नान त्वचा के रोमछिद्रों को खोल देता है। शरीर खुलता है। आथरिडाठसे, जोड़ों का दर्द, स्पानल दर्द, सुस्ती कमजोरी में गरम जल स्पंज बांध लाभकारी है।

7 बर्फ की मालिश - शरीर में किसी भी स्थान पर सूजन, दर्द एवं रक्त प्रवाह की स्थिति में बर्फ की मालिश लाभकारी है। सूजन में बर्फ की मालिश बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुई है। आईस पेक भी दिया जा सकता है। बर्फ की मालिश से शरीर के भीतर के अंगों में संकुचन होने के कारण सूजन कम होती है।

8 अन्य द्रव्यों का प्रयोग - एलोवीरा की मालिश भी अंगों को पुश्टि प्रदान करती है। त्वचा के कालेपन एवं मृत कोणे को साफ करने में नींबू की मालिश लाभकारी है। कच्चे दूध की मालिस त्वचा में गोरापन प्रदान करती है।

9 धूप में मालिश - प्रातः काल के समय हल्की 2 0 से 3 5 सेन्टीग्रेड ताप पर धूप में मालिश करना लाभकारी है। सर्दियों के दिनों में दोपहर के समय में भी धूप की मालिश की जा सकती है। धूप की मालिश की सबसे बड़ा लाभ यह है कि धूप की किरणों से त्वचा में विटामिन डी की मात्रा बढ़ती है। यह विटामिन हड्डीयों के लिए अत्यन्त लाभकारी है। आधुनिक खोजों द्वारा भी यह निश्कर्श निकाला जा चुका है सूर्य की धूप शरीर के लिए कितना लाभकरी है हारर्वड विश्वविद्यालय में की गयी खोजों के अनुसार

बोड़ो के दर्द में सूर्य की धूप अत्यन्त लाभकारी है। भारतीय ग्रंथों में तो सूर्यकी धूप की महिमा का बहुत ही गुणगान भी इसलिए है कि सूर्य अरोग्य प्रदान करता है।

सूर्य की धूप एवं तेल की मालिश की समन्वय बहुत ही लाभकारी है। धूप में भी शरीर खुलता है एवं तेल की मालिश से अंग गरम होकर रक्त संचार सामान्य होता है।

1 0 चहरे की मालिश - अधिकतर लोग सुन्दर दिखना चाहते है। देखने व दिखाने में चेहरा सबसे प्रथम आता है। चेहरे केसौन्दर्य के लिए चेहरे की मालिश की जाती है। त्वचा पर फुन्सियों का होना, एक्ने, खुश्की, कालापन आदि का कारण चेहरे की त्वचा एवं मांसपेशियों को भीतर से आक्सीजन न मिलना एवं रक्त की अशुद्धि होती है। रक्त की अशुद्धि एवं आक्सीजन का अभाव रक्त प्रवाह के सामान्य न होने के कारण एवं पोशक तत्वों का अभाव होता है। कई बार त्वचा तेलीय अथवा अधिक खुश्क होने के कारणों भी ऐसा होता है।

त्वचा पर विभिन्न मालिश रोग, लक्षण एवं आवश्यकता अनुसार की जाती है। उदाहरण के लिए - मलाई, घी, जलीय तेल, नारियल तेल, कच्चा दूध, बेसन व तेल एलोवीरा, नीबू, संतरे का छिलका चंदन तेल ------------ की मालिश की जाती है।

1 0 .1 4 मालिश के संबंध में सावधानियां

एक ओर मालिश जहां शरीर के लिए लाभकारी एवं मनभावन होती है वही दूसरी और बिना ध्यान पूर्वक सोचे समझे कही की भी मालिश करा लेना हानिकारक सिद्ध हो सकती है। मालिश से किसी प्राकर की कोई हानि न हो इसके लिए बहुत सी सावधानियां को स्मरण रखना आवश्यक है जो निम्न है -

1 मालिश अच्छे कुशल प्रशिक्षित मसाजर से ही करानी चाहिए।

2 कुछ रोग विशेष में मालिश बिल्कुल न करें। ऐपेन्डोसाइटिस, केंसर, फोड़ा, चर्म रोग, तीव्र दर्द, हर्निया, गर्भावस्था व महावारी के समय मालिश करना वर्जित है। किसी विशेष परिस्थितियों में चिकित्सीय परामर्श से ही करें। हालांकि गर्भावस्था हार्निया अथवा कुछ रोगों में हाथ पैर की मालिश की जा सकती है।

3 शरीर के अंगों की मालिश अंग सरंचना के अनुसार होनी चाहिए। मांस पेशियों की संरचना, जिस रेखीय दिश में होती है उसी दिशा में मालिश लाभकारी है। रीढ के स्नायु जिस रेखीय दिशा में हो उधर मालिश लाभकारी है। इसमें यह भी ध्यान रखना होता है कि रीढ के मणकों की मालिश गोलाकार दिशा में की जाती है। शरीर में जिस स्थान पर एक से अधिक अंग होते है उनका ध्यान रखकर भी मालिश की जाती है।

4 मालिश को गलत ढंग से न करें। बिना सोच समझे गलत ढंग से की गयी मालिश हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

5मालिश पसीना पोछकर करनी चाहिए।

6तेल अथवा मालिश का द्रव्य सोच समझकर चुनना चाहिए। दर्दों से स्नायु दौर्वल्या, पक्षाघात, सौन्दर्य की अवस्थाओं में अलग अलग मालिश के द्रव्य होते है।

7 मालिश खुले स्थान पर की जानी चाहिए। हल्की धूप हो तो उत्तम है। पसीने वाली गर्मी में मालिश हवादार स्थान पर करनी चाहिए।

8 सर्वप्रथम हाथ पैरसे मालिश प्रारम्भ करें। सिर की मालिश सबसे बाद में करें।

9 मालिश से पूर्व पेट का साफ होना (कब्ज) आवश्यक है।

1 0 प्राकृतिक उपचार - मंथन अन्य शोधन क्रियाओं के पश्चात मालिश का कई गुणा लाभ मिलता है।

1 1 स्थानीय मालिश की समय 1 5 से 2 0 मिनट व सम्पूर्ण शरीर की मालिश का समय 60 मिनट से 9 0 मिनट तक उचित है।

1 2 मालिश से पूर्व सर्वप्रथम त्वचा पर तेल लगाकर 1 0 -1 5 मिनट के लिए छोड़ दें। इससे त्वचा व तेल अच्छी प्रकार से मिल जाते है।

1 3 ध्यान रहे मालिश सब कुछ नहीं है। जीवन को सुखी स्वस्थ एवं आनन्दित बनाने के लिए आहार व विचार शुद्धि में भी होना आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्य साधनों में भी विश्वास आवश्यक है।

1 0 .1 5 सारांश

मालिश प्राकृतिक चिकित्सा की एक आवश्यक साधन है प्राकृतिक चिकित्सा नहीं रोगी का विश्वास प्राकृतिक चिकित्सा आहार-विहार, जीवन शैली में भी होना चाहिए। प्रारम्भ में रोगी की मालिश रोग को कम करने के लिए की जाती है। बाद में रोगी मालिश की इच्छा प्रकट करने लगता है। आयुर्वेद में भी मालिश की सह सदियों में वर्णन है। विभिन्न रोगों में मालिश चिकित्सा सहायक उपचार का कार्य करती है। प्राकृतिक चिकित्सा में मालिश का विशेष स्थान है। इस बात को रोगी भी अच्छी प्रकार से समझता है। रोगी व मालिश करने वाले सुलभता के लिए मालिश मेज का आकार उचित होना चाहिए। स्थान के साथ - साथ जहां पर रोगी को लिटाया जाता है वह कपड़ा, काश्ट अथवा प्लास्टिक भी उचित होनी चाहिए। मालिश करने व करवाने वाले की मनोस्थिति भी रचनात्मक, कलात्मक अथवा काव्यात्मक होनी चाहिए। मालिश कराने वाले को ग्राही बनकर एवं करने वाले को सेवा दाता बनकर काम करना चाहिए।

मालिश करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग करना चाहिए। दीर्घ मदन, अल्प मर्दन, मण्डल मर्दन, उपलेपन, ताड़न व चालन मर्दन का प्रयोग अंगों के अनुसार करें।

मालिश करने की सही विधि प्रयोग में लानी चाहिए। विभिन्न रोगों में मालिश का प्रयोग कश्ट के अनुसार करना चाहिए। सम्पूर्ण शरीर की मालिश के लिए समय से निश्चित होकर मालिश करें अविा करें। एक्यूप्रेशर मसाज के लिए यदि बिन्दुओं की जानकारी है तो बहुत ही उत्तम होगा। अन्यथा मालिश करते करने स्वमेव अनुभव हो जाता है कि किन बिन्दुओं को दबाने से लाभ मिलता है।

विभिन्न मालिश की विधियां सूखी मालिश, बलीय मालिश, धृत मालिश, ठंडे व गरम जल मालिश, बर्फ मालिश, एवं धूप मालिश का लाभ अलग अलग प्राप्त होता है। मालिश के सम्बन्ध में दी गई जानकारियों का विशेष ध्यान रखें।

1 0 .1 6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1 आयुवेर्द चिकित्सा में मालिश का क्या महत्व है? वर्णन करो।

2 मालिश के लिए स्थान किस प्रकार का होना चाहिए?

3 मालिश करने व कराने वाले की मनोस्थिति किस प्रकार की होनी चाहिए।

4 मालिश का शरीर के अंगों को किस प्रकार लाभ मिलता है, स्पश्ट करो?

5मालिश की विभिन्न विधियों का वर्णन करो।

6मालिश करने की सही स्थिति क्या है?

7 विभिनन रोगों के मालिश किस प्रकार की जाती है?

8 योगासन एवं व्यायाम में मालिश किस प्रकार होती है।

9 मालिश के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करो।

1 0 मालिश करते वक्त किन किन सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए।

1 0 .1 7 संदर्भ ग्रंथ

1 प्राकृतिक आयुविज्ञान

2 वृहद प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

3 **Panckhama- Dr.G.Shrinivara Acharya**

इकाई - 1 1 :

चुम्बक चिकित्सा

इकाई की रूपरेखा

1 1 .1 परिचय

1 1 .2 उधेश्य

1 1 .3 चुम्बक चिकित्सा का इतिहास

1 1 .4 चुम्बक की परिभाषा

1 1 .5चुम्बक द्वारा चिकित्सा

1 1 .6चुम्बक के भौतिक गुण

1 1 .7 चिकित्सा के लिए चुम्बकों का चयन

1 1 .8 चुम्बक चिकित्सा की वैज्ञानिकता

1 1 .9 चुम्बक चिकित्सा से लाभ एवं सावधानियां

1 1 .1 0 महत्वपूर्ण प्रश्न

1 1 .1 1 संदर्भ ग्रंथ

1 1 .1 परिचय

प्रतिदिन काम आने वाले अनेक यंत्रों और उपकरणों में छोटे बड़े विद्युत चुम्बकों का व्यवहार होता है। बिजली की घंटी में टेलीफोन में विद्युत चुम्बक का व्यवहार होता है, क्योंकि विद्युत चुम्बक में यह विशेषता है कि उसमें विद्युत धाराबहते ही वह चुम्बकित हो जाता है। विद्युत परिपथ में विद्युत चुम्बक के द्वारा रिले का काम लिया जाता है। इसी प्रकार न जाने कितने प्रकार के स्वचालित यंत्रों में विद्युत चुम्बकों का उपयोग होता है।

आधुनिक युग में चुम्बक के प्रयोग से हर छोटी से छोटी तथा बड़ी से बड़ी समस्या या समाधान किया जा सकता है। इसका प्रयोग केवल मशीनों, गाड़ियो, इमारतों तक ही सीमित नहीं है वरन् यह चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रयोग किया जा रहा है, इसके प्रयोग से बड़े बड़े रोगों में भी सफलता प्राप्त हो रही है। जीव चुम्बकत्व के सिद्धान्तानुसार खोजी गई चुम्बक चिकित्सा प्रणाली द्वारा विभिन्न रोगों पर अनेक सफल प्रयोग तथा अनुसंधान

न केवल अमेरिका, रूस एवं जापान जैसे देशों में बड़े पैमाने पर किये जा रहे हैं। भारत में भी अनेक वैज्ञानिक डॉक्टर, योगी एवं प्राकृतिक चिकित्सक भी इसका प्रयोग कर रहे हैं।

1 1 .3 चुम्बक चिकित्सा का इतिहास

प्राचीन काल के आर्य लोग चुम्बक को आशमा कहते थे और इसके विशेष गुण लोहे को अपनी ओर आकर्शित करने वाली शक्ति से भली भांति परिचित थे।

वह यह भी जानते थे कि चुम्बक में ऐसी शक्ति है वह शरीर में आने वाले रोगों को ठीक कर सकती है।

आधुनिक युग में चुम्बक की खोज ईसा से कई वर्श पहले हुई। इस विषय में कई तथ्य सामने आते हैं। जैसे आज से लगभग 2 50 0 वर्श पहले मैग्नेज नामक गड़रिया जिसके हाथ मे ंएक लाठी मैग्नेज नामक लोहे का एक छल्ला लगा था जब वे मांउटईडा पर घूमने गया तो वह लाठी पत्थर से चिपक गई जिसके कारण उसका चलना मुश्किल हो गया था। उस समय उस पत्थर को ‘‘लोडस्टोन’’ के नाम से जानते थे बाद में मैग्नेज ने इसकी लोह आकर्शण शक्ति का भी पता लगाया। इसी कारण बाद में इस पत्थर का नाम ‘‘मैग्नेट’’ रख दिया गया।

3 0 0 वर्श ईसा पूर्व यूनान के लोग मैग्नेट के चकमक पत्थर के नाम से पुकारते थे। इसकी चर्चा महान दार्शनिक आरस्तु अकलातून और हौयर के ग्रंथों में भी पायी जाती है। जब चीन के नाविकों को इस बात का पता चला कि प्रकृति में पाये जाने वाले इस पत्थर से ‘‘दिशा-निर्देश’’ का भी काम ले सकते हैं तो उन्होंने अथक परिश्रम के पश्चात् एक‘‘दिशा सूचक’’ यंत्र बना डाला जिसकी सहायता से वे सभुद में अपना रास्ता खोज लेते थे। इस लिए उन्होंने इसका नाम ‘‘दिशा-निर्देशन’’ पत्थर रखा जो बाद में विकसित होकर स्विटजरलैण्ड के प्रसिद्ध कोमियागर डॉक्टर और रहस्यवादी किलिपस और योलोस पैरासेल्स (1 4 9 3) ने चुम्बक के इतिहास में बडा नाम कमाया। उन्होंने (1 54 1) चुम्बक की विशेष शक्तियों से रोग दूर करने की शक्ति का पहली बार वर्णन किया। उन्होंने लिखा है कि चुम्बक विशेष रूप से सूजन एवं त्वचा के छिलने में अंतडियों एवं गर्भाशय के रोगों में और इसके अतिरिक्त शरीर की बाहरी और अन्दरूनी अनेक व्याधियों को दूर करने में सहायता देता है। आधुनिक चुम्बक चिकित्सकों ने कई शताब्दी पूर्व लिखी अनेकों बातों व खोजों से एक नई दिशा प्राप्त है।

अपने समय के प्रसिद्ध डॉक्टर पिलियम गिल्बर्ट (1 54 0 -1 60 3) में महारानी रलिजा वंथ डॉक्टर भी थे। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सबसे पहले बताया कि पृथ्वी एक बहुत बड़े चुम्बक के समान है। जिसको प्रमाणित करने के लिए उन्होंने कई प्रयोग किए। जैसे उन्होंने एक लोहे की छड़ भूमि में दबा दी जिसका एक सिरा उत्तर की ओर एवं

दूसरा सिरा दक्षिण की ओर था और उस समय हथोड़े लगाये फलस्वरूप पृथ्वी के प्रभाव से उस में चुम्बकत्व आ गया आदि। और माइकेल फैराडे शोध रिकोर्ड के अनुसार डॉ. गिलबर्ट ने चुम्बक विज्ञान पर 1 60 0 से अधिक प्रयोग किए। चुम्बक के विभिन्न भौतिक अनुसंधान के अतिरिक्त उन्हें जीव चुम्बकत्व एवं चुम्बकत्व - रसायन शास्त्र का संस्थापक भी माना जाता है।

भारत में चुम्बकत्व रसायन शास्त्र के सिद्धान्तों और उनके प्रयोग के बारे में सबसे पहला ग्रंथ 1 9 3 5 में डॉ. शक्ति स्वरूप भटनागर एवं डॉ. के.एन. माथुर ने लिखा। उन्हें इस काम के लिए एक पुरूस्कार से सम्मानित किया गया।

चुम्बक - चुम्बक वह पदार्थ या वस्तु है जो चुम्बककीय क्षेत्र उत्पन्न करता है। चुम्बकीय क्षेत्र अदृश्य होता है और चुम्बक का प्रमुख गुण आस पास को चुम्बकीय पदार्थ को अपनी ओर खीचने एवं दूसरे चुम्बकों को आकर्शित या प्रतिकर्शित करने का गुण इसी के कारण होता है।

चुम्बक के प्रकार -

चुम्बक दो प्रकार के होते हैं कुछ चुम्बक प्राकृतिक रूप से भी पाये जाते हैं। प्राकृतिक चुम्बक प्रकृति में खनिज के रूप में मिलते हैं। इन प्राकृतिक चुम्बकों को शक्ति के एक समान रहती है। इस घटाया या बढ़ाया नही जा सकता। इस कारण चुम्बक चिकित्सा में प्राकृतिक चुम्बकों का प्रयोग मुक्त ढंग से करना सम्भव नहीं है। किन्तु कृत्रिम चुम्बक जिसे मानव ने इस प्रकार से तैयार किया हो कि वह चुम्बक विभिन्न शक्ति के और अनेक आकार प्रकार के हो। चुम्बक चिकित्सा में इन्हीं कृत्रिम चुम्बकों का प्रयोग किया जाता है।

कृत्रिम चुम्बक भी दो प्रकार के होते है -

1 स्थाई चुम्बक

2 अस्थाई चुम्बक (विद्युत चुम्बक)

1 स्थायी चुम्बक - यह चुम्बक एक बार बन जाये तो उनकी शक्ति सदा एक सी बनी रहती है। इसी कारण इसका नाम स्थायी चुम्बक है। यदि इन्हें सौ वर्श या अधिक समय तक रखा जाए तब भी इनकी शक्ति एक जैसी ही रहेगी।

2 अस्थायी चुम्बक - इसे विद्युत चुम्बक भी कहते है। बिजली के चुम्बक उस समय काम करते हैं जब उनमें बिजली का प्रवेश किया जाता है। बिजली के चुम्बक बिना बिजली नहीं चल सकते। चुम्बक का प्रयोग गाड़ियों में चुम्बककीय ब्रेक के अतिरिक्त ऐम्पलीफायर आर्गनेचर, घंटियों, रेडियो, दूरसंचार, ट्रांसफामर में भी होता है।

चुम्बकीय चिकित्सा - चुम्बक चिकित्सा एक चिकित्सा पद्धति है। इसकी दो पंक्तियां प्रचलित है। सर्वदेशिक अर्थात् हथेलियों व तलवों पर लगाने से तथा स्थायिनक अर्थात रोग गृस्थ भाग पर लगाने से।

1 सवैदैदिक प्रयोग - इसके अनुसार उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव वाले चुम्बकों का एक जोड़ा लेकर शरीर के विद्युतीय सहसम्बन्ध के आधार पर सामान्यतया उत्तरी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग शरीर के दाए भागों पर आग की और और उत्तरी भागों पर किया जाता है जबकि दक्षिण ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग शरीर के बाये भागों पर पीठ पर तथा निचले भागों पर किया जाता है। यह अटल नियम चुम्बकों के सर्वदैहिक प्रयोग पर लागू होता है। जब कि स्थानिक प्रयोग की अवयवथा में रोग संक्रमण, दर्द सूजन आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है। उत्तम परिणाम हांशिल करने के लिए जब रोग अथवा उसका प्रसार शरीर के ऊपरी भाग अर्थात् नाभी के ऊपर हो तो चुम्बकों को हथेलियों पर लगाया जाता है।

जबकि शरीर के निचले भागों अर्थात् नाभी से नीचे विद्यमान रोगों में चुम्बकों को तलवा में लगाया जाता है।

2 स्थानिक प्रयोग - इस में चुम्बकों को उन स्थानों पर लगाया जाता है जो रोगग्रस्त होते हैं जैसे छुटना,पैर दर्द, केशेरूका, आंख, नाक आदि। इनमें रोग की तीव्रता तथा रूप के अनुसार एक, दो ओर यहां तक तीन चुम्बकों का प्रयोग भी किया जाता है।

जैसे घुटनों तथा गर्दन के तेज दर्द में दो चुम्बकों को अलग - अलग घुटनों पर तथा तीसरे चुम्बक को गर्द का दर्दनाक कशेरूका पर लगाया जा सकता है। इस प्रयोग विधि की उपयोगिता स्थानिक रोग संक्रमण की अवस्थ में भी होती है। अंगूठे में तेज दर्द हो ने जैसी कुछ अवस्थाओं में कभी कभी दोनों चुम्बकों के ध्रुवों के नीचे अंगूठा रखने से तुरन्त आराम मिलता है।

इस प्रयोग विधि के अनुसार उत्तरीध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव से सम्पन्न चुम्बकों का एक जोड़ा लिया जाता है। शरीर के विद्युतीय सहसंबंध के आधार पर समान्यता उत्तरी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग शरीर के दाये भागों पर आगे की ओर उत्तरी भागों पर पीठ पर तथा निचले भागों पर किया जाता है। यह अटल नियम चुम्बकों के सार्वदैहिक प्रयोग पर भी लागू होता हैं। जबकि स्थानिक प्रयोग की व्यवस्था में रोग संक्रमण दर्द सूजन आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है। उत्तम परिणाम हांशिल करने के लिए जब रोग अथवा उसका प्रसार शरीर के ऊपरी भाग अर्थात् नाभी से नीचे विद्यमान रोगों में चुम्बकों को तलवे में लगाया जाता है और पैर दर्दनाक कशेरूका, आंख, कान आदि। इनमें रोग की तीव्रता तथा रूप के अनुसार एक दो और यहां तक की तीन चुम्बकों का प्रयोग भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ - घुटने तथा गर्दन के तेज दर्द में दो चुम्बकों को अलग अलग घुटनों पर तथा तीसरे चुम्बक को गर्दन का दर्दनाक कशेरूका पर लगाया जा सकता है। इस प्रयोग विधि की उपयोगिता स्थानिक रोग संक्रमण की अवस्था में भी होती

है। अंगूठे में तेज दर्द होने जैसी कुछ अवस्थाओं में कभी कभी दोनों चुम्बकों के ध्रुवों के नीचे अंगूठा रखने से तुरन्त आराम मिलता है।

चुम्बक के भौतिक गुण -

भौतिक शास्त्र के वैज्ञानिकों ने चुम्बक में निम्न लिखित भौतिक गुणों की खोज की है -

1 चुम्बक एक विशेष पर की खनिज धातु होता है।

2 चुम्बक लौहे के टुकड़ों को सदा अपनी और खींचने की शक्ति रखता है। यदि चुम्बक कम शक्ति का हो और लोहे का टुकड़ा अधिक भारी हो तो चुम्बक को उससे स्पर्श करा देने से वह उससे चिपक जाता है। इसके विपरीत यदि लोहा हल्का और चुम्बक शक्तिशाली है तो वह लोहे को खींच लेता है।

3 चुम्बक को यदि धागे की सहायता से स्वतंत्र रूप से लटका दिया जाए तो उसका एक सिरा उत्तर की ओर रहेगा। तो दूसरा दक्षिण की तरफ रहेगा। लाख प्रयत्न करने पर भी जो सिरा उत्तर की ओर है वह बार बार हटाने पर उत्तर की ओर ही रहेगा। इसी कारण चुम्बक चिकित्सा के वैज्ञानिकों ने उत्तर की ओर रहने वाले सिरे को उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिण की ओर रहने वाले सिरे को दक्षिण ध्रुव नाम रख दिया।

4 चुम्बक के दो टुकड़े यदि एक दूसरे के सामने लाए जाए तो कभी के एक दूसरे से चिपक जाते हैं। और कभी एक दूसरे से दूर भागते हैं। जब दोनों चुम्बक के ध्रुव एक दूसरे के विपरीत होते हैं तो आपस में आकर्शित होते हैं। जैसे एक चुम्बक का उत्तरी ध्रुव दूसरे चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव हो तो आमने सामने आने पर आपस में चिपक जाते हैं। और जब दोनों चुम्बक के ध्रुव समान होते हैं। जैसे उत्तरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव तो विकसित होते है। या यों कहे कि एक दूसरे से दूर भागते हैं।

5चुम्बक के कि तने भी सूक्ष्मतर - सूक्ष्म टुकड़े कर दिये जाये किन्तु उनके उत्तर और दक्षिण ध्रुव नश्ट नहीं किए जा सकते अर्थात् उसका एक सिरा उत्तरी तो दूसरा सिरा दक्षिणी ध्रुव स्वयं तुरन्त बन जाते हैं।

6चुम्बक में यदि किसी लोहे के टुकड़े को लगा दें, तो उसमें भी चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् वह भी चुम्बक हो जाता है। क्रियात्मक रूप से आप किसी चुम्बक में लोहे की पिने कुछ देर चिपका कर देखें तो चुम्बक के हटाने के बाद वे पिन अन्य सामान्य पिनों को अपनी ओर खीचने लगती है अर्थात् चुम्बक के सम्पर्क मं आने से वे चुम्बकीय गुणों से मुक्त हो जाती है।

7 चुम्बक से निकलने वाली उत्तरी ध्रुव की तरंगे चन्द्रमा के समान शीत गुण वाली होती है और दक्षिणी ध्रुव की तरंगे सूर्य के समान उश्ण गुणवाती होती हैं। यही कारण है कि उत्तरी ध्रुव प्रतिक्रियात्मक परिणाम बतलाता है और दक्षिण ध्रुव जीवन शक्ति वर्धक होकर उसके क्रियात्मक परिणाम को प्रकट करता है अर्थात् उत्तरी ध्रुव के प्रयोग से सूजन एवं

दर्द नश्ट हो जाते हैं। और अधिक स्पश्ट रूप से समझने के लिए यह कह सकते हैं कि उत्तरी ध्रुव कीटाणुओं तथा जीवाणुओं के विकास को रोकते हैं। फलस्वरूप फोड़े फुन्सियों में पायी जाने वाली पीप आदिको नश्ट करके घावों को भरने में सहायता करता है और दक्षिण ध्रुव रक्त संचार को तेज करके निर्जीव कोशिकाओं को पुनजीवित करता है साथ ही उश्णता के कारण दर्द एवं सूजन को भी समाप्त करता है।

8 चुम्बकीय तरें लौहे को छोड़कर कपड़ा, शीशा, लकड़ी, प्लास्टिक, रबड़ सभी पदार्थ एल्मीनियम, पीतल, ताम्बा, स्टेनलेस, सोना-चांदी आदि सभी धातुओं में से पार हो जाती है। यही कारण है कि यदि हथेली के ऊपर चुम्बक रख ले और हथेली से नीचे लोहे की पिन रख लें तो हथेली को ऊपर उठाने पर वह लोहे की पिनें हथेली के नीचे चिपक जायेगी। इससे सिद्ध होता है कि चुम्बक की तरंग शरीर को भी भेद जाती है।

9 वैज्ञानिक के अनुसार चुम्बक के उत्तरी ध्रुव में प्रोटीन अणु शक्ति एवं दक्षिण ध्रुव में इलेक्ट्रान अणु शक्ति होती है। इसी कारण से उनकी प्रेरणा दिशाएं विरूद्ध होती है।

1 0 सामान्यतः चुम्बक का अर्थ है जो किसी को अपनी ओर आकर्शित कर ले या खींच ले। इसलिए तो हम लोग कहते भी हैं कि अमुक व्यक्ति के अन्दर अदुभुत चुम्बक शक्ति है जो एक बार में सम्पर्क में आ जाता है उसका हो जाता है किन्तु यहां पर चुम्बक का अर्थ लोह चुम्बक से है अर्थात् खनिज की वह धातु जो लोहे को अपनी ओर खींचे।

चुम्बकों के आकार एवं प्रकार - स्थाई चुम्बक अनेक धातुओं से बनते हैं। किन्तु सबसे अधिक जिस मिश्रित धातु का प्रयोग होता है उसे एक नीको कहा जाता है। इस मिश्रित धातु में एल्युमीनियम निकिल लोहा और कोबाल्ट मिले होते हैं।

इसके अतिरिक्त फैरिक एवं बेरियम को ऑक्साइडरो तैयार की गई कृत्रिम सामग्री से भी चुम्बक बनाये जाते हैं जिन्हें सिरोमिक, कैराइट या ग्रेफाइट चुम्बक कहते हैं प्रायः हम लोग इन तीनों चुम्बकों को सिरेमिक चुम्बक की कह देते हैं।

चुम्बक को प्रयोग करने हेतु विभिन्न आकारों में ढाला जाता है जैसे छड़ के आकार में चुम्बक, बेलन आकार के ठोस चुम्बक बेलन आकार के छेद युक्त चुम्बक अंगूठी के आकार के चुम्बक, छेद वले चौकोर चुम्बक ठोस वाले चौकोर चुम्बक दूज के चांद जैसी शक्ल वाले चुम्बक अंग्रेजी के यू आकार के अक्षर की शक्ल वाले चुम्बक, अर्द्धचन्द्राकार चुम्बक वर्गाकार चुम्बक आदि।

चुम्बक चिकित्सा में प्रयोग होने वाले चुम्बक विशेष प्रकार के होते हैं वे एलनी को धातु के बेलन के आकार तथा अर्द्धचन्द्र के आकार वाले होते हैं। इन्हें सिरेमिक चुम्बक कहते हैं इन चुम्बकों के आकार एवं शक्ति की चिकित्सा में प्रयोग करने के लिए निश्चित करके उनको एसंम्बिल किया जाता है। इन्हें निम्नलिखित मुख्यतः पांच भागों में बांटा जाता है -

1 विशेष उच्च शक्ति के चुम्बक (प्रेसीडेण्ट मेग्नेट)

2 उच्च शक्ति के चुम्बक (हाई मेग्नेट)

3 मध्य शक्ति के चुम्बक (मीडियम मेग्नेट)

4 निम्न शक्ति के चुम्बक (लो मेग्नेट)

5दर्द निवारक चुम्बक (एन्टी पेन मेग्नेट)

इन उपरोक्त चुम्बकों की सहायता से सभी रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। इन्हीं चुम्बकों का प्रयोग करके विभिन्न रोगों के निदान के लिए निम्नलिखित चुम्बक पट्टियां भी बनायी गई है –

1 मेग्नेटिक हेडबेल्ट

2 मेग्नेटिक थ्रीट बेल्ट

3 मेग्नेटिक वली बेल्ट

4 मेग्नेटिक बी.पी. बेल्ट

5मेग्नेटिक नी. बेल्ट

6मेग्नेटिक नी कैप

7 मेग्नेटिक स्पाडलायसिस बेल्ट

8 मेग्नेटिक लम्बर बेल्ट

9 मेग्नेटिक इयर बेल्ट

1 0 बार मेग्नेट

1 1 मेग्नेटिक नेकलेस

1 2 मेग्नेटिक एस. बेल्ट

1 3 मेग्नेटिक गिनास

1 4 इलेक्ट्रो मैग्नेट वायब्रेटट

1 5हेल्थ बैड

1 6मेग्नेटिक डाइट इन्फ्री

1 7 मेग्नेटिक स्पाइन बेल्ट

1 8 एन्टी पेन मैग्नेट

1 9 मेग्नेटिक आई बेल्ट

2 0 मेग्नेटिक टांसिल बेल्ट

2 1 मेग्नेटिक डेड बेल्ट

2 2 स्टार मेग्नेटिक

2 3 विशाल मैग्नेट

1 1 .7 चिकित्सा के लिए चुम्बकों का चयन

चुम्बक का आकार और डिजाइन इस बात पर निर्भर करेगा कि उसे शरीर के किस भाग पर लगाना है। शरीर के कुछ अंग ऐसे हैं जहां पर बड़े आकार के चुम्बक नहीं लग सकते। कुछ अंगों पर छोटे चुम्बक ठीक से काम नहीं करेंगे। उदाहरण के लिए यदि आंख पर चुम्बक लगाना है तो छोटे आकार का गोल चुम्बक होना चाहिए जो आंख के असर सुविधा पूर्वक आ जाये। दूसरी ओर अगर शरीर के अधिकतर भागों में पीड़ा या सूजन है तो बड़े आकार का चुम्बक लगेगा। इसलिए एक ही आकार प्रकार के चुम्बक का प्रयोग शरीर के विभिन्न भागों पर नहीं हो सकता। चुम्बकों की शक्ति पर भी यही बात लागू होती है। शरीर के कुछ कोमल अंग जैसे मस्तिश्क, आंख और हृदय जहां अधिक शक्ति वाले चुम्बक नहीं लगने चाहिए और न मध्यम शक्ति के चुम्बक अधक देर तक लगाने चाहिए। इसके विपरीत कम शक्ति वाले चुम्बक कडी व बड़े आकार की मांसपेशियों या हड्डियों के रोगों के लिए काफी नहीं होगे जैसे कि कुल्हों जंघाओं, घुटनों या एडियों की होती है। न केवल स्थानीय रागों बल्कि सारे शरीर के लिए चुम्बकों को चुनाव में इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

रोगी के बैठने की स्थिति - उपचार लेते समय जमीन अथवा किसी लोहे की वस्तु से रोगी का सम्पर्क न हो। यह आवश्यक है। अतः लोहे की कुर्सी या पलंग वर्जित है। जबकि लकड़ी की कुर्सी या पलंग आदर्श है। चुम्बक कि स्थिति इस प्रकार रहनी चाहिए कि उत्तरी ध्रुव उत्तर दिशा की ओर तथा दक्षिणी ध्रुव दक्षिण दिशा की ओर रहे। इससे चुम्बक का क्षेत्र पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के समानान्तर रहेगा और चुम्बक अधिक प्रभावशाली बनेगे। यदि दो चुम्बकों के दो अलग-अलग ध्रुवों का प्रयोग एक ही समय किया जाता रहा हो तो रोगी का मुंह

पश्चिम की ओर होना चाहिए जिससे कि उसके शरीर का दाहिना भाग उत्तर की ओर तथा बांया भाग दक्षिण की ओर रहे।

चुम्बक प्रयोग की अवधि - ऐसा उपयुक्त माना गया है कि चुम्बकों का स्थानीय अथवा सर्ववैद्धिक 1 0 मिनट से 3 0 मिनट तक ही सीमित रहता है। वयस्कों के जीर्ण आमवाली सन्धि शोध में पहले एक सप्ताह तक चुम्बक का प्रयोग केवल 1 0 मिनट तक करना चाहिए। और इस अवधि को धीरे धीरे 3 0 मिनट तक बढ़ा देना चाहिए। अन्य कई रोगावस्थाओं में भी तदनुसार समय बढ़ाया जाना चाहिए अधिक शक्तिशाली चुम्बकों पर तदनुसार घटा देनी चाहिए। जब मस्तिश्क जैसे कोमलांगो पर चुम्बक का प्रयोग करना हो तो यह अच्छी तरह समझ लें कि इसमें शक्तिशाली चुम्बक नहीं लगाये जाते चुम्बक का प्रयोग 1 0 मिनट से अधिक कभी नहीं किया जाय। वैसे अवधि के संबंध में अपना विवेक ही उत्तम माना जाता है। चुम्बक चिकित्सा का कोई प्रतिप्रभाव नहीं होता। फिर भी सिर का भारीपन चक्कर उन्हें लार टपकना आदि लक्षण मालूम हो तो चिन्ता न करें। ऐसे किसी लक्षण को त्वरित दूर करना जरूरी हो तो जस्ते या तांबे की एक पट्टी पर दोनों हाथ 2 0 -2 5 मिनट तक रखें। घुटनों के तथा गर्दन की केरूरूका का सन्धि के प्रवाह की अवस्था में सुबह के समय 1 0 मिनट तक चुम्बकों का प्रयोग घुटनों पर तथा शाम को 1 0 मिनट तक गर्दन तथा दर्द के अंतिम भागों पर करना चाहिए लेकिन इन अवस्थाओं में चुम्बकों की प्रयोग अवधि 1 0 मिनट से अधिक नहीं होनी चाहिए।

1 1 .8 चुम्बक चिकित्सा की वैज्ञानिकता

प्रत्येक मानव शरीर लाखों कोशिकाओं से रचित है वे कोशिकाए नियमित रूप से कम्पित होती रहती है। जिससे एक 'गतिज, जीवनी शक्ति उत्पन्न होती है। यह जीवनी शक्ति रोग निवारक एवं शक्ति प्रदायक के रूप में जानी जाती है। इन कोशिकाओं के एकरूपता कंपत्र से एकरूप (यूनीफार्म) चुम्बकीय क्षेत्र से उत्पन्न होता है। और प्राणी अपने को पूर्ण स्वस्थ एवं ताजगी से भरा हुआ अनुभव करता है। किन्तु जब इन कोशिकाओं की तरंगों में किसी प्रकार की बाधा होती है तो जो चुम्बकीय क्षेत्र होता है वह भी बाधित हो जाता है और जिसका प्रभाव यह होत है कि उससे संबंधित विभिन्न अंगों में दर्द, सूजन, कड़ापन, थक्का एवं रूकावट जैसे विकार से भर जाता है आदि यह सभी चिन्ह् विभिन्न प्रकार के रोगों के नाम से विभिन्न चिकित्सा पद्धति में जाने जाते है। किन्तु दैवीय प्रकृति प्रत्येक मनुश्य को सुन्दर स्वास्थ्य देने की भावना रखती है इस प्रकार किसी भी बीमारी अथवा चिन्ह् के लिए वह दैवीय शक्ति उस अस्वस्थ्य अंग में समस्त जीवनी शक्ति रोग निवारण में लग जाती है। वास्तव में प्रत्येकबीमारी एक प्रकार से शरीर से विकार और सडान यानि टाक्सिन मैटर को बाहर निकालने का एक प्रयास हे इस प्रकार की बीमारी के लक्षणों को प्रकृति द्वारा सावधान करने की प्रेरणा समझना चाएिह न कि उन्हें दमनात्मक औशधियों दवाव यह तो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में शीघ्र स्वस्थ करने की प्रक्रिया चली है। हमें कुछ समय के लिए राहत दे सकती है। किन्तु साथ ही शरीर रचना को दुर्घटना ग्रस्त कर देती है। रोगों से लड़ने की अपेक्षा हमें उनके मूल कारणों को निर्धारित करके उसकी जड़ में जा कर ही उसके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। जहां अनुकूल भोजन सुधार विश्राम युक्ति युक्त उपवास आदि क्रियायें शीघ्र स्वस्थ होने से सहायक होगी। वहां चुम्बक का प्रयोग शरीर के जैविक विद्युत शक्ति को संतुलित करने में

बड़ी मदद करता है और यह चुम्बक चिकित्सा नाना प्रकार के विकार दूर करने में सहयोगी होता है।

चुम्बक चिकित्सा मनुश्य के लिए क्रांतिकारी उपहार है। संसार में अनेक समर्पित व्यक्ति असाध्य एवं जीर्ण रोगों की चुम्बक द्वारा चिकित्सा निदान में लगे हुए है। इसका आधार यह है कि शरीर की प्रत्येक कोशिका चुम्बकीय विद्युत से रचित एक इकाई है। उसका अपना व्यक्तिगत चुम्बकीय क्षेत्र है। रीढ की हड्डी एक सुशुम्ना नाड़ी है। जो इलेक्ट्रिक जनरेटर है। इससे उत्पन्न विद्युत स्पन्दन शरीर में नाडियों के द्वारा ले जाया जाता है। हमारा सामान्य स्वास्थ्य इसी नाडी संस्थान पर आधारित है। चुम्बक चिकित्सा केन्द्रीय नाड़ी संस्थान को संतुलित करने में बहुत उपयोगी है। जिसके माध्यम से शरीर के विभिन्न भागों को ऊर्जा प्राप्त होती है। प्राकृतिक चिकित्सा की तरह चुम्बकीय चिकित्सा भी बीमारी की जड़ पर कार्य करती है। वास्तव में यह एक औषधि विहीन चिकित्सा है जिसे प्रकृति ने हमे उपहार के रूप में दी है इसके किसी प्रकार के बुरे प्रभाव नहीं देखे गये है। जबकि इसके परिणाम शरीर के रक्त संवहन में विभिन्न प्रकार से सहयोगी है।

1 1 .9 चुम्बक चिकित्सा से लाभ -

यह हर आयु में नर-नारियों के लिए गुणकारी है। चुम्बकों के माध्यम से इलाज इतना सीधा सादा है कि यह किसी भी समय किसी भी स्थान पर और शरीर के किसी भी अंग पर ...

पुरूष हो या स्त्री जवान हो या बूढ़ा, सभी इससे लाभान्वित हो सकते है। चुम्बक चिकित्सा का रोगी के शरीर पर निम्नलिखित प्रभाव देखा जा सकता है।

1 शरीर के जिस हिस्से पर चुम्बक रखते है वहां पर रक्त संचार की वृद्धि हो जाती है फलस्वरूप वहां का विजातीय द्रव्य घुलकर पसीना या पेशाब अथवा मल द्वारा निकल जाता है।

2 शरीर के जिस हिस्से पर चुम्बक रखते है वहां वहां की नाड़ियों में प्राण का प्रवाह तेज हो जाता है। फलस्वरूप उस हिस्से की नाड़ियों का कडकपन या सकुचन अथवा सुखापन नश्ट हो जाती है।

3 अनुभव के अनुसार चिकित्सा में प्रयोग होने वाले चुम्बक का उत्तरी ध्रुव ठंडा होता है। और दक्षिण ध्रुव गरम होता है। फलस्वरूप चोट, सूजन या जहां पर गर्मी की आवश्यकता होती है। वहां पर चुम्बक का दक्षिणीय ध्रुव लगाने पर दर्द एवं सुजन में तुरन्त आराम मिलता है। किन्तु जहां पर घाव हो या बैक्ट्रीरिया हो अथवा ठंडक की आवश्यकता हो वहां पर उत्तरी ध्रुव लगाने पर घाव भरेगा, बैक्ट्रीरिया नश्ट होगे एवं ठंडक मिलेगी।

4 किसी कश्ट स्थान के क्षेत्र में उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव की परिचय बनाकर रखते है तो उस क्षेत्र के सभी रोग एवं कश्ट अतिशीघ्र नश्ट हो जाते हैं।

5शरीर के किसी हिस्से पर जब रक्त नालिकाओं में रक्त संचार की वृद्धि होती है तो सूक्ष्म नालिकाओं में भी खून की वृद्धि होती है तो सूक्ष्म नलिकाओं में भी खून की वृद्धि होना स्वभाविक है जो बीमारी में या बढ़ती उम्र में घटती है और जब नाड़ियों में प्राण ऊर्जा की वृद्धि होती है। तो न्यूरान (स्नायु) में प्राण ऊर्जा की वृद्धि स्वाभाविक है जो बीमारी में या बढती उम्र में घटती है फलस्वरूप निश्क्रिय कोशिकाएं सक्रिय हो जाती है। मृदा कोशिकाएं घुलकर निष्कासन मार्ग से निकल जाती है। मृदा कोशिकाएं घुलकर निश्कासन मार्ग से निकल जाती है। एवं नयी कोशिकाओं का निर्माण होने लगता है। और रोगी स्वस्थ होने लगता है।

चुम्बक प्रयोग में सावधानियां -

चुम्बक प्रयोग का समय - चुम्बकों का प्रयोग करने के लिए किसी समय विशेष नियम का पालन करना जरूरी नही होता लेकिन उचितरहता है। यदि इनका प्रयोग प्रातः कालीन शौच एवं स्नान आदि से निवृत्त होकर अथवा शाम को रोगी की सुविधानुसार किया जाए, चुम्बकों का प्रयोग करने मं पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

चिकित्सकों के अनुभव के अनुसार कशेरूका सन्धि शोध, जानु सन्धि शोध तथा कमर दर्द जैसी कुछ रोगावस्थाएं शारीरिक श्रम एवं दिन का काम खत्म करने पर शाम को बढ़ते है अतः ऐसे रोगों में जब शाम को चुम्बकों का प्रयोग किया जाता है तो बहुत आराम मिलता है इसके विपरीत दस्त कब्जियत तथा बड़ी आंतों के प्रदह में चुम्बकों का प्रयोग सुबह के समय करना चाहिए।

आयुर्वेद के अनुसार खांसी, सर्दी, जुका, श्वास नलियों के प्रदाह पायरिया जैसे रोगों का प्रमुख कारण कफबताया जाता है। तथा ये सुबह के समय बढ़ते है पिप्त, अम्लता एवं रूदवात जैसे वात सम्बन्धी राग शाम को बढ़ते है। यदि हम इसी सिद्धान्त का अनुसरण करे तो छाती की बीमारियों और कफ की अवस्था में चुम्बकों का प्रयोग सुबह के समय किया जाना चाहिए।

यदि जिगर विकार जैसे पित्तजनक रोग हो तो चुम्बकों का प्रयोग दोपहर बाद किया जाना चाहिए तथा जब पेट या आंतों के अन्दर हवा बनती है तो चुम्बकों का प्रयोग शाम को किया जाना चाहिए प्रत्येक विवेकशील चुम्बक चिकित्सक को चाहिए कि वह अपने रोगी को चुम्बकों के प्रयोग का समय निर्धारित करते समय इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखें।

अन्य सावधानियां -

1 चुम्बकों का प्रयोग करते समय अथवा उसके तुरन्त बाद आइसक्रीम जैसी ठण्डी खाने - पीने की चीज का सेवन नहीं किया जाना चाहिए अन्यथा व ऊतकों पर चुम्बकों के प्रभाव को अनावश्यक रूप से कम कर देगी।

2 भोजन करने के बाद दो घण्टे तक चुम्बकीय उपचार न ले, भोजन करने के बाद तुरन्त यह उपचार लेने से उल्टी-उबकाई की तकलीफ होने की सम्भावना रहती है। भोजन के बाद रक्त परिभ्रमण पेट के अवयवों की ओर विशेष होता है उसमें व्यवधान डालना उचित नहीं है।

3 गर्भिणी स्त्रियों पर शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे कभी कभी गर्भपता हो जाता है, आवश्यकता हो तो मध्यम शक्ति तथा अल्पशक्ति चुम्बकों का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन उन्हें गर्भाशय से दूर रखना चाहिए।

4 चुम्बकीय जल की मात्रा का अत्यधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा इससे कभी - कभी शरीर की क्रिया अत्यधिक बढ़ जाती है तथा एक असुविधा जनक स्थिति पैदा हो जाती है बच्चों को चुम्बकीय जल देने पर इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

5शक्तिशाली चुम्बकों के विरोधी ध्रुवों को अलग - अलग रखना चाहिए क्योंकि चिकित्सा के समय कोई दुर्घटना होने की सम्भावना बनी रहती है। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली चुम्बकों को अलग अलग करना भी मुश्किल हो जाता है।

6उपचार करते समय रोगी के शरीर से सभी धातुओं द्वारा निर्मित वस्तुओं को अलग कर देना चाहिए कुछ बिजली के उपकरण और घड़ियां भी चुम्बक के प्रभाव से नश्ट हो सकती है।

7 चुम्बकों के प्रयोग के पश्चात उसे सही ढंग से रखना चाहिए उनके ऊपर धारक रखकर अच्छी प्रकार से संभालना चाहिए। उन्हें जमीन पर गिरने से बचाना चाहिए क्योंकि इससे चुम्बकों की शक्ति क्षीण होने लगती है चुम्बकों को लकड़ी की पेटी में रखनी चाहिए।

8 चुम्बक चिकित्सा के दो घण्टे तक स्नान नहीं करना चाहिए।

9 चुम्बकों को पानी से बचाकर रखना चाहिए अन्यथा जंग लगने की संभावना बनी रहती है।

1 0 उपचार देते समय चिकित्सक चुम्बक को रोगी के शरीर से सीधा स्पर्श न करें बल्कि बीच में पतला कपड़ा

1 1 उपचार के समय शरीर पर चुम्बकों का दबाव पडना आवश्यक नहीं है, किन्तु वे स्थिर रहे यही देचाना है।

1 2 बड़े बड़े चुम्बकों को दिन में दो बार उपचार के लिए प्रयोग किया जा सकता है। जबकि छोटे अल्पशक्ति चुम्बकों को शरीर पर पूरे दिन वेल्ट से बांधकर या टेप से चिपकाकर भी रखा जा सकता है।

चुम्बक द्वारा तैयार जल एवं तेल – जल व इसी तरह के तरल पदार्थ चुम्बकीय प्रभाव से विभिन्न रोगों के इलाज में प्रयोग किएजाते है। क्योंकि एक जीवित शरीर में 7 0 से 8 0 प्रतिशत पानी होता है। चुम्बकीय जल में उपचारक शक्तियां आ जाती है। जिसके कारण यह अपने रोग उपचारक गुणों के कारण नलियों के माध्यम से जीवित कोशिकाओं में जाकर रक्त शुद्ध करने तथा अनावश्यक पदार्थ विजातीय द्रव्य को पेशाब के साथ बाहर कर देता है।

फ्राँस जैसे कई देशों में ऐसी प्राकृतिक झरने पाए गए है। जिनका पानी बोतलों में भरकर रोग उपचार के लिए बाजार में बेचा जाता है। यह विभिन्न रोगों जैसे गठिया, मोटापा, रक्त चाप संबंधित रोगों में प्रयोग होता है।

ऐसा माना गया है कि इन झरनों में ऐसे चुम्बकीय पत्थरों के माध्यमसे जल बहता हुआ स्वयं चुम्बकित हो जाता है।

भारत वर्श में भी ऐसा विभिन्न स्थानों पर देखने को मिलता है कि अमुक झरने अथवा धारा का जल पीने अथवा नहाने से चर्म रोग एवं अन्य बीमारियां ठीक होने लगती है।

जल तैयार करने की विधि – चुम्बकीय जल तैयार करने में बहुत ही सरल विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए चुम्बक की शक्ति 2 0 0 0 गास आवश्यक है। साथ ही दो बोतलों (कांच) अथवा दो कांच के गिलास प्रयोग कर सकते है। दोनों बोतलों को चुम्बक के अलग अलग उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों पर पानी भरकर रखना चाहिए। बोतल का पानी लगभग 1 2 घण्टे में चुम्बकीय किरणों को शोशित कर लेता है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि चुम्बक को साफ करके जल में डालकर भी पानी तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार से कुछ चिकित्सकों का मानना है कि जो चुम्बक 2 50 ग्राम लोहे को अपनी ओर आकर्शित कर लेती है। उससे पानी चार्ज करना चाहिए कुछ चिकित्सकों का मानना है कि जो चुम्बक 1 से 2 किलो वजन के लोहे को आकर्शित कर लेती है अथवा अपनी शक्ति से उठा सकती है उसका ही प्रयोग करना चाहिए।

चुम्बकीय जल तैयार करने के पश्चात् उसे न तो गर्म करना चाहिए और न ही उसे फ्रिजर में रखकर ठण्डा करना चाहिए।

किसी भी रोग में एक वयस्क व्यक्ति का 50 एम.एल. पानी दिन में तीन से चार बार दिया जा सकता है। तथा बच्चे को 2 5 एम.एल. की मात्रा ही देनी चाहिए चुम्बकीय पानी तैयार करते समय विभिन्न रोगों की बोतल का भी प्रयोग किया जा सकता है।

यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि संक्रामक अथवा शरीर के ऊपरी भागों में छाती से ऊपर के भाग उत्तरी ध्रुव द्वारा तैयार जल का प्रयोग करना चाहिए।

यह तैयार जल 5 से 6 दिनों तक प्रयोग किया जा सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उत्तरी ध्रुव उत्तर दिशा की और दक्षिणी ध्रुव दक्षिण दिशा की ओर ही रखना चाहिए दक्षिणी ध्रुव द्वारा तैयार जल जोड़ों के दर्द इत्यादि में दिया जाता है।

तेल तैयार करने की विधि - पानी तैयार करने में 1 2 से 2 0 घण्टे का समय देना होता है। लेकिन तेल तैयार करने में कम से कम समय 2 से 3 सप्ताह का है। इसमे ंघी से लेकर दर्दों के लिए सरसों, तिल, नारियल, इत्यादि अनेकों प्रकार के तेल तैयार किए जा सकते है। साथ ही सूर्य किरण चिकित्सा द्वारा तेल चार्ज किए जाने के लिए साथ साथ चुम्बक का प्रयोग भी किया जाता है। इस प्रकार तेलों में विशेषकर नीला, हरा, लाल रंग की बोतल को सूर्य के प्रकाश में उत्तरी ध्रुव के चुम्बक अथवा दक्षिणी ध्रुव के चुम्बक पर रखकर 1 5 से 2 0 दिन तक इसको बीच बीच में हिला हिला कर तैयार किया जाता है। साथ में उत्तरी या दक्षिणी चुम्बक को अलग अलग रखने हेतु लिखकर रखते है। इस प्रकार तैयार किये गये तेल से कमर दर्द, गर्दन दर्द, घुटने का दर्द, संधि शोथ, गठिया जैसी अनेकों बीमारियों में इसकी मालिश करके ऊपर से गर्म कपड़ा बांधना चाहिए।

चुम्बक के जैविक प्रभाव - अनेकों परीक्षणों में जल के प्रयोग से पौधों को दिए जाने से उत्तरी ध्रुव के जल द्वारा पौधों की लम्बाई बढ़ जाने तथा दक्षिणी ध्रुव मे ंपौधों के तने या फैलाव चौड अथवा भारी होने के परिणाम सिद्ध हुए है। साथ ही पौधों में फैलाने वाले जीवाणु अथवा विषाणु को भी नियंत्रित करने में सफलता मिलती है पौधे के बीजों को चुम्बक के समीप अथवा सम्पर्क में रखने से उनका अंकुरण एवं विकास में तेजी पाई गई साथ ही उनकी जड़े भी अधिक गहराई व मोटाई की बनती है। सामान्य जल और चुम्बकीय जल से पौधों को पानी दिए जाने से अनेक स्वाद तथा तैयार होने तक के समय में भी तेजी आ जाती है। क्योंकि फलों व सब्जियों मे ंखमीरण प्रक्रिया पर इसका प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार से पौधों पे चुम्बक के प्रभाव वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुके है साथ ही चूहों व अन्य पक्षी जानवरों पर भी अनेक शारीरिक विकास में सकारात्मक परिणाम देने में सफल रहे है।

सारांश

उपरोक्त अध्ययन से हम इस निश्कर्श पर पहुंचते है कि प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न घटकों में से चुम्बक चिकित्सा हानि रहित, सरल व सस्ती चिकित्सा पद्धति है। जिसका कोई दृश्परिणाम नहीं है। साथ ही यह दूसरी वैकल्पिक चिकित्सा जैसे एक्युप्रेशर एवं सून्जोक तथा सूर्य किरण चिकित्सा ने भी एक सहायक पद्धति के रूप में प्रयोग की जाती है।

उदाहरणार्थ स्टार मैग्नेट जो पीले व लाल रंग के होते है उनको सूजोक बिन्दुओं पर प्रयोग करने से परिणाम दो गुणा हो जाता है यह रोगों के अतिरिक्त विभिन्न शारीरिक एवं जैविक प्रभाव भी सामने लाने में सध्य रहती है।

इसी प्रकार वैकल्पिक पद्धतियों द्वारा गांव के सुदूर क्षेत्रों में चिकित्सा सर्व सुलभ हो पा रही है। इस प्रकार चिकित्सा पद्धति को एक साधारण मनुश्य भी सीख कर अपने व अपने परिवार जनों पर उपचार कर सकता है आज भारत जैसे गरीब देश के लिए यही एक मूलभूत आवश्यकता है। आईए इसे अपने ज्ञान से जोड कर एक स्वस्थ भारत का निर्माण करने हेतु चुम्बक चिकित्सा को अपनाएं।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1 चुम्बक चिकित्सा का सामान्य परिचय एवं उधेश्य लिखो।

2 चुम्बक की परिभाषा एवं प्रकार लिखो। चुम्बक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन करो।

3 चिकित्सा के लिए चुम्बक का चयन किस प्रकार किया जाता है। चुम्बक के भौतिक गुणों के विषय में लिखो।

4 चुम्बक चिकित्सा की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालिए।

5चुम्बक चिकित्सा से क्या क्या लाभ है? उपचार संबंधी जानकारियों पर प्रकाश डालिए।

संदर्भ ग्रंथ

1 चुम्बक चिकित्सा - शाशि भूशण शलभ

2 चुम्बक चिकित्सा का सरल अध्यापक - डॉ. एन.टी. संतवानी

3 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - आरोग्य सेवा प्रकाशन

4 वृहद प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

5चुम्बक चिकित्सा - डॉ. बसंल

इकाई - 1 2 : एक्युप्रेशर चिकित्सा

इकाई की रूपरेखा

1 2 .1 उद्देश्य

1 2 .2 परिचय

1 2 .3 अर्थ

1 2 .4 इतिहास

1 2 .5 एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार रोगी की उत्पत्ति के कारण

1 2 .6 एक्युप्रेशर का वर्गीकरण

1 2 .7 एक्युप्रेशर चिकित्सा की विशेषता

1 2 .8 एक्युप्रेशर चिकित्सा हेतु आवश्यक निर्देश

1 2 .9 सु-जोक एक्यूपंचर

1 2 .1 0 समानता

1 2 .1 1 यिन और यांग का सिद्धान्त

1 2 .1 2 रोग उपचार के लिए सही प्रतिबिम्ब केन्द्र खोजना

1 2 .1 3 अन्य

1 2 .1 4 महत्वपूर्ण प्रश्न

1 2 .1 5 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 2 .1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई से विद्यार्थी एक्यूप्रेशर के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। एक्यूप्रेशर का इतिहास, रोग की उत्पत्ति के कारण, एक्यूप्रेशर का इतिहास, रोग की उत्पत्ति के कारण, एक्यूप्रैशर का वर्गीकरण एवं प्रक्यूप्रैशर के उपचार की विशेषताओं के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें। कुछ सावधानियां प्रक्यूप्रैशर के उपचार से पूर्व पता होनी आवश्यक हैं। सु-जोंक के संबंध में भी मूलभूत जानकारियां भी प्राकृतिक चिकित्सा विद्यार्थी को होनी चाहिए। मेरिडियनोलोजी चायनीज पद्धति की विशेष विज है इसकी जानकारी उपलब्ध कराना भी इस इकाई का उधेश्य है।

परिचय-

प्रकृति प्रदत्त विज्ञान का ही एक हिस्सा है एक्यूप्रेशर। आधुनिक चिकित्सा की अंधी दौड़ में यह लुप्त हो रही थी परन्तु भारत की गरीब जनता स्वस्थहोने के लिए समय- समय पर इनका प्रयोग सुश्रुत के लेखन काल से ही करती आ रही है। यह पद्धति भी प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंग है। क्योंकि हमारा शरीर ही पंच तत्वों से निर्म्रित है। इन्हीं पंच तत्वों के सन्तुलन को बनाए रखने हेतु हाथ में कडा, गले में हार, कान में यज्ञोपवीत (जनेऊ) लपेटना, हाथ में कलेवा बांधना (मोती), पैर में झाँजर पहनना आदि नित्य प्रति के क्रिया कलापों द्वारा हम शरीर के विभिन्न दाब बिन्दुओं को दबाव देते रहते है।

आइये, अब हम एक्यूप्रेशर का अर्थ, परिभाषा इतिहास व सिद्धान्तों का अध्ययन प्रारम्भ करते है।

एक्यूप्रेशर का शब्दिक अर्थ है शंकुनुमा नुकीली वस्तु से शरीर पर दबाव डालने की क्रिया व्यवहारिक तौर पर इस पद्धति के सिद्धान्त से हमारा शरीर इलैक्ट्रोनिक क्रियात्मकताओं का एक बहुआगामी स्वरूप है जिसके अंतरंग में सर्बदा विद्युत ऊर्जा का प्रवाह बना रहता है इस प्रवाह या सक्रियता के संचार का नियंत्रण भिन्न - भिन्न चैनलों अर्थात् भिन्न भिन्न भागों के कुछ खास बिन्दुओं में किसी कारणवश स्थिलता या कमजोरी आ जाने के कारण इन बिन्दुओं के प्रतिनिधित्व विशेष के अन्तर्गत वाले भागों में धीरे-धीरे निश्क्रयता आने लगती है जिससे शरीर का प्राकृतिक स्वरूप बिगड़ने लगता है तथा रोग उत्पन्न होने लगते है।

1 2 .3 अर्थ -

एक्यूप्रेशर दो शब्दों से मिलकर बना एक्यू + प्रेशर लैटिन भाशा मे ंएक्यु का अर्थ होता है तीखी वस्तु तथा प्रेशर का अर्थ होता है दबाव अर्थात् किसी तीखी वस्तु द्वारा दबाव देने की क्रिया को एक्यूप्रेशर कहते है।

मानव शरीर में स्थिर विशेष बिन्दुओं पर विधिपूर्वक दबाव डालकर रोग निवारण करने की पद्धति का नाम एक्यूप्रेशर है इस चिकित्सा पद्धति के कई चमत्कारिक परिणाम सामने आये है रोगों के निदान हेतु एक्यूप्रेशर चिकित्सक शरीर के कुछ विशिश्ट बिन्दुओं पर मध्यम बल का प्रयोग करते हुए दबाव डालता है ऐसा करते समय यदि किसी बिन्दु पर असहनीय दर्द हो तो इस तथ्य का निदान होजाता है कि रोगी के शरीर में उस बिन्दु से संबंधित अंग से कोई विकार या रोग है।

सामान्यतः एक्यूप्रेशर शरीर के विभिन्न हिस्सों के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर दबाव डालकर रोगों के निदान करन की विद्या है।

चिकित्साशास्त्र की इस शाखा का मानना है कि मानव शरीर पैर से लेकर सिर तक आपस में जुड़ा है। हजारों नशें रक्त धमनियां, मांसपेशिया, स्नायु और हड्डियो ंके साथ

अन्य कई चीजें आपस में मिलकर इस मशीन को बखूबी चलाते है अतः किसी अंग विशेष से संबंधित बिन्दु पर दबाव डालने से उसे जुड़ा पूरा भाग भी प्रभावित होता है।

एक्यूप्रेशर के अन्तर्गत पैरों, हाथों, तलवों, पूंजों चहरे व अन्य अंगों पर खास तरीके से विशेष दबाव डालना है इन अंगों का अथवा केन्द्रो को रिस्पांस सेन्टर अथवा रिफ्लैक्स सेन्टर भी कहते है इन्हें भारत में प्रतिबिम्ब केन्द्र के रूप में जाना जाता है।

1 2 .4 इतिहास

एक्यूप्रेशर और एक्युपंचर जन्म लगभग एक साथ ही हुआ था कुछ विशेषज्ञों का मानना हे कि इसका जन्म भारत में लगभग 60 0 0 वर्श पहले हुआ था और चीनी व्यापारियों के कारण यह भारत से चीन ले जाया गया था। सरल व प्राकृतिक रूप से सहज सुलभ और लाभकारी होने के कारण चीन के लोगों ने आसानी से अपना लिया जहां चीन में यह चिकित्सा प्रचलित हुई वहीं दूसरी तरफ भारत में विदेशी शासन व आक्रमण से सामाजिक धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन में परिवर्तन का आना था भारत में इस पद्धति का प्रयोग कर प्राचीन लोग सफल चिकित्सा किया करते थे। मनुश्य ने सबसे पहले अपनी चिकित्सा के लिए जिस पद्धति का सहारा लिया वह कोई और नहीं बल्कि एक्यूप्रेशर चिकित्सा ही है जिसके उदाहरण यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा पद्धति स्वरूप रोग कोदूर करने हेतु शरीर के किसी विशेष स्थान विशेष को अंगूठे से दबाने, अंग विशेष पर हाथ फेरने या घर्शण देने की प्रचलित परम्पराओं व योग साधनाओं में अंगूठे व उंगलियों को साथ जोड़कर या दबाकर ध्यान आदि मुद्राओं की क्रियाओं में देखे जा सकते है इसके अतिरिक्त 2 3 0 0 ई.पू. की मिश्र देश की चित्रकला से भी ऐसा ज्ञात होता है कि यह चिकित्सा वहां भी अति प्राचीन काल से प्रचलित थी।

प्राचीनकाल में यह देखने में आता था कि महिलाओं के चेहरे पर कई जगह गोदने के निशान होते थे तथा वह नाक में कई जगह छिद्र कर आभूशण को धारण करती थी पैर में पायल माथे पर बिंदी या सिंदूर, हाथ में कंगन बाजूबद, बिछिया, गले में बड़े-बड़े आभूशण आदि हमारी पिछली पीढ़ियों के द्वारा धार्मिक कार्य समझकर किये जा रहे है परन्तु इन पर अध्ययन करने पर ज्ञात होती है कि यह सभी शरीर पर स्थित प्रतिबिम्ब बिन्दुओं को दबाकर स्वस्थ रखते थे, महिलाऐं जब बोरला धारण करती थी वह महिलाओं मासिक धर्म संबंधित विकार दूर करने का बिन्दु होता है, कान में जहां छेद होता है वह स्मृति शक्ति को बढ़ाने का जहां चुडियां पहनी जाती है वहीं विन्दु होता है इस प्रकार अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महिलाओं द्वारा धारण किये जाने वाले प्रत्येक आभूशण का कोई न कोई रिफ्लेक्स बिन्दु होता है।

अमेरिका एक्यूप्रेशर चिकित्सक डॉ. विलियम फ्रिटजजराहड ने इस विद्या को आधुनिक गति दी।

अतः आभूशणों के द्वारा व विशेष बिन्दु पर दबाव बने रहने के कारण वह उस समय की जटिल दिनचर्या के चलते भी स्वयं को स्वस्थ रखते थे तथा रोग से दूर स्वयं को दूर रखते थे।

वर्तमान में महिलाओं का आभूशणों में लगाव कम होने का परिणाम यह है कि महानगरों में रहने वाली महिलाओं और उनके शिशुओं में अस्वस्था का दिन प्रतिदिन बड़ता जाता है।

एक्यूप्रेशर पद्धति संसार की सबसे पुरानी पद्धति है जिसका प्रयोग कर प्राचीन लोग सफल चिकित्सा किया करते थे वर्तमान में चीन, अमेरिका, जापान, कोरिया आदि देशों में भी इस पद्धति को अस्पतालों में उपचार के लिए करते थे यहां तक कि आरोग्य संस्थान भी एक्यूप्रेशर की ओर ध्यान दे रहा है अनेक देशों में इस पद्धति का अपने देश में विकास करने और लोक-प्रियता बड़ाने के लिए शिक्षा एवं उपचार केन्द्रों का भी निर्माण किया जा रहा है। इसके लिए बड़े बड़े स्कूल, कॉलेज तथा अस्पताल का निर्माण व एक्यूप्रेशर का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है। आज कई देशों के डॉ. व विशेषज्ञ इस पद्धति का ज्ञान प्राप्त करने चीन जाते है। चीन में एक्यूप्रेशर को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त चिकित्सा पद्धति के रूप में सदियों से अपनाया गया है। चीन के प्राचीन ग्रंथों में एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंचर के उल्लेख है। डॉ. श्रु. लिएन के द्वारा लिखित चैन चियु सुरह (अर्वाचीन एक्यूपंचर) नामक ग्रंथ आज चीन में इस विषय का अधिकृत प्रमाणित ग्रंथ माना जाता है इसमें एक्यूप्रेशर के लगभग 69 9 बिन्दुओं की सूची प्राप्त होती है कुछ अन्य कार्यों के द्वारा 1 0 0 0 बिन्दुओं का भी प्रमाण प्रापत होता है किन्तु वर्तमान में प्रयोगकिऐ जाने वाले महत्वपूर्ण बिन्दु 1 0 0 से 1 2 0 ही माने गए है। इन बिन्दुओं के विषय में आप चार्ट द्वारा समझ सकते हैं।

1 2 .5 एक्यूप्रेशर पद्धति के अनुसार रोग उत्पत्ति के कारण -

एक्यूप्रेशर पद्धति में रोग आने का कुछ विशेषकारक माना जाता है इसके अनुसार जब किसी बिमारी या निश्क्रियत के कारण अंग विशेष से संबंधित स्नायु तंत्र के ढीले या सिकुड़ने व शून्य हो जाने के स्थिति में शरीर की रक्त नलियों में नाकारात्मक तत्वों के जमाव या हाथों व पाओं के अंतिम छोर या सतहों पर कुछ खराब तत्वों या कणों के इक्ट्ठे हो जाने के परिणाम स्वरूप शरीर के नाडी तंत्र का संचार असंतुलित हो जाता है। जिसके कारण शरीर अस्वस्थ रहने लगता है। भारतीय पद्धति में मानव शरीर में पंच तत्व के संचार व सक्रियता का प्रधान माना गया है। इसके लिए हाथ की तर्जनी अंगुली को वायु, मध्यमा आकाश, अनामिका को जल कनिश्ठा को पृथ्वी व अंगुठे को अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व दिया गया है यही सामान्य नियमावली पैरों की उंगलियों के लिए भी लागू होता है अतः विशेष उंगुलियों द्वारा किसी मुद्रा को धारण कर अर्थात् दबाव बनाकर हम अपने शरीर में पंचतत्वों के संचार को संतुलित कर सकने मेंसक्षम है। शरीर में पंचतत्वों के असंतुलन को दुर कर हम निरोगी काया की प्राप्ति कर सकते है।

1 2 .6एक्यूप्रेशर का वर्गीकरण

सामान्यतः एक्यूप्रेशर शरीर के विभिन्न हिस्सों के विशेष महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर दबाव डालकर रोग के निदान करने की विधि है इस चिकित्सा पद्धति के अनुसार हमारा पूरा शरीर आपस में एक दूसरे भाग व विभाग से जुड़ा हुआ है इसके अन्तर्गत होने वाली विभिन्न क्रियाएं एक दूसरे विभाग पर प्रभाव डालती है तथा यह सभी आपस में मिले रहते है। व मिलकर कार्य करते है। जब किसी एक भाग पर प्रभाव पड़ता है तो उसका अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव दूसरे पर भी पड़ सकता है इसलिए चिकितसा पद्धति ने शरीर को कार्य प्रणाली की जान समझकर तथा गहन अध्ययन के द्वारा शरीर के भिन्न भिन्न भागों व अंगों के बिन्दु शरीर के दूसरे भागों में कहां कहां है। विशेष अंग से संबंधित ऊर्जा चैनल कहां कहां तक है अर्थात् उन्होंने यह जानकारी प्राप्त की है कि विशेष अंग, भाग या विभगा का प्रतिबिम्ब बिन्दु कहां है इन रिफ्लेक्स बिन्दुओं के आधार पर ही एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति आधारित है।

एक्यूप्रेशर पद्धति में सफलता के लिए उपचारक को विभिन्न रिफ्लैक्स बिन्दु का ज्ञान होना आवश्यक है तथाा एक्यूप्रेशर पद्धति की विस्तृत जानकारी के लिए इसे वर्गीकृत किया जा सकता है। भिन्न भिन्न में बांटे जाने के पश्चात् इसे सफलपूर्वक समझ कर प्रयोग किया जा सकता है। इसके प्रमुख भाग निम्नलिखित है -

1 जोनोलोजी

2 रिफ्लेक्सोलोजी

3 फुट रिफ्लेक्सोलोजी

4 हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी

5इयर रिफ्लेक्सोलोजी

3 मेरिडियोनोलोजी

1 जोनोलोजी

इस विधि में सम्पूर्ण शरीर को जोन में विभाजित किया जाता है इसलिए इस जोनथैरेपी या जोनोलोजी के नाम से जाना जाता है।

जोन में शरीर को विभाजित करने के लिए सिर से पैर तक लम्बाई में शरीर को दो भागों में बांट कर फिर चौड़ाई में चार भागों में बांटा जाता है। जिसे सम्पूर्ण शरीर 1 0 समानान्तर भागों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार पहले भाग में सिर दूसरे भाग में पाचन तंत्र और बाजुओं का भाग तीसरे भाग में पाचन तंत्र और चौथे में प्रजनन अंग आते है। पांचवे भाग में पाव से संबंधित भाग होते है।

इसी प्रकार ही हाथ की हथेली व पांव के तलवों को भी जोन में विभाजित कर उसे संबंधित प्रतिबिम्ब केन्द्र तलवों व हथेलियों में जोन पर सफलता से ज्ञात किये जा सकते है।

इस थैरैपी में विशेष भाग जोन से संबंधित रोग का उपचार करने के लिए हथेली या तलवे के समान भाग जोन पर एक्यूप्रशेर दिया जाता है।

2 रिफ्लेक्सोलोजी -

शरीर के विभिन्न अंगों के रिफ्लेक्स बिन्दु शरीर के कई भागों पर पाए जाते है इसलिए उपचार से पहले यह ज्ञात करना अत्यन्त आवश्यक है कि शरीर के किस हिस्से व अंग में रोग है जिस अंग विशेष में रोग है उसे संबंधित प्रतिबिम्ब केन्द्र (रिफ्लेक्स बिन्दु पर दबाव देकर रोग मिटाया जा सकता है। इससे मुख्य रूप से फुट रिफ्लक्योलोजी अधिक प्रभाव शाली एवं सरल है इसके अतिरिक्त हैण्ड रिफ्लक्सोलोजी तथा इयर रिफ्लक्सोलोजी का प्रयोग कर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

हमारे शरीर के विभिन्न भाग रक्त नलिकाओं द्वारा एक दूसरे से जुड़े है। रक्त नलिकाओं तथा स्नायु संस्थाओं के आखिरी छोटे हाथ व पैर में होते है। इस हाथ पर हाथ व पांव पर दबाव चिकित्सा द्वारा शरीर के विशेष भागों को पुनः स्वस्थ किया जा सकता है। शरीर का कौन सा भाग हाथ व पैर में किस स्थान पर स्थित है। यह रिफ्लेक्सोलोजी चार्ट द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है।

3 फुट रिफ्लेक्सोलोजी

यह रिफ्लेक्सोलोजी का ही भाग है। पाव का एक्यूप्रेशर समूचे क्षेत्र में जीवन शक्ति के प्रवाह को प्रभावित करने व प्रतिबिम्ब क्षेत्र बड़ा होने के कारण प्रभावी समझा गया है।

इसमें केवल पाव के तलवे व ऊपरी हिस्सों में प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर दबाव देकर रोगी का उपचार किया जाता है।

4 हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी

हाथों में स्थित प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर प्रवेश देकर उपचार करने की कला को हस्त या हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी कहा जाता है। किसी कारण वश रोगी के पांव में एक्युप्रेशर करने में कठिनाई हो तो उन्हें हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी का प्रयोग करना चाहिए।

इयर रिफ्लेक्सोलोजी -

कान पर स्थित विभिनन प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर प्रेशर देकर उपचार करने की कला को इयर रिफ्लेक्सोलोजी कहते है।

कान पर प्रतिबिम्ब केन्द्रों ढूंढना व जानना अधिक सरल है क्योंकि कान का आकार मां के गर्म में पल रहे बच्चे के आकार के समान ही होता है। इसी आकार को आधार मानकर एक्यूप्रेशर केन्द्रो ंकी स्थिति जानी जा सकती है।

1 2 .7 एक्यूप्रेशर चिकित्सा की विशेषता –

इस चिकित्सा की तकनीकी द्वारा शरीर की प्राकृतिक व्यवस्थाओं में तीव्रता अर्थात् मांसपेशियों के तंतुओं में लोच या सक्रियता उत्पन्न कराकर ग्रंथियों में ऊर्जा का संचार किया जाता है। जिसके फलस्वरूप मिटे हुए या स्थिल पड़े शरीर के आवश्यकतत्व पुनः जीवित हो उठते हैं तथा रोगी पुनः स्वास्थ होने लगता है। इसलिए स्नायु तंत्र से संबंधित रोगों के लिए यह पद्धति अत्यन्त पक्षघात चक्कर, हृदय पीड़ा या दिल का दौरे आदि की स्थिति में इस चिकित्सा अत्यन्त

4 मेरिडिअनोलोजी

एक्युप्रेशर के विभिन्न विभागों में से एक महत्वपूर्ण विभाग मेरिडियमनोलोजी का भी है। इसको भी सफलता पूर्वक काफी पहले से रोगों के उपचार के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। इसे सफल चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

अनादि काल से ही यह मान्यता रही है कि जीवन एक जीव विद्युत प्रक्रिया है अर्थात् हमारा जीवन शरीर में निहित जीव विद्युत शक्ति पर निर्भर करता है। इसी शक्ति के द्वारा हम शरीर में होने वाली तथा शरीर द्वारा कि जाने वाली प्रत्येक क्रिया कलाप को कर सकने योग्य हो पाते है।इस विद्युत शक्ति के द्वारा हम हिल डुल सकते है, चल सकते है, सांस ले सकते है तथा कोई भी कार्य करने योग्य होते है और यह ही नहीं हम इसी विद्युत शक्ति के द्वारा मानसिक कार्य भी करने योग्य होते है। मस्तिश्क में होने वाले प्रत्येक प्रक्रिया इसी विद्युत शक्ति को माना जाता रहा है। इस विद्युत शक्ति पर निर्भर करती है। भारत, चीन, जापान तथा कई अन्य देशों में प्राचीन काल से इस विद्युत शकित को माना जाता रहा है। इस विद्युत शकित को जिसके द्वारा हम समस्त कार्य करने योग्य होते है को ही प्राण कहा जाता है। इस 'प्राण शक्ति' को चीन के लोग 'ची' कहते 'ची' शक्ति शरीर में दो प्रकार की ऊर्जा का निर्माण करती है चह है – भिन्न और मांग ऊर्जाएं। मिन को ऋणात्मक ऊर्जा का जाता है। शरीर में जब तक इन दोनों ऊर्जाओं का सन्तुलन बना रहता है तब तक शरीर स्वस्थ रहता है उसमें सभी रोगों का अभाव होता है। परन्तु जब कभी कभी भी कारण वश इन ऊर्जाओं में असन्तुलन होने पर अर्थात् एक ऊर्जा अधिक और एक ऊर्जा कम होने पर रोगी का आक्रमण शरीर पर होने लगता है।

मिन और मांग ऊर्जा पुरे शरीर में विशेष मार्गों से होकर बहती रहती है इन्हीं विशेष मार्गों को 'मेरिडिअन' या **Charma** कहते है। चीन के लोग इसे 'लिन्ग' कहते है।

हमारे शरीर में प्राण का वहन इन दोनों ऊर्जाओं के माध्यम से होता है तथा प्राण का वहन जिन मार्गों से पूरे शरीर में होता है वह 1 4 प्रमुख मार्ग है अर्थात् कुल 1 4 प्रमुख मेरिडिअन होते है। इन 1 4 मेरिडिअनस मे से 1 2 मेरिडिअनस भाग में भ्रमण करते है। बचे हुए दो मेरिडियनस स्वतंत्र रहते है। 1 2 मेरिडिअनों की जोड़ी मे से 6 भिन्न होते है और 6 मांग मेरिडियन होते है।

मिन ऊर्जा मेरिडिअन से पैरों की अंगुलियों से सिर, हाथ व मध्य भाग से होकर ऊपर की ओर भ्रमण करती है जबकि यांग ऊर्जा मेरिडियन सिर, मुंह, हाथ की अंगुलियों से पैरो की ओर नीचे जाती है।

ये मेरिडियन शरीर के विभिन्न तंत्रों व अवयवी एवं उनकी कार्यप्रणाली से जुड़ कर पुरे शरीर में प्राण शक्ति का संचार सदैव करते रहते है। जो मेरिडियन जिस अवयव से जुडा होता है उसे उसी अवयव के नाम से जाना जाता है। किसी मेरिडिअन का एक सिरा हाथ, पैर अथा मुह में तथा हाथ या पैर के एक बिन्दु पर दबाव देने से उसे संबंधित अवयव पर प्रभाव पड़ते देख जाते है।

मुख्य मेरिडिअन के नाम निम्नलिखित है -

यिन - मेरिडिअनयांग मेरिडियन

1 फेफडा का7 बड़ी आंत का मेरिडिअन

2 तिल्ली कामेरिडिअन8 पेट का मेरिडिअन

3 मूत्रपिंड का मेरिडिअन9 छोटी आंत का मेरिडिअन

4 हृदयका मेरिडिअन1 0 मूत्राशय का मेरिडिअन

5पेरिकार्डियम मेरिडिअन1 1 ट्रिपल वर्मर मेरिडिअन

6यकृत मेरिडिअन1 2 पित्ताशय मेरिडिअन

2 स्वतंत्र मेरिडिअन की जोड़ी

1 गवर्निंग वेसन मेरिडिअन

2 कन्सेप्शन वेसल मेरिडिअन

इस प्रकार 1 4 मेरिडिअन पुरे शरीर में फैले रहते है ओर प्राण का संचार अवयवों में सदैव करते रहते है। शरीर में मेरिडिअन में प्राण का संचार भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न रहता है प्रत्येक मेरिडिअन का अपनी ऊर्जा शक्ति का अधिकतम प्रवाह एक निश्चित समय पर होता है जैसे फेफडों में प्राण ऊर्जा का अधिकतम प्रवाह सुबह के 3 से 5 बजे तक होता है, किडनियों में शाम 5 से 7 बजे, पित्ताशय का रात 1 1 बजे से 1 बजे तक का समय होता है।

इन अवयवों के निश्चित समय पर उपचार करने पर जल्दी से रोगी को उसका फायदा पहुंचता है।

किसी मेरिडिअन में जीवनी शक्ति का परिभ्रमण योग्य रूप न होने पर उस मेरिडिअन पर रिक्त दाब बिन्दुओं पर उचित दबाव के द्वारा उसे उत्तेजित कर जीवन शकित को परिभ्रमण को पुनः योग्य रूप दिया जा सकता है और उससे संबंधित अवयव का रोग दूर किया जा सकता है।

लाभप्रद व चमत्कारी फल देखे गए है। यह औषधि रहित चिकित्सा पद्धति है। परन्तु इस चिकित्सा के व्यवहारिक प्रयोग की अवधि में अन्य पद्धतियों की चिकित्सा व उनकी औशधियों के प्रयोग को वाजिद नहीं बताया गया है। बल्कि आजीवन औशधियों के प्रयोग के लिए निर्देशित मधुमेह थाईराइड वी.पी. कोलस्ट्रोल आदि के रोगी भी आशा से अधिक लाभ की प्राप्ति के लिए अपनी औशधियों के साथ इस पद्धति का भी भली भांति प्रयोग कर सकते है। इस चिकित्सा पद्धति का रोगी पर कोई प्रतिकुल प्रभाव नहीं पड़ता इसे किसी भी रोगी को बिना भय के दिया जा सकता है। यह चिकित्सा पद्धति बहुत ही सरल व सुविधाजनक होने के कारण इसका लम्बे समय तक प्रशिक्षण आवश्यक नहीं है। किसी भी आयु को एक्युप्रेशर चिकित्सा की जा सकती है। इस की अनेकों विशेषताएं है। इसीलिए वर्तामन मे ंइसकी लोकप्रियता एवं महत्ता बढ़ती ही जा रही है।

1 2 .8 एक्युप्रेशर चिकित्सा हेतु आवश्यक निर्देश

1 .चिकित्सा देने वाला कमरा साफ, शांत व हवादार होना चाहिए।

2 उपचार देने से पूर्व चिकितसक को यह सुनिश्चित करना चाहिए की उपचार के समय रोगी की स्थिति अनुकूल है उसकेबाद ही चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए।

3 उपचार के समय रोगी व चिकित्सक दोनों आरामदायक स्थिति में तनाव रहित होने चाहिए।

4 चिकितसक को सदैव शान्तिचित लगन व सेवाभाव वाला होना चाहिए।

5एक्युप्रेशर पद्धति लेने के साथ साथ रोगी को हल्का भोजन व व्यायाम भी करना चाहिए।

6भोजन के तुरन्त बाद चिकितसा नहीं लेनी चाहिए। भोजन से 3 घंटे के अंतर पर ही इस चिकित्सा को करना चाहिए।

7 इस चिकित्सा पद्धति को दिन में दो बार कराया जा सकता है।

8 रोगी को बैठाकर या लिटाकर ही चिकित्सक को अपने हाथ के नाखून व्यवस्थित एवं कटे हुए रखने चाहिए।

9 रोगी को शारीरिक क्षमता रोग एवं प्रेशर देने का अंग देखकर रोगी को सहन करने योग्य दवा देना चाहिए प्रेशर सदैव सुखद होना चाहिए दुखद नहीं।

1 0 चिकित्सक की शुरूआत में रोगी को दर्दका अधिक अनुभव होता है। लेकिन धीरे धीरे वह पीडा कम हो जायेगी रोगी को आश्वासन देते रहना चाहिए।

1 1 रोगी के दोनों पांव भली भांति साफ होने चाहिए।

1 2 यदि रोगी किसी दवा का सेवन करता है उसे चिकित्सा देने में और दवा लेने के एक घंटे का अन्तर होना चाहिए।

1 3 गर्भवती महिलाओं को एक्यूप्रेशर चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

1 4 फ्रेक्चर, चोट, आपरेशन व जले भाग पर चिकित्सा नहीं करना चाहिए।

1 6चिकित्सा व स्नान के बीच कम से कम आधे घंटे का अंतर होना चाहिए।

1 7 कमजोर व वृद्धरोगियों को चिकित्सा देते समय सावधानी बरतनी चाहिए।

1 8 घुटनों व टखनों के साथ वाले भाग अंगुलियों के नीचे वाले भाग तथा नरम भागों में दबाव कम व धीरे धीरे देना चाहिए।

1 9 इस पद्धति में इलाज से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि रोग किस अंग से संबंधित है। उसका प्रतिबिम्ब केन्द्र के परितंत्र से किस अंग में विकार है। यहजान जा सकता है यदि किसी केन्द्र पर प्रेशर देने से रोगी को दर्द हो तो समझ लेना चाहिए कि उस केन्द्र से संबंधित अंग में कोई विकार है।

2 0 प्रेशर देने की विधि व ढंग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है हाथ के अंगूठे व हाथ की तीसरी अंगुली एक अंगुली दूसरी अंगुली रखकर हाथ की मध्य की तीन अंगुलियों के कार्य तथा हथेली के साथ कर सकते है।

2 1 अंगुठा या अंगुली बिल्कुल सीधी खडी करके प्रेशर नहीं देना चाहिए । प्रेशर देने के लिए अंगुठा या अंगुली गोलाई में दबाव देना चाहिए ऐसा करने से तुरन्त लाभ मिलता है।

1 2 .9 सु-जोक एक्युपंचर -

सु-जोक एक कोरियन शब्द है जिनमें सु का अर्थ है हाथ तथा जोक का अर्थ हाथ और पांव पर दबाव देकर सभी तरह की बिमारियों का उपचार किया जाता है।

इस पद्धति के द्वारा मनुश्य की सभी शारीरिक व मानसिक बीमारियों को ठीक किया जाता है। यह सिद्धानत आज से प्रायः 50 0 0 वर्श पूर्व कई तरह की पद्धतियों द्वारा प्रमाणित होता रहा है। इन पद्धतियों में एक्युप्रेशर व एक्युपंचर की तथ अन्य कई पद्धतियों की समय समय पर रोगों के उपचार के लिए प्रयोग में लाई जाती रही है।

एक्युपंचर में चाईनीज एक्युपंचर इयर एक्युपंचर, कोरियन एक्युंपचर आदि प्रयोग समय समय पर किए गये जो आज वर्तमान में भी बहुत प्रचलित है चाईनीज एक्युपंचर में शरीर में मेरिडियन शक्ति किस रास्त चलती है और उसे किस प्रकार विशेष अंग के विकार को दूर किया जा सकता है इसकी खोज 50 0 0 सालों से भी पहले ही हो चुकी थी।

इतिहास -

सुजोक एक्युपंचर की खोज कोरियन डॉ. सर पार्क जे बु ने की आज से करीब 1 8 से 2 0 वर्श पहले की थी व इस खोज में करीब पिछले 3 0 से 3 5 वर्शों में लगे थे।

सुजोक एक्युपंचर में पूरे शरीर के हाथ की हथेलियों औ पाव के तलवों तक में सीमित किया गया है। इस पद्धति में तरह तरह के जैसे प्रोब, सुई, छोटे छोटे बटन के आकर के मैगनेट आदि का प्रयोग कर तथा खास बिन्दुओं पर दबाव देकर रोगों का उपचार किया जाता है।

सुजोक एक्युपंचर में दो तरह से बीमारी की चिकित्सा की जाती है पहले तरीके में शारीरिक स्तर पर बिन्दुओं पर विशेष उपकरणों द्वारा दबाव देकर इलाज किया जाता है।

दूसरे तरीके में मेरिडियन सिस्टम के द्वारा जिसे सुजोक एक्युपंचर में हाथ और पांव की बडी अंगुली और तर्जनी अंगुली में सीमित किया गया है। इसमें उन मेरिडियन पर सुई या छोटे बटन मैगनेट लगाकर ऊर्जा का निर्माण कर रोग उपचार किया जाता है। ये चुम्बक खास बिन्दुओं पर ही लगाए जाते है।

वैसे ये दोनों ही तरीके अपने आप में परिपूर्ण है किन्तु जरूरत के अनुसार दोनों तरीकों को एक साथ मिलाकर किया जाये तो अच्छा परिणाम देखने को मिलता है।

1 2 .1 0 समानता

प्राचीन समय से चिकित्सा के क्षेत्र में रोग निवारण के लिए हाथ और पांव को कई तरह से प्रयोग में लाया जा सकता है। जिनमें एक्युपंचर, चाईनीज एक्युपंचर, कोरियन

एक्युपंचर आदि पद्धतियां काफी प्रचलित है। और प्रतिबिम्ब केन्द्रो से केई तरह से चिकित्सा की जाती है।

इन सभी पद्धतियों में हाथ और पांव में प्रतिबिम्ब केन्द्र पूर्व रूप से मनुश्य के शरीर के समान नहीं है लेकिन सुजोक एक्युपंचर में मनुश्य के शरीर के अनुसार हाथ और पांव के प्रतिबिम्ब केन्द्रों से पूर्व समानता है इसलिए यह अन्य पद्धतियों से बहुत सरल है इसे सरलता से समझ कर प्रयोग किया जा सकता है।

मनुश्य के शरीर को मुख्यतः 6 हिस्सों में बांटा जा सकता है। पहला हिस्सा सिर में गले तक दूसरा बीच का छाती व पेट, तीसरा व चौथा हिस्सा दोनों हाथ, पांचवा व छठा हिस्सा दोनों तरफ के दोनों पांव है।

हाथ का अंगूठा चारों अंगुलियों की प्रत्येक काम में सहायता करता है और उनको नियंत्रित करता है।

सुजोक एक्युपंचर में अंगूठे को सिर और गला बीच की दोनों अंगुलियों को दोनों पांव तथा बगल में दोनों अंगुलियों को दोनों हाथ माना गया है। अंगुठा दो भागों में बांटा हुआ है सिर व गर्दन बाकि अंगुलिया 3 भागों में बटी है। जो हाथ व पांव को प्रतिबिम्ब करती है। हाथ के तीन हिस्से होते है अंगुलि से कलाई दूसरा कलाई से कोहनी, तरीसा कोहनी से कंधे तक होते है। इस तरह पांव के तीनों हिस्से होते है। पहला अंगुलियों से टखने तक दूसरा टखने से घुटने तक तीसरा घुटने से नितम्ब तक होते है।

सुजाक एक्युपंचर में इस तरह मनुश्य के पूरे शरीर के प्रत्येक हिस्से को हाथ की हथेलियों और पांव के तलवों में प्रतिबिम्ब किया जाता है।

यदि अंगुठे को हथेली के ऊपर कलाई की तरफ रख कर सोचा जाए तो यह मनुश्य के शरीर के समान ही नजर आयेगा सही अर्थों में हाथ की रचना ईश्वर की रचनाओं में श्रेश्ठतम रचना का उदाहरण है।

1 2 .1 2 यिन और यांग का सिद्धान्त

यह पद्धति भी संसार की प्रत्येक वस्तु की भांति यिन और मांग के सिद्धानत पर आधारित है। संसार में प्रत्येक वस्तु मां तोयिन है या भोग इसी प्रकार शरीर में होने वाली सभी बीमारियां यिन और मांग पर आधारित होती है। जब तक यह जानकारी न हो बीमारी का कारण यिन है या मांग तब तक किसी भी बीमारी का निदान अथवा इलाज संभव नहीं है।

शरीर के कुछ मांग इन होते है तथा मांग शरीर के वो हिस्सों जो सामने से दिखाई पड़ते है उनका रंग गहरा होत है यह योग कहलाता है। यह हिस्से यिन हिस्सा की अपेक्षा मजबूत होते है इसी प्रकार शरीर के जो हिस्से छिपे रहते है जिनका रंग योग प्रकार शरीर के जो हिस्सा साफ होता है तथा इन हिस्सों की चमड़ी कोमल होती है वह यिन

हिस्से कहलाते है इसी प्रकार पूरे शरीर में संतुलित रहते हुए यिन और मांग ऊर्जा शरीर को स्वस्थ बनाए रखती है।

परन्तु जब कभी इन ऊर्जाओं को संतुलन होता है तो रोग उत्पन्न होने लगते है। तीव्र रोग या रोग की शुरूआत को योग कहा जाता है तथा रागों को यिन कहा जाता है।

यिन और मांग की असमानता को समझने के लिए उनमें पाए जाने वाले गुण निम्नलिखित है -

यिनमांग

1 कोमलकठोर

2 स्त्री पुरूश

3 लगातारअचानक

4 धीरेतेज

5 मृत्यु जन्म

6 कमजोर मजबूत

7 अंधेराप्रकाश

8 बड़ाछोटा

9 साधारण बुखारतेज बुखार

1 0 दाया हिस्सा पुरूष काबांया हिस्सा स्त्री का

1 2 ठंडागरम

1 3 लगातार गर्मकभी कभी गर्म

1 4 पुरानी या जीर्णतेज या तीव्र

इसी प्रकार शरीर के 1 2 प्रमुख अंगो को यिन और यांग में बांटा गया है -

यिनयांग

1 लीवरपित्ताशय

2 हृदयछोटी आंत

3 मस्तिश्करीढ़ की हड्डी

4 लीहापेट

5 फेफेड़े बड़ी आत

6 गुर्देमुत्राशय

इस प्रकार शरीर के प्रत्येक हिस्से और अंगों में यिन और यांग ऊर्जाओं का पता लगाकर रोग को ठीक करने में सहायता मिलती है इसलिए यिन और यांग ऊर्जा को समझना तथा यह कहां कहां होती है यह जानकारी होना आवश्यक है।

1 2 .7 रोग उपचार के लिए सही प्रतिबिम्ब का केन्द्र खोजना

रोग उपचार के लिए सुजोक एक्युपंचर में सर्वप्रथम यह देखना जरूरी है रोग शरीर के किस हिस्से तथा तंत्र को प्रभावित कर रहा हैं उसके बाद हथेली या पांव के तलवे पर सही स्थान देखना चाहिए इसके पश्चात उस निश्चित स्थान पर द्वारा सही बिन्दु या केन्द्र खोजना चाहिए से दबाते समय जिस बिन्दु पर सबसे अधिक दर्द हो उसे खोजकर सही बिन्दु पर दबाव देकर इलाज करना चाहिए बिन्दु खोजते समय दबाव एक समान तथा मरीज जितना सह सके उतना ही देना चाहिए।

सुजोक एक्युपंचर में प्रत्येक हाथ व पाव में पूरे शरीर के प्रतिबिम्ब केन्द्र है। मानव शरीर में कुछ अंग दाये भाग में होते है जैसे लीवर दायी तरफ होता है हैस्पलीन बायी तरफ होता है यह ज्ञात करके ही जो हिस्से शरीर में दाये तरफ होते है उनके प्रमुख प्रतिबिम्ब केन्द्र दाये हाथ में होते हैं तथा जो हिस्से शरीर में बायी तरफ होते है उनके प्रमुख प्रतिबिम्ब केन्द्र बाये हाथ में होगें।

मानव शरीर को बीच में दो भागों में बांटा जाय तो आधे शरीर के प्रतिबिम्ब बिन्दु बाये आधे हाथ में या आधे पैर में होगे और बाकि आधे हाथ या पैर में दाये शरीर के सहयोगी प्रतिबिम्ब बिन्दु होगे।

पाव के प्रतिबिम्ब केन्द्रों को खोजने में असुविधा न हो इसलिए यिन या यांग को ध्यान में रखकर पाव के प्रतिबिम्ब केन्द्रों को खोजा जाय इस पद्धति में पाव की आकृति के अनुसार पाव की प्रमुख प्रतिबिम्ब अंगुली को रखा जाता है तथा उसी के बिल्कुल अमुख दर्द बिन्दु पर दबाव देकर या अन्य उपकरणों का प्रयोग कर इलाज किया जाता है।

1 2 .1 3 अन्य

इस पद्धति में चिकित्सक मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर दबाव देता है जहां दर्द हो उसके प्रतिबिम्ब केन्द्र पर दबाव के साथ साथ उसके ठीक ऊपर और नीचे के दर्द बिन्दुओं पर दबाव देते है इसे रोग में अति शीघ्र लाभ मिलता है इसे तीन बिन्दु प्रतिबिम्ब केन्द्र कहते

है इस पद्धति से हम मुख्य रूप से जोड़, पांव, छाती, आंख तथा कन्धों के जोड़ का इलाज बडी आसानी से कर सकते है।

इन तीन बिन्दुओं पर हम सुई से मैगनेट बीजों या अनाज के दानों से दबाव देकर चिकित्सा कर सकते है।

दांत के प्रतिबिम्ब केन्द्र –

दांत की चिकित्सा इस पद्धति में करने के लिए अंगुठे के यिन व यांग भाग का प्रयोग किया जाता है दोनों की स्थिति नाखून के चारों तरफ होती है।

दातों का इलाज दो तरह से किया जाता है पहले तरीके में अंगूठे की यिन दिशा यानी नाखून के पीछे वाले भाग पर मुह के प्रतिबिम्ब केन्द्र पर दबाव देकर या सुई लगाकर इलाज किया जाता है।

दूसरे तरीके से अंगूठे के नाखून के चारों तरफ दातों की गिनती के अनुसार प्रत्येक दांत का इलाज किया जा सकता है।

इनसैक्ट प्रतिबिम्ब केन्द्र इलाज पद्धति

इनसैक्ट प्रतिबिम्ब केन्द्र का इलाज पद्धति एक नवीन खोज है इसमें अपनी सुविधा के लिए छोटा रूप दिया जा रहा है।

इनसैक्ट इलाज पद्धति को चोटी के शरीर के अनुसार पूरे शरीर को केवल हाथ और पाव की किसी एक अंगुली में दिखाया जा सकता है अंगुली में दो जोड़ होते है जो इसे तीन भागों में बांटते है ऊपर का पहला हिस्सा सिर दूसरा हिस्सा छाती और तीसरा हिस्सा है। जिस तरह हाथ छाती के बाहर की तरफ होते है उसी तरह हाथ दूसरे हिस्से में दोनों तरफ होते है शरीर के जो अंग आगे की तरफ है वे अंगुलियों की आगे की तरफ होते है तथा शरीर के जो अंग पीछे की तरफ होते है जैसे रीढ़ की हड्डी व किडनी यह इनसैक्ट पद्धति के अनुसार अंगुलियों के पीछे की तरफ होते है।

मिनी प्रतिबिम्ब केन्द्र इलाज पद्धति –

जिस प्रकार प्रमुख प्रतिबिम्ब केन्द्र पद्धति में मनुश्य के शरीर को पूरी हथेली पर दिखाया गया तथा इनसैक्ट प्रतिबिम्ब केन्द्र पद्धति में मनुश्य के शरीर का अंगुलियों पर दिखाया गया है ठीक उसी प्रकार मिनी प्रतिबिम्ब केन्द्र इलाज पद्धति को तर्जनी के ऊपरी छोर से भाग पर ही पूरे शरीर के प्रतिबिम्ब केन्द्रों को खोजा गया है।

इसमें एक छोटे से भाग पर पूरे शरीर के प्रतिबिम्ब केन्द्रों को खोजा जा सकता है।

यदि मिनी प्रतिबिम्ब केन्द्र पद्धति में पांव के प्रतिबिम्ब केन्द्र के हिसाब से इलाज करना है तो मध्यमा के ऊपरी छोर पर किया जायेगा।

मिनी प्रतिबिम्ब केन्द्र पर दबाव देने से पहले सही दर्द बिन्दु को सावधानी से खोजना चाहिए क्योंकि इस पद्धति में प्रत्येक अंगों के प्रतिबिम्ब केन्द्र बहुत ही छोटे होते है पर दबाव देने पर तरीका समान ही रहता है।

विभिन्न स्थितियों में इलाज नहीं करना चाहिए -

1 यदि मरीज के हाथ या पाव पानी से भीगे है या व पसीने से भीगा हो तो चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

2 मानसिक रोगी को या बहुत अधिक दिमागी परेशानी वाले रोगी को तेज ब्रेन प्वाइन्ट नहीं देना चाहिए।

3 रोगी का खाली पेट होने पर या खाना खाने के तुरन्त बाद ही इलाज हीं करना चाहिए ऐसी स्थिति में खाने के दो घंटे बाद इलाज करना चाहिए।

4 जो मरीज कमजोर हो उन्हें सावधानी से व धीरे धीरे दबवा देना चाहिए।

5महिलाओं को मासिक धर्म के समय ताा गर्भवती महिलाओं को दबाव नहीं देना चाहिए।

6रोगी नशे की हालत में हो तो इलाज नहीं करना चाहिए।

7 यदि चोट के कारण स्थान विशेष की हड्डी टूट गई हो या वह स्थान जल गया हो या जेखम हो गया हो तो उस स्थान पर दबाव नहीं देना चाहिए।

8 यदि रोगी को आपरेशन हुआ हो तो उस रोगी को कम से कम 4 महिने तक इलाज नहीं देना चाहिए।

1 0 तीव्र रोगों का इलाज नहीं करना चाहिए क्योंकि इस स्थिति में शरीर स्वयं अपना इलाज करता है।

चिकित्सा के दौरान परहेज

1 चिकित्सा के दौरान रोगी को तेल, मिर्च, मसाले, खटाई आदि का प्रयोग बंद या कम करना चाहिए।

2 अत्यधिक ठंडी व अत्याधिक गर्म वस्तु का सेवन नहीं करना चाहिए।

3 काफी, चाय, बर्फ, आइसक्रीम शराब, भांग, सिगरेट आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1 एक्यूप्रेशर शब्द का क्या अर्थ है। इसके परिचय एवं इतिहास पर प्रकाश डालिए।

2 एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति की क्या विशेषता है? इसको वर्गीकृत करो।

3 एक्यूप्रेशर चिकित्सा हेतु किन किन निर्देशों का पालन करना चाहिए।

4 यिन और यांग का सिद्धान्त समझाइएं मेरिडियनोलॉजी को विस्तार से लिखो।

5 रोगी के उपचार के लिए सही प्रतिबिम्ब केन्द्र किस प्रकार खोजे जाते है।

6 सुजोक एक्यूप्रेशर एवं एक्यूप्रेशर में क्या समानता व असमानता है?

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 आपका साथ आपके हाथ-डॉ. देवेन्द्र वोहरा

2 एक्यूप्रेशर-डॉ. अत्तर सिंह

3 एक्यूप्रेशर-डॉ. के.डी. राकावत

4 रिफ्लेक्सोलोजी-गाला पब्लिकेशन